मई 2020

डाउन टू अर्थ

पर्यावरण और विकास की राजनीति... हर महीने

₹50

कोविड-19 विशेषांक

अभूतपूर्व संकट

कोरोनावायरस ने वैश्विक अर्थव्यवस्था को गंभीर क्षति पहुंचाई है जिससे उबरना आसान नहीं होगा

\+

लॉकडाउन ने पहले से बदहाल ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संकट और गहरा कर दिया है

महामारी में साफ पानी की अहमियत बढ़ी, लेकिन उपलब्धता पर सवाल

पृथ्वी दिवस विशेष : प्रकृति से अपने संबंधों को तत्काल सुधारने की जरूरत

SANI-KiT

PREPARING A CITY SANITATION PLAN

A web-based tool for preparing city sanitation plans

For queries contact water@cseindia.org

kindly visit cseindia.org or scan the QR code

MOUNT

MOUNT is an online aggregator platform disseminating knowledge on sustainable technologies and good practices for wastewater and faecal sludge management.

Explore on www.cseindia.ord/mount/home or scan the QR code

कोविड-19

तीसरा विश्व युद्ध

6 **न्यू नॉर्मल**
कोरोनावायरस के इस दौर में हर देश ने साबित कर दिया है कि संकट की घड़ी में कोई किसी का अपना नहीं है

10 **विश्वव्यापी संकट**
महामारी के वक्र को समतल करने का अर्थ है आर्थिक शिथिलता। असमान विश्व में इसका सबसे ज्यादा बोझ कौन उठाएगा?

14 **बोलती तस्वीरें**
कोरोनावायरस से दुनियाभर में ठहराव आ गया है। लॉकडाउन इससे बचने का एक अनिवार्य उपाय बनकर उभरा है

21 **नोटबंदी से बुरा हाल**
प्रणब सेन : लॉकडाउन से उत्पादन गतिविधियां रुक गई हैं। इसका अर्थ है, कामगारों की आय खत्म हो जाना

22 **कोढ़ में खाज**
नियमों में छूट मिलने के बावजूद किसान कोरोनावायरस के खिलाफ छिड़ी जंग से बुरी तरह प्रभावित हैं

30 **पैकेज कितना कारगर**
ज्यां द्रेज : भारत को स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा को तत्काल प्रभाव से उच्च प्राथमिकता देने की जरूरत

31 **मजबूर मजदूर**
मजदूर कल्याण बोर्डों और कानून की असफलता ने लॉकडाउन के संकट में मजदूरों को गांव लौटने को विवश कर दिया

36 **शहर से मोहभंग**
बिनोद खादरिया : सरकारें प्रवासियों की यात्रा सुरक्षित, व्यवस्थित और नियमित बना देतीं तो संक्रमण फैलने की आशंका कम हो जाती

38 **जैव आतंकवाद की शुरुआत**
अमेरिकन इंडियन को विस्थापित करने के लिए 250 साल पहले चेचक से संक्रमित कंबल भेंट किए गए थे

40 **अफ्रीका कितना खुशनसीब**
कमजोर स्वास्थ्य तंत्र और उच्च मृत्युदर वाले अफ्रीकी देश आखिर कब तक महामारियों से अपना बचाव कर पाएंगे?

डाउन टू अर्थ

संस्थापक संपादक अनिल अग्रवाल

संपादक सुनीता नारायण

प्रबंध संपादक रिचर्ड महापात्रा

वरिष्ठ सहायक संपादक अनिल अश्विनी शर्मा

वरिष्ठ उपसंपादक भागीरथ

वरिष्ठ संवाददाता राजू सजवान

संवाददाता विवेक मिश्रा

क्रिएटिव डायरेक्टर अजीत बजाज

ग्राफिक संपादक सोरित गुप्तो

रिपोर्टिंग टीम
जितेंद्र चौबे, कुंदन पांडेय, ईशान कुकरेती, मीनाक्षीसुषमा, अक्षित संगोमला, बनजोत कौर, शगुन कपिल

सूचना एवं शोध सहयोग किरण पांडे
www.indiaenvironmentportal.org.in टीम

सहायक कला संपादक चैतन्य चंदन, संजीत कुमार

डिजाइन टीम
श्रीकृष्ण, विजयेंद्र प्रताप सिंह, रितिका बोहरा

फोटो पत्रकार विकास चौधरी

फोटो लाइब्रेरी अनिल कुमार

हिंदी सहयोग
सुरेंद्र सिंह, जयदेव शर्मा, ललित मौर्य, दयानिधि मिश्रा

प्रोडक्शन राकेश श्रीवास्तव, गुंधर दास

संपादन परामर्श
अनुमिता रायचौधरी, विभा वार्ष्णेय

विज्ञापन संपर्क ज्योति घोष
jghosh@cseindia.org

सब्सक्रिप्शन संपर्क केसीआर राजा
raja@cseindia.org

वर्ष 2, अंक 7, कुल पृष्ठ 94
सम्पादकीय, सब्सक्रिप्शन और विज्ञापन : सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस, 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062
फोन : +91-11-29955124, 29956110, 29956394, 29956399
फ़ैक्स : +91-11-29955879
ई मेल : editor@downtoearth.org.in

© 2019 सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस सर्वाधिकार सुरक्षित (पूरे विश्व के लिए)। किसी भी प्रकार से पुन: उत्पादन प्रतिबंधित।

सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस के लिए रिचर्ड महापात्रा द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। तारा आर्ट प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ए-46-47, सेक्टर-5, नोएडा-201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित और 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062 से प्रकाशित।

सब्सक्राइब करने के लिए फोन करें
011-4061 6000 पर
या लॉग इन करें **www.downtoearth.org.in/subscribe**

◂ **आवरण डिजाइन** अजीत बजाज

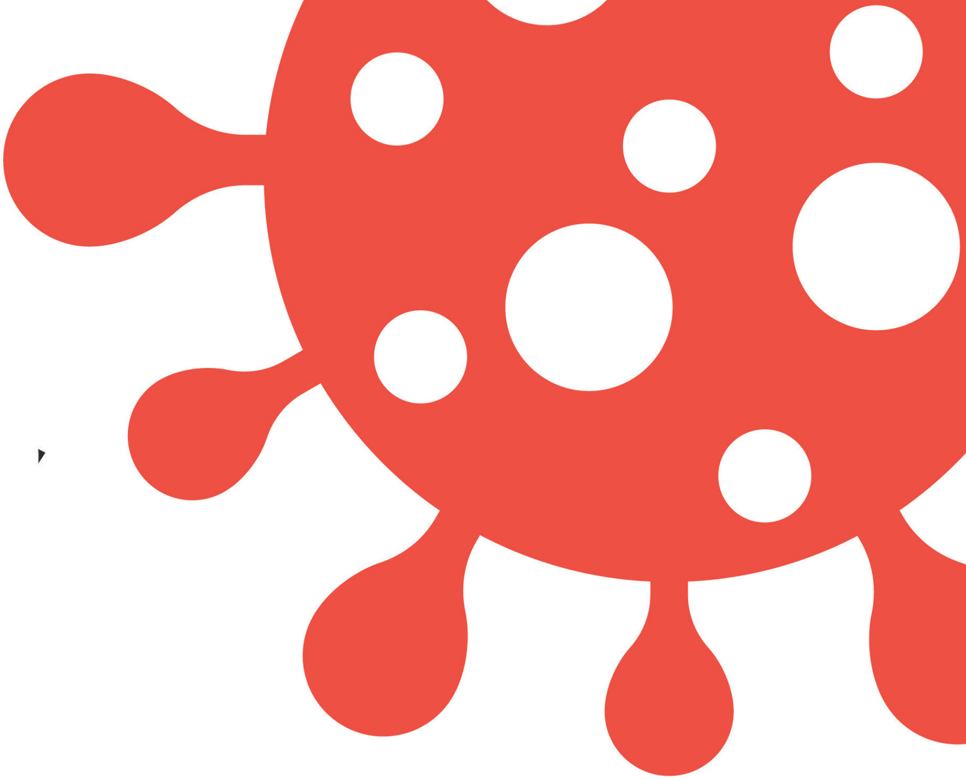

44 महामारी के उस पार
वैश्विक महामारी के उतार के बाद दुनिया किस करवट बैठेगी? बदलाव क्रूर होंगे या उदार?

51 साक्षात्कार
कांचा इलैया: उपनिवेशवाद ने भारत में दवाइयों को जाति के बंधन से मुक्त किया

52 कहानी पीत बुखार की
क्यूबा से निकलने वाले जहाज से कुछ यात्री इस बीमारी को अपने साथ ले आए थे जिसने 20 हजार लोगों की जान ली

54 आगे भी बड़े खतरे
नोम चोम्स्की : संकट के खात्मे के बाद जो विकल्प मिलेगा, वह अधिक अधिनायकवादी और क्रूर हो सकता है

56 साफ पानी का संकट
संकट की घड़ी में साफ पानी की अहमियत बढ़ी लेकिन बड़ी आबादी इससे वंचित है

59 जल का महत्व
धेसिजेन नायडू : पानी को सुरक्षित और स्वच्छ बनाने की कोशिशों को तेज करने का सही समय

60 निजता का हनन
महामारी की आड़ में क्या दुनियाभर की सरकारें लोगों के निजता के अधिकार से खिलवाड़ कर रही हैं?

64 टीका कितनी दूर
कोविड-19 का टीका बनाने के लिए दुनियाभर में फार्मा कंपनियों का शोध और क्लीनिकल ट्रायल

66 साख पर सवाल
महामारी से जूझने के तरीके को लेकर विश्व स्वास्थ्य संगठन काफी आलोचनाओं का सामना कर रहा है

68 जलवायु परिवर्तन
संकट के खत्म होते ही अर्थव्यवस्थाएं ठीक हो जाएंगी और संभावना है कि उत्सर्जन में भी उछाल आए

74 अनाम योद्धा
देशभर में कोरोनावायरस के खिलाफ छिड़ी जंग में तत्परता से जुटी हैं आशा वर्कर और सफाईकर्मी

84 वैश्वीकरण का परिणाम
इयान गोल्डिन : कोविड-19 के संक्रमण को दुनियाभर में फैलाने वाले वैश्वीकरण की अवधारणा पर पुनर्विचार की जरूरत

पृथ्वी दिवस विशेष

86 **सुनीता नारायण :** प्रकृति के साथ अपने बिगड़े संबंध सुधारने का वक्त

88 **अनुमिता रॉयचौधरी :** हमें शहरों की रूपरेखा को नए सिरे से परिभाषित करना होगा

91 **अमित खुराना :** हमें भोजन की मौजूदा आदतों में बड़ा बदलाव लाना होगा

डाउन टू अर्थ संपादकीय पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की किसी भी विषयवस्तु का समर्थन नहीं करता है। सभी विवाद सिर्फ दिल्ली/नई दिल्ली के प्रतिस्पर्धी न्यायालय और फोरमों के विशिष्ट न्यायाधिकार का विषय है

वक्तव्यों से परे...

पर्यावरण और विकास पर भारत की बहुप्रतीक्षित पत्रिका **अब हिंदी में भी**

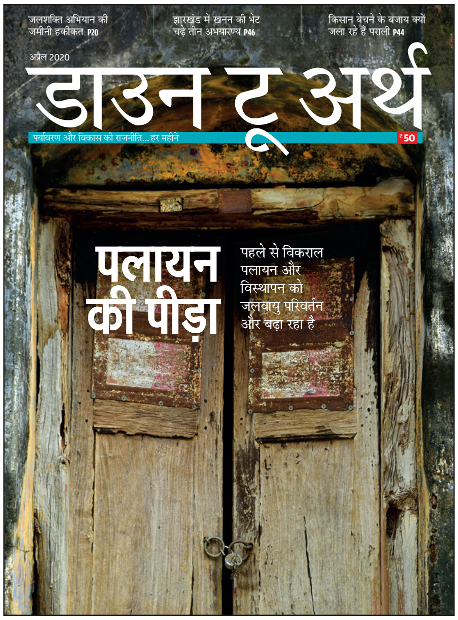

पर्यावरण और विकास से जुड़े मुद्दों को समर्पित पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' के 25 साल पूरे होने पर हमें इसके हिंदी संस्करण की शुरुआत करते हुए बेहद खुशी है। यह नई पत्रिका विकास, पर्यावरण और स्वास्थ्य की राजनीति से संबंधित ऐसी जमीनी रिपोर्ट, खबरें और तथ्यपूर्ण लेख आप तक पहुंचाएगी जो आपके लिए सबसे ज्यादा मायने रखते हों। हम आशा करते हैं कि 'डाउन टू अर्थ' के अंग्रेजी संस्करण की तरह ही हिंदी पत्रिका भी केंद्र और राज्य सरकारों के नीति निर्धारकों को व्यापक जन हित में फैसले लेने के लिए बाध्य करेगी। पत्रिका में मौलिक रिपोर्टों के अलावा पर्यावरण से जुड़े साहित्य, लोक संस्कृति और इतिहास से संबंधित सामग्री को भी जगह दी गई है।

'डाउन टू अर्थ' हमारे सरोकारों और जुनून का नतीजा है। हमारा लक्ष्य आप तक उन मुद्दों को पूरे तथ्यों के साथ पहुंचाना है, जो हमारे वर्तमान और भविष्य पर असर डालते हैं। इस मुहिम में हमें आपके सहयोग की जरूरत है। आपसे अनुरोध है कि आप 'डाउन टू अर्थ' के हिंदी संस्करण को हर महीने खरीदकर हिंदी में पर्यावरण और विकास को समर्पित स्वतंत्र पत्रकारिता को अपना सहयोग प्रदान करें।

डाउन टू अर्थ

सब्सक्रिप्शन फार्म

सब्सक्राइबर का नाम: श्री/श्रीमती/सुश्री________________________ संस्थान: ________________________

पता: कार्यालय ☐ निवास ☐ ________________________ राज्य: ______________ पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

फोन/मोबाइल: ☐ कार्यालय ☐ निवास ______________ फ़ैक्स: ______________ ईमेल: ______________

मैं इस आवेदन के साथ रुपये______________ ☐ नक़द / ☐ मनी ऑर्डर/चेक/डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से भुगतान कर रहा हूं। कृपया मुझे डाउन टू अर्थ के लिए सब्सक्रिप्शन प्रदान करें।

चेक/डिमांड ड्राफ़्ट संख्या ☐☐☐☐☐☐☐ तिथि______________ (चेक/डिमांड ड्राफ़्ट Society for Environmental Communications के नाम नई दिल्ली में भुगतेय होगा)

पत्रिका मंगाने के लिए कॉल करें 011-40616000 (एक्सटेंशन-234) या ईमेल करें dte@cseindia.org

डाउन टू अर्थ सब्स्क्रिप्शन दर (1 अक्टूबर 2016 से लागू)			
	मूल्य (@ ₹50)	आपकी बचत	भुगतान करें सिर्फ
3 साल (36 अंक)	₹1,800	50%	₹900
2 साल (24 अंक)	₹1,200	45%	₹660
1 साल (12 अंक)	₹600	40%	₹360

पूरी तरह से भरे हुए सब्सक्रिप्शन फार्म यहां भेजें:

सोसायटी फ़ॉर एन्वायरॉन्मेंटल कम्यूनिकेशंस
41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062
dte@cseindia.org

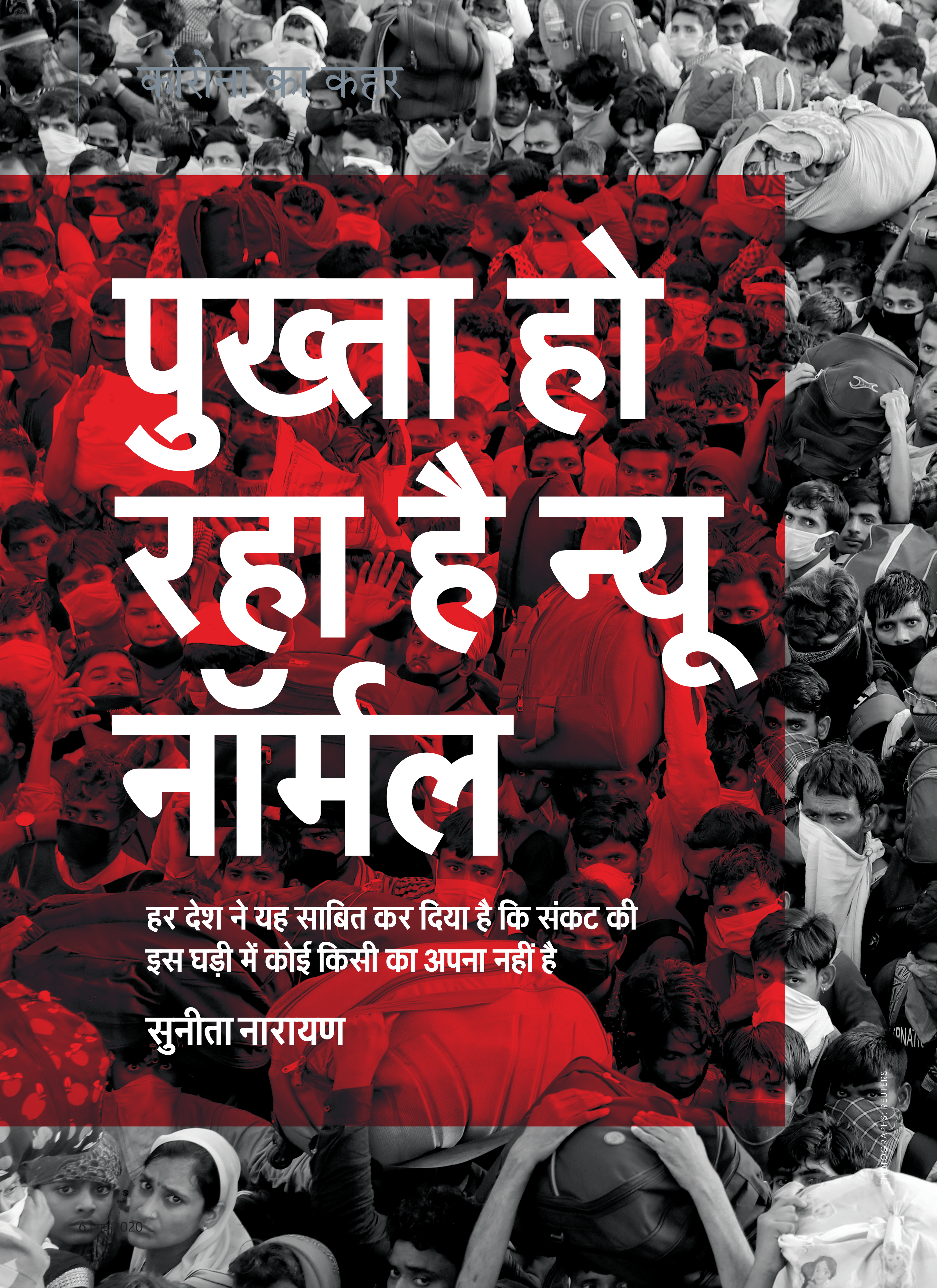

पुख्ता हो रहा है न्यू नॉर्मल

हर देश ने यह साबित कर दिया है कि संकट की इस घड़ी में कोई किसी का अपना नहीं है

सुनीता नारायण

PHOTOGRAPHS: REUTERS

मैं बिना किसी संशय के कह सकती हूं कि कोविड-19 हमारे जीवनकाल की सबसे घातक एवं विनाशकारी घटना है और यह हमारे समाज की परिभाषा बदलकर रख देने की क्षमता रखता है। मेरी जानकारी में ऐसी कोई दूसरी महामारी नहीं है जो इतनी तेजी से फैली हो। दिसंबर 2019 के अंत में चीन में कोविड-19 का पहला केस पाया गया और अप्रैल 2020 में हालात ऐसे हैं कि दुनिया की आबादी का अनुमानित एक तिहाई हिस्सा अपने घरों में बंद है।

यह एक अभूतपूर्व संकट है और ऐसी कोई नियम पुस्तिका नहीं है जो सरकार को यह बताए कि क्या करना है। अर्थव्यवस्थाओं को बंद करने का क्या तरीका हो और उन्हें कब दोबारा खोला जाए, इसको लेकर कोई नियम नहीं हैं। यह वायरस एक म्यूटेन्ट है जो अपने पशु मेजबानों के माध्यम से इंसानों में प्रवेश कर गया। क्योंकि यह वायरस स्वयं को छुपाने के नए-नए तरीके ढूंढने में माहिर है जो इस बीमारी के वाहक हो सकते हैं। यह सर्वथा घातक और विनाशकारी है।

हालांकि अभी हमें जिस चीज के बारे में सोचना चाहिए वह है हमारी धरती की सामूहिक कमजोरी। सबसे ताकतवर नेता हों, उच्चतम तकनीकी वैज्ञानिक प्रतिष्ठान हों अथवा सबसे शक्तिशाली आर्थिक कौशल, सभी इस छोटे से वायरस के आगे अपने आप को बेबस महसूस कर रहे हैं। हमें इस परिस्थिति में विनम्र रहने की आवश्यकता है। हमें सोचना चाहिए कि ऐसा क्या है जो हम अलग कर सकते हैं। हमें अपनी कार्यशैली और व्यवहार में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। लेकिन मुझे संदेह है कि हम ऐसा नहीं कर पाएंगे।

यह तथ्य है कि जब भी ऐसी कोई भयावह घटना होती है, हमारा ध्यान तात्कालिक आवश्यकताओं जैसे कि राहत एवं बचाव पर होता है। हमें भविष्य के लिए क्या सीख लेनी चाहिए, इस पर हम ध्यान नहीं देते। और इस बात में कोई शक नहीं है कि कोविड-19 की रोकथाम जरूरी है।

समृद्ध देशों में, जहां स्वास्थ्य का बुनियादी ढांचा सबसे मजबूत है, वहां मौतें सबसे ज्यादा हो रही हैं। ऐसे हालात में उभरती-विकासशील दुनिया में मानव त्रासदी के पैमाने की कल्पना की जा सकती है जहां स्वास्थ्य सुविधाएं न के बराबर हैं। लेकिन इसके साथ-साथ ही मानवीय अभाव के व्यापक पैमाने की भी कल्पना करें क्योंकि रोजगार लगातार कम हो रहे हैं। गरीब घरों की अर्थव्यवस्था दैनिक आय पर निर्भर रहती है, जो बुरी तरह प्रभावित हो गई है।

ऐसा नहीं है कि कोविड-19 के बाद जीवन समाप्त हो जाएगा। ऐसे में न्यू "नॉर्मल" क्या होगा? आइए हम अपनी वैश्वीकृत दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर चर्चा करें कि अगली वैश्विक आपात स्थिति से बचाव के लिए हम कोविड-19 से क्या सीख ले सकते हैं। सत्य यह है कि हम जानते हैं कि हमें एक साथ मिलकर काम करना चाहिए था लेकिन हम ऐसा करने में विफल रहे।

चीन ने समय रहते जानकारी विश्व से साझा नहीं की जिसके फलस्वरूप वायरस देश से बाहर निकला और पूरी दुनिया में फैल गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने या तो तेजी से कार्य नहीं किया या फिर आज हालात ऐसे हो चले हैं जिनमें देशों ने इस संस्था की बात पर ध्यान नहीं दिया। जनवरी माह के अंत तक डब्ल्यूएचओ इस उम्मीद में था कि चीन में ही इस वायरस को रोक लिया जाएगा। यही नहीं, डब्ल्यूएचओ ने वैश्विक यात्रा प्रतिबंधों का भी विरोध किया और अंत तक कोविड-19 को महामारी घोषित करने में असमंजस की स्थिति में रहा।

जब तक डब्ल्यूएचओ की नींद खुली तब तक काफी देर हो चुकी थी और महामारी विकराल रूप धारण कर चुकी थी। डब्ल्यूएचओ ने अपनी विश्वसनीयता खो दी है और यह ऐसे समय में हुआ है जब विश्व को एक ऐसे सक्षम एवं सशक्त नेतृत्व की आवश्यकता है जो हमें इस संकट से बाहर निकाले। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने पहले तो हफ्तों तक कोई बैठक नहीं की और जब बैठक हुई भी तो बिना किसी लड़ाई के इस संस्था ने अपने घुटने टेक दिए।

इस अंतर-निर्भर दुनिया में हमें वैश्विक नेतृत्व की आवश्यकता है। इसलिए, कोविड-19 के बाद की दुनिया की नई सामान्य स्थिति यही होगी, हमें यह याद रखना चाहिए। हम इसे कैसे ठीक करते हैं यह कल के लिए सवाल है

यह केवल चीन और डब्ल्यूएचओ की बात नहीं है। संकट की इस घड़ी में हर देश अपनी सुरक्षा में लगा है। हालात ऐसे हैं कि देश स्वास्थ्यकर्मियों के लिए आवश्यक मास्क और गाउन एवं सुरक्षात्मक उपकरणों की पाइरेसी कर रहे हैं। इसके अलावा दवा की आपूर्ति को लेकर विवाद और पहली वैक्सीन बनाने की दौड़ भी चालू है।

यह सोचना इसलिए भी भयावह है क्योंकि हम जानते हैं कि कोरोनावायरस महामारी एक अन्योन्याश्रित वैश्वीकृत दुनिया का परिणाम है। यह एक तथ्य है कि कोरोनावायरस निश्चित रूप से चीन के एक प्रांत से आया है और मैं यह कहने में संकोच नहीं करूंगी कि वहां के नागरिकों का अपने भोजन के साथ एक "डिसटोपियन" संबंध रहता आया है।

लेकिन इस बीमारी का प्रसार इसलिए हुआ क्योंकि हमारी दुनिया एक ग्लोबल गांव है। यह भी स्पष्ट हो चला है कि हम अपनी सबसे कमजोर कड़ी जितने ही मजबूत हैं। यदि वायरस का प्रसार दुनिया के कुछ क्षेत्रों में जारी रहता है (जो शायद सबसे कमजोर स्वास्थ्य सेवाओं वाले या युद्ध और संघर्ष से ग्रस्त देश हों) तो यह पूर्णतया नष्ट नहीं होगा। हम इस युद्ध को तब तक नहीं जीत सकते जब तक हम इस संघर्ष में एक साथ विजयी न हों।

इसीलिए आज के वैश्विक नेतृत्व की दयनीय स्थिति को लेकर हमें चिंतित होना चाहिए। कई सम्मानित आवाजें हैं जो यह तर्क दे रही हैं कि कोविड-19 बहुपक्षवाद का अंत दिखाता है। यह संयुक्त राष्ट्र एवं उसकी सम्पूर्ण परिकल्पना का अंत है। आने वाले समय में नई विश्व व्यवस्था एकपक्षीय ही होगी। हम इसे तब तक नहीं जीतेंगे, जब तक हम इसे एक साथ नहीं जीत लेते।

लेकिन यह कोविड-19 के लिए पर्याप्त नहीं होगा और निश्चित रूप से जलवायु परिवर्तन के खिलाफ तो हमारा पक्ष और भी कमजोर होगा। कोविड-19 की तरह, जलवायु परिवर्तन को भी वैश्विक नेतृत्व की आवश्यकता है। यदि एक भी देश उत्सर्जन जारी रखता है, तो बाकी सभी देशों के प्रयासों पर पानी फिर जाएगा। अगर हम चाहते हैं कि सभी देश मिलकर कार्रवाई करें, तो हमें एक सर्वमान्य समझौते का निर्माण करना चाहिए, जिसमें अंतिम देश के अंतिम व्यक्ति का विकास पर अधिकार हो।

इस अंतर-निर्भर दुनिया में हमें वैश्विक नेतृत्व की आवश्यकता है। इसलिए, कोविड-19 के बाद की दुनिया की नई सामान्य स्थिति यही होगी, हमें यह याद रखना चाहिए। हम इसे कैसे ठीक करते हैं यह कल के लिए सवाल है। लेकिन इसे ठीक किए बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं और जनस्वास्थ्य पर अभूतपूर्व संकट

महामारी के वक्र को समतल करने का अर्थ आर्थिक शिथिलता भी है। एक असमान विश्व में इसका सबसे ज्यादा बोझ कौन उठाएगा?

रिचर्ड महापात्रा

अप्रैल के महीने तक कोरोनावायरस (कोविड-19) महामारी एक ऐसी समस्या बन चुकी थी जिससे दुनिया का कोई देश अछूता नहीं रहा। इस बीमारी की शुरुआत चीन से हुई और बाद में यूरोप एवं अमेरिका कहीं अधिक घातक हॉटस्पॉट बनकर उभरे। इससे यह धारणा और भी पुष्ट हुई कि कोविड-19 धनी एवं सम्पन्न लोगों का रोग है। मार्च के मध्य तक इस बीमारी ने पूरी दुनिया में तबाही मचा दी और विश्व के कामकाज को पूरी तरह से बाधित कर दिया। 29 अप्रैल 2020 तक 31.48 लाख से अधिक लोग इसके संक्रमण की चपेट में आ चुके हैं और उनमें से 2.18 लाख से अधिक की मृत्यु हो चुकी है। वायरस संक्रमितों और मौत का यह आंकड़ा प्रतिदिन बढ़ रहा है।

वर्तमान में कोविड-19 के फैलने के पीछे की सबसे बड़ी वजह हमारी वैश्विक अर्थव्यवस्था है और यह 1919-20 के स्पैनिश फ्लू की तरह नहीं है जो प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ड्यूटी पर तैनात सैनिकों द्वारा फैलाया गया था। यही कारण है कि यह बीमारी स्वास्थ्य के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के लिए भी एक अत्यंत खतरनाक चुनौती बनकर उभरी है। मानवजाति के इतिहास में कभी भी हमारे आवागमन पर ऐसी रोक नहीं लगी थी। जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के अनुसार, लगभग 3.1 बिलियन लोग लॉकडाउन में हैं या यूं कह लें कि धरती के हर दूसरे निवासी की रोजमर्रा की जिंदगी पर रोक लग गई है।

सेंटर फॉर इकोनॉमिक पॉलिसी रिसर्च के अर्थशास्त्रियों के एक नेटवर्क का अनुमान है कि ग्रह के उत्पादन और आय के दो-तिहाई से अधिक हिस्से के लिए जिम्मेदार देश इस बीमारी को रोकने के लिए ऐसे कदम उठा रहे हैं जो सामान्य स्थिति में कभी संभव नहीं थे।

अंतरराष्ट्रीय प्रवासन संगठन ने इस महामारी को "गतिशीलता का अभूतपूर्व संकट" कहा है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में, हर कोई किसी न किसी का आर्थिक हित या निवेश है। और ऐसे में अगर गतिशीलता न रहे तो अर्थव्यवस्था चरमरा जाती है। वर्तमान में भारत में 40 दिनों का लॉकडाउन चालू है जिसकी वजह से श्रमिकों को काम नहीं मिल पाया है और बाजार भी ठप्प पड़े हैं। इसने प्रभावी रूप से मांग और आपूर्ति को भी ठप्प कर दिया। इसका अर्थव्यवस्था पर बहुत ही बुरा असर पड़ा है और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के मुताबिक, विश्व एक अनिश्चितकालीन मंदी की चपेट में आ चुका है।

हालांकि यह सब सोच समझकर किया गया है। कोविड-19 को रोकने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण पहलू इसके प्रसार को रोकना या इस महामारी के वक्र को समतल करना है। ऐसा करना हर एक देश के लिए जरूरी है और ऐसी स्थिति में लॉकडाउन का लंबा चलना लाजिमी है ।

अतः हम व्यापक प्रतिबंधों के माध्यम से इस बीमारी को रोकने के लिए जितनी तेजी करेंगे उसी तेजी से हमारी अर्थव्यवस्था भी शिथिल पड़ती जाएगी। दूसरे शब्दों में, हमें वायरस के प्रसार को रोकने के लिए, आर्थिक स्थिरता का खतरा उठाना होगा। जैसा कि प्रिंसटन विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर, पियरे-ओलिवियर गौरिन्चास ने कहा, "संक्रमण वक्र को समतल करना अनिवार्यतः

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक नीति अनुसंधान संस्थान के अनुसार एक प्रतिशत वैश्विक आर्थिक मंदी का मतलब है कि गरीबी का स्तर 2 प्रतिशत बढ़ जाना। इसका मतलब है कि दुनियाभर में गरीबों की संख्या में 1.4 करोड़ का इजाफा होगा

फोटो: विकास चौधरी / सीएसई

सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर और गाड़ियों में सामान की तरह भरकर अपने घरों तक पहुंचे ये लोग एक अनिश्चित भविष्य का सामना करने को मजबूर हैं

आर्थिक मंदी को बढ़ावा देगा।" लेकिन सवाल यह है कि उपचार का यह दुष्प्रभाव किसे सर्वाधिक प्रभावित करेगा।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) के प्रशासक अकिम स्टेनर के अनुसार, "यह महामारी सिर्फ एक स्वास्थ्य संकट नहीं है और इसके प्रतिकूल प्रभाव विश्व के बड़े हिस्से में दिखेंगे।" स्टेनर आगे कहते हैं, "हमने पिछले दो दशकों में जो भी प्रगति की है, यह बीमारी उसे मिट्टी में मिलाकर रख सकती है। हम एक पूरी पीढ़ी को खो सकते हैं। अगर हम मरीजों को मरने से बचा लें फिर भी मानवाधिकारों, रोजगार के अवसरों एवं मानवीय गरिमा को भारी क्षति पहुंचने का खतरा है।" भारत में लागू किए गए देशव्यापी लॉकडाउन के बाद हमें शहरी केंद्रों से प्रवासी श्रमिकों के बड़े पैमाने पर पलायन की तस्वीरें देखने को मिलीं। लाखों श्रमिकों ने केरल से बिहार, दिल्ली से कश्मीर और आंध्र प्रदेश से ओडिशा का रुख किया। यह कोविड-19 का डर नहीं था बल्कि आजीविका के साधनों के बिना जीवित रहने का असहनीय बोझ था। गौरतलब है कि भारत का लगभग 87 प्रतिशत कार्यबल अनौपचारिक क्षेत्र में है।

डाउन टू अर्थ द्वारा की गई गणना से पता चला कि कुछ 125 शहरों/कस्बों से प्रवासन की सूचना आई है। सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर और गाड़ियों में सामान की तरह भरकर अपने घरों तक पहुंचे ये लोग एक अनिश्चित भविष्य का सामना करने को मजबूर हैं। वे जीवित रहने के लिए क्या करेंगे?

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुमानों के अनुसार, 2.5 करोड़ तक लोगों के बेरोजगार होने की आशंका है। यही नहीं, श्रमिकों की कुल आय में 3.4 ट्रिलियन डॉलर तक गिरावट हो सकती है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) स्वीकार करता है कि असली आंकड़े और भी भयावह हो सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने अनुमान लगाया कि केवल विकासशील देशों में आय का नुकसान 220 बिलियन डॉलर से अधिक होने की आशंका है। अनुमानों के अनुसार विश्व की कुल आबादी का 55 प्रतिशत हिस्सा सामाजिक सुरक्षा से वंचित है और इस वजह से आर्थिक नुकसान का संकट और गहरा सकता है।

गतिशीलता प्रतिबंधों के कारण हो रहा आर्थिक नुकसान "ऐबसोल्यूट" है या इसे पुनर्प्राप्त नहीं किया जा सकता है? व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीटीएडी) के अनुसार, 2020 में वैश्विक अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर घटकर 2 प्रतिशत से नीचे आ जाएगी। इसका मतलब विश्व अर्थव्यवस्था के लिए 1 ट्रिलियन डॉलर का नुकसान है। अंतरराष्ट्रीय आर्थिक नीति अनुसंधान संस्थान (आईएफपीआरआई) के अनुसार एक प्रतिशत वैश्विक आर्थिक मंदी का मतलब है कि गरीबी का स्तर 2 प्रतिशत बढ़ जाएगा। इसका मतलब है कि दुनिया भर में गरीबों की संख्या में 1.4 करोड़ का इजाफा होगा। आईएफपीआरआई के अनुसार, श्रम बाजारों में व्यवधानों के कारण 2020 में श्रम उत्पादकता में 1.4 प्रतिशत की गिरावट होगी। इसके अलावा श्रम आपूर्ति में 1.4 प्रतिशत की गिरावट आने की संभावना है।

विश्व बैंक ने अनुमान लगाया है कि स्वास्थ्य पर हुए अप्रत्याशित व्यय

कोरोना का कहर

वायरस की जकड़न

बेल्जियम में कोविड–19 से प्रति दस लाख की आबादी पर मृत्यु का अनुपात सर्वाधिक 647 है। स्पेन में यह अनुपात 519 और इटली में 457 है, जबकि वैश्विक औसत 29 है

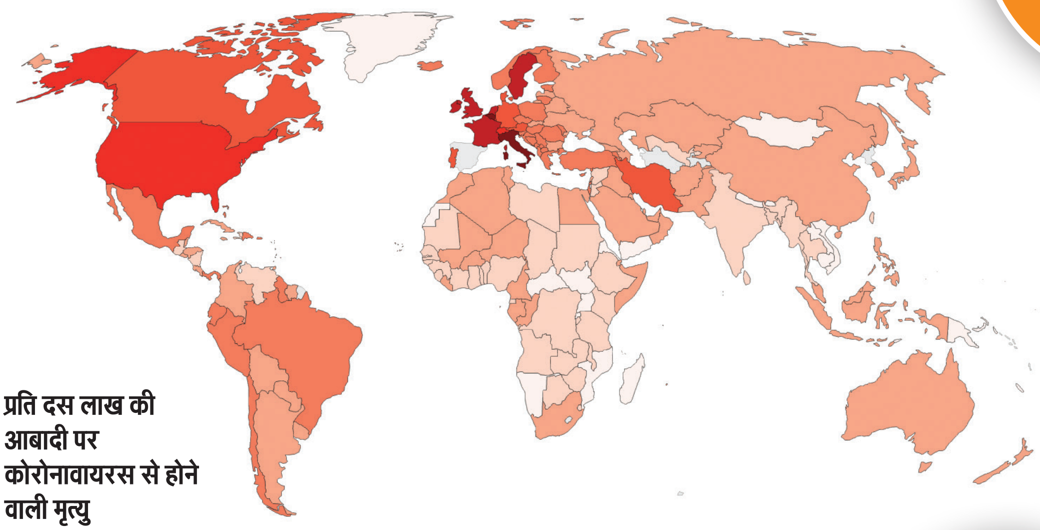

प्रति दस लाख की आबादी पर कोरोनावायरस से होने वाली मृत्यु

डाटा उपलब्ध नहीं | 0 - 0.01 | 0.01 - 1 | 1 - 10 | 10 - 50 | 50 - 100 | 100 - 200 | 200 - 400 | > 600

अफ्रीका	एशिया	अमेरिका	यूरोप	ओसेनिया
34,743 मामले	**5,02,955** मामले	**12,93,607** मामले	**12,88,663** मामले	**8,136** मामले
1,591 मौतें	**18,203** मौतें	**74,591** मौतें	**1,32,543** मौतें	**116** मौतें

जापान के पानी के जहाज में 696 मामले सामने आए जिनमें 7 लोगों की मौत हो गई

- दुनियाभर में कोविड–19 संक्रमितों की संख्या
- स्पेन में कोविड–19 संक्रमितों की संख्या
- चीन में कोविड–19 संक्रमितों की संख्या
- संयुक्त राज्य अमेरिका में कोविड–19 संक्रमितों की संख्या

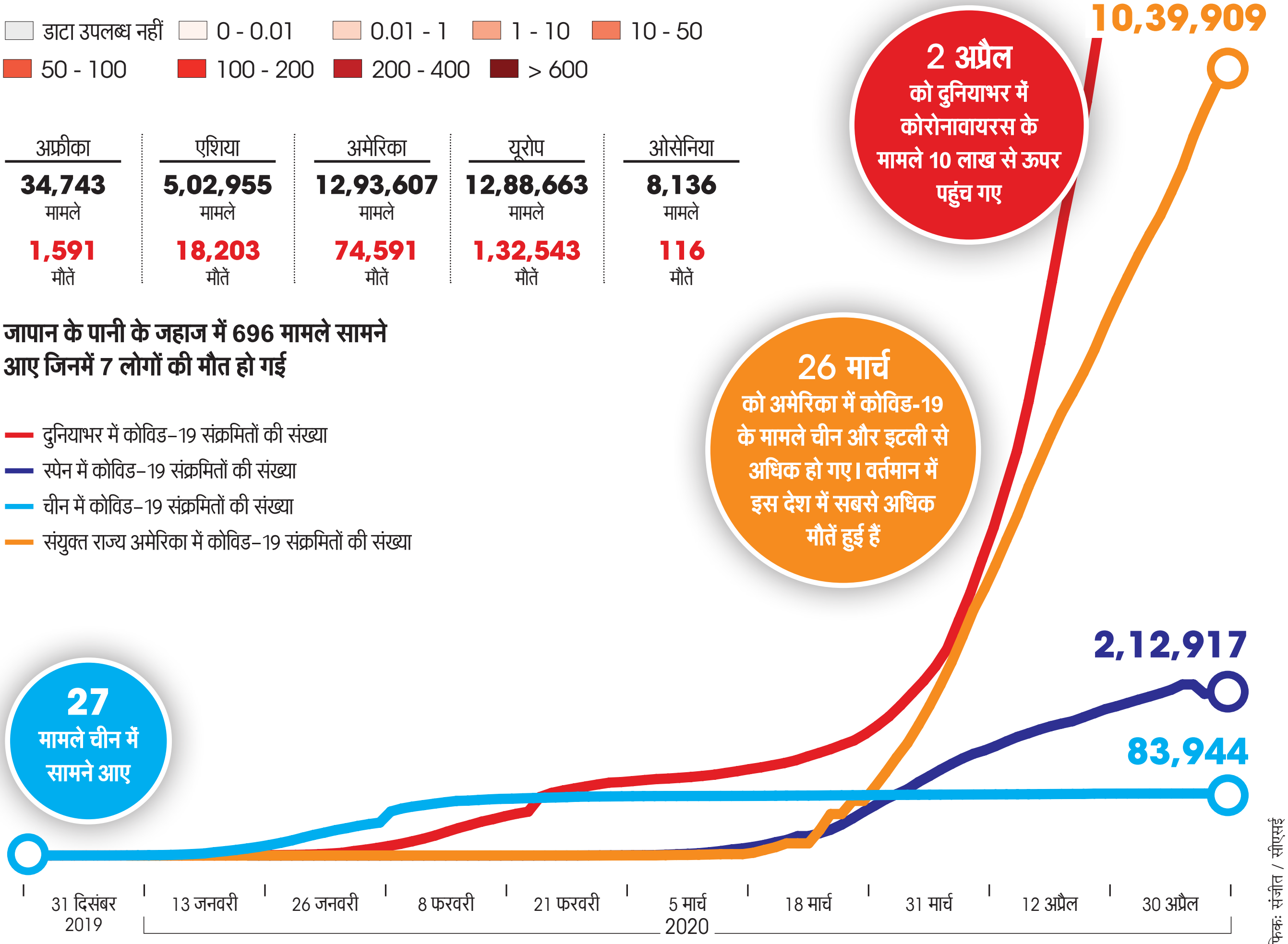

स्रोत: यूरोपियन सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन

ग्राफिक: संजीत / सीएसई

फोटोः विकास चौधरी / सीएसई

खाद्य एवं कृषि संगठन का कहना है कि दुनियाभर में 30 करोड़ बच्चे बेहतर भोजन के लिए अपने स्कूलों पर निर्भर हैं

के कारण प्रत्येक वर्ष 10 करोड़ लोग दोबारा चरम गरीबी की चपेट में आ जाते हैं। कोविड-19 के कारण यह संख्या बढ़ने की आशंका है। सामान्य परिस्थितियों में, दुनिया की 40 प्रतिशत आबादी के पास कोई स्वास्थ्य बीमा नहीं है या राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं तक उनकी पहुंच नहीं है। ये लोग हर साल अपने परिवार के बजट का करीब 10 फीसदी स्वास्थ्य पर खर्च करते हैं। भारत में, 68 प्रतिशत के करीब परिवार निजी स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियों पर निर्भर हैं और वे स्वास्थ्य के लिए अपनी जेब से खर्च करने पर मजबूर हैं। अगर राज्यों को सामुदायिक ट्रांसमिशन स्थितियों का सामना करना पड़ता है, तो स्वास्थ्य का बुनियादी ढांचा चरमरा जाएगा। सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली की अनुपस्थिति में लोग बेरोजगार होने के बावजूद, खर्च के बोझ तले दबे रहेंगे। भारत में सबसे ज्यादा कोविड-19 मामलों वाले राज्य- महाराष्ट्र में प्रति सरकारी अस्पताल पर औसत 1,70,000 लोग हैं।

खाद्य असुरक्षा और भुखमरी

दुनियाभर में खाद्य असुरक्षा के और बढ़ने की आशंका है। लगभग 82 करोड़ आबादी या तो भुखमरी का शिकार है या सामान्य जीवन के लिए अनुशंसित पर्याप्त कैलोरी उन्हें उपलब्ध नहीं है। लगभग 11.3 करोड़ लोग इतने खाद्य असुरक्षित हैं कि बाहरी सहायता उपलब्ध नहीं कराने पर उनका जीवन तत्काल खतरे में पड़ सकता है। यदि इस परिदृश्य में महामारी आजीविका श्रृंखला और वैश्विक समर्थन प्रणाली को बाधित करती है, तो भोजन की कमी से बड़े पैमाने पर मौतों की आशंका है।

विकासशील देशों में संकट ऐसा गहरा है कि यूएनसीटीएडी ने उन्हें गंभीर वित्तीय संकट से बचाने के लिए 2.5 ट्रिलियन डॉलर के बचाव पैकेज की मांग की है। इस पैकेज में विकासशील देशों के 1 ट्रिलियन डॉलर के ऋण की माफी शामिल है। अफ्रीका में महामारी के झटके से राजस्व का भारी नुकसान होगा और आर्थिक विकास धीमा हो जाएगा। महामारी से निपटने के लिए अफ्रीकी महाद्वीप को 100 बिलियन डॉलर के तत्काल आपातकालीन वित्तपोषण की आवश्यकता होगी। सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) की प्रगति भी, खासकर विकासशील देशों में अब शंका के घेरे में है।

यूएनसीटीएडी के अनुसार, अगले दो वर्षों के लिए विकासशील देशों के सामने वित्तपोषण में 2-3 ट्रिलियन डॉलर की कमी का संकट होगा। कोविड-19 के हॉटस्पॉट बन चुके कई देशों में प्रसार के चरम पर पहुंचने के संकेत हैं। हालांकि और कई देश इस वक्त घातीय अथवा एक्सपोनेनशियल प्रसार के चरण में पहुंच चुके हैं। महामारियां बार-बार आने के लिए कुख्यात हैं। उदाहरण के तौर पर स्पैनिश फ्लू को ले सकते हैं जिसने कुल तीन बार वापस आकार विश्व की आबादी के 2 प्रतिशत हिस्से को अपनी चपेट में ले लिया था। लाखों गरीबों की मौत के अलावा इस फ्लू ने अमीरों को भी अपनी चपेट में लिया था। कोविड-19 भी कुछ इसी राह पर है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के दादा की मौत स्पैनिश फ्लू से ही हुई थी। अतः हम कह सकते हैं कि आज हमारी धरती एक अत्यंत ही अप्रत्याशित संकट में फंस चुकी है।

बोलती तस्वीरें

कोरोनावायरस के चलते पूरी दुनिया में ठहराव आ गया है। लॉकडाउन इससे बचने का एक अनिवार्य उपाय बनकर उभरा है। हमने तस्वीरों के माध्यम से इसके मायनों को समझने की कोशिश की

कोविड–19 की महामारी कम से 140 लाख अतिरिक्त लोगों को गरीबी के दलदल में धकेल देगी। कम से कम 50 देशों को भोजन की तत्काल जरूरत है। इसकी एक बानगी दिल्ली में दिखी। यहां हजारों बेघर और बेरोजगार एक राशन की दुकान पर उमड़ पड़े। उनके थैले लॉकडाउन में सामाजिक दूरी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से चिन्हित किए गए घेरे में रखे हैं

फोटोः रॉयटर्स

राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन के दौरान कोलकाता के पास हावड़ा में स्थित एक आश्रय गृह में बेघर लोगों ने खुद को बंद कर लिया ताकि कोरोनावायरस के फैलाव को कम किया जा सके। दरअसल ऐसी जानकारियां मिल रही हैं कि आश्रय गृहों और आधिकारिक रूप से घोषित चिकित्सा केंद्रों में बदतर स्थितियों के कारण लोग भाग रहे हैं

कोरोना का कहर

कारोनावायरस से सबसे अधिक मौतें यूरोपीय देशों में हुई हैं। यह तस्वीर स्पेन के एक अस्थायी अस्पताल की है जो मैड्रिड स्थित ट्रेड फेयर ऑर्गनाइजेशन के कॉन्फ्रेंस सेंटर में बनाया गया है। अमेरिका और कई दूसरे देशों में शवों को रखने के लिए विशेष इंतजाम किए गए हैं

फोटोः रॉयटर्स

फोटोः प्रकाश ठाकुर

महामारी के फैलने साथ ही लोगों में जागरुकता भी आ रही है। लोग बचाव के नए-नए उपाय खोज रहे हैं। छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाकों में पत्तों का मास्क बनाकर सुरक्षा की जा रही है। ऐसा इसलिए भी किया जा रहा है क्योंकि ग्रामीण इलाकों में मास्क नहीं मिल रहे हैं और लोगों को यह महंगे भी पड़ रहे हैं। वर्तमान हालात में डॉक्टरों के पास भी सुरक्षा के पुख्ता इंतजाम नहीं हैं। बहुत से डॉक्टर और स्वास्थ्यकर्मी कोविड-19 से संक्रमित हो गए हैं

कोरोना का कहर

फोटोः रॉयटर्स

लॉकडाउन के कारण काम बंद होने पर हजारों प्रवासी मजदूर अपने गांव लौटने की हड़बड़ी में हैं। बहुत से राज्यों ने गांवों में प्रवेश से पहले इनकी स्क्रीनिंग करने को कहा है। इस तस्वीर में लखनऊ में एक नगरपालिका कर्मी प्रवासी मजदूरों को संक्रमण मुक्त करने के लिए स्प्रे का छिड़काव कर रहा है। मजदूरों को बसों में बिठाने के पहले यह स्प्रे किया जा रहा है

बहुत से राज्यों में सामाजिक दूरी सुनिश्चित कराने के लिए कई पाबंदियां लगाई गई हैं। इनमें एक है दो लोगों के बीच कम से आधे मीटर की दूरी रहे। लॉकडाउन के कुछ दिनों बाद से ही सामाजिक दूरी की यह व्यवस्था बन गई। ओडिशा के इस बाजार में सुरक्षित दूरी का विशेष ध्यान रखा गया है। यह बाजार एक बड़े से मैदान में लगाया गया है और यहां दुकानें इस प्रकार लगाई गई हैं कि दो दुकानदारों के बीच कम से कम 12 फुट का फासला रहे

फोटोः संतोष महापात्रा

कोरोना का कहर

फोटोः क्रिस्टोफ हितेयाज़ू

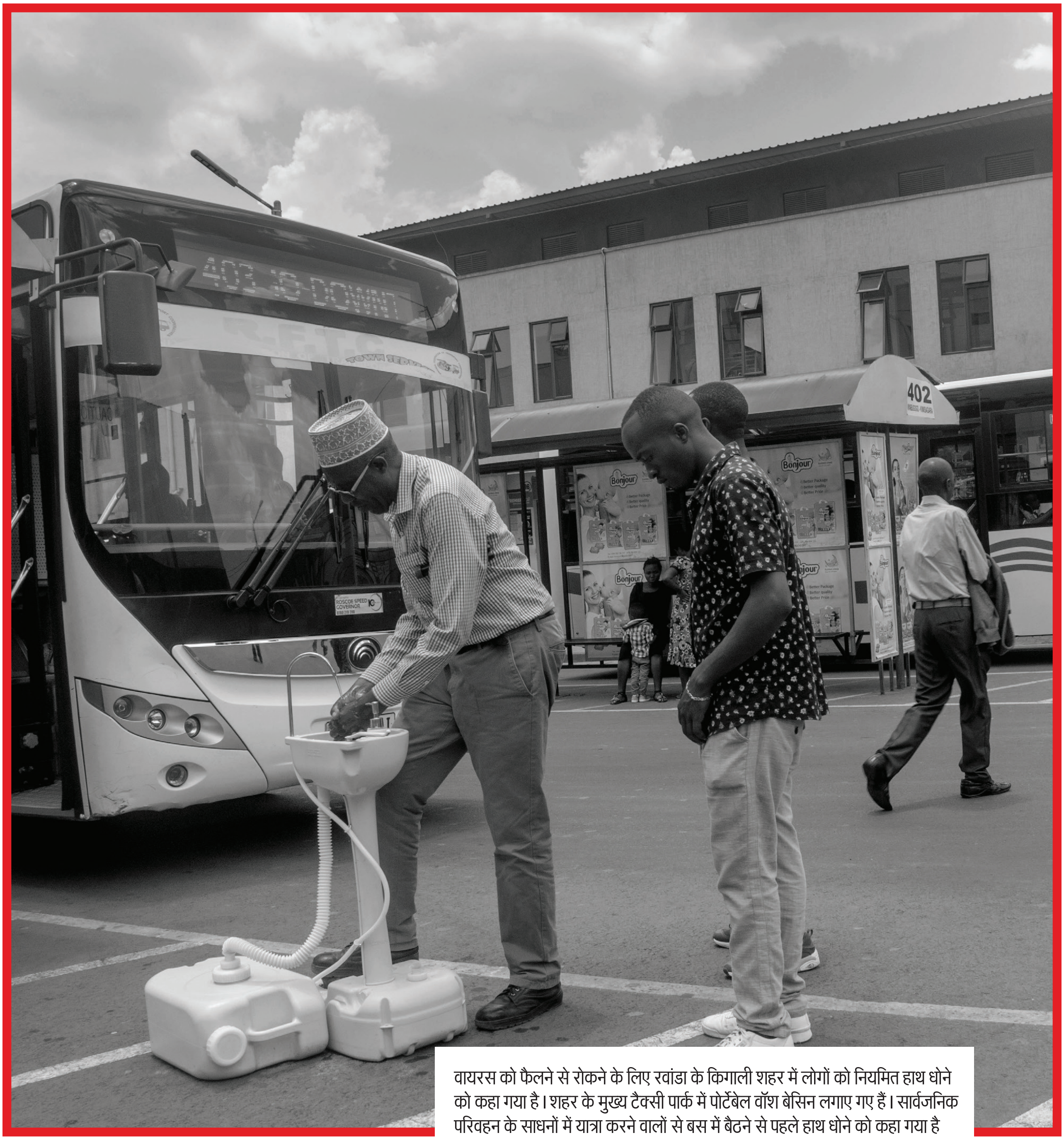

वायरस को फैलने से रोकने के लिए रवांडा के किगाली शहर में लोगों को नियमित हाथ धोने को कहा गया है। शहर के मुख्य टैक्सी पार्क में पोर्टेबल वॉश बेसिन लगाए गए हैं। सार्वजनिक परिवहन के साधनों में यात्रा करने वालों से बस में बैठने से पहले हाथ धोने को कहा गया है

“नोटबंदी से अधिक नुकसान”

लॉकडाउन से उत्पादन गतिविधियां रुक गई हैं। इसका अर्थ है, कामगारों की आय खत्म हो जाना

प्रणब सेन

भारत एक अभूतपूर्व संकट में फंसा है। नोवेल कोरोनोवायरस बीमारी (कोविड-19) का प्रकोप तो था ही, इसी बीच प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लॉकडाउन (तालाबंदी) की घोषणा कर दी। इससे देश के विभिन्न भागों में हजारों प्रवासी अपने घर लौटने के लिए सड़क पर आ गए। केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में माना कि इससे लॉकडाउन का उद्देश्य असफल हो सकता है। अब तक, इस महामारी का प्रकोप केवल शहरों में था। लेकिन, लोगों को अपने गांव लौटने की अनुमति देना, आपदा को निमंत्रण देने जैसा हो सकता है। ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य सुविधाएं बेहद खराब हैं। यदि आपदा का विस्तार हुआ तो बड़ी तादाद में लोग मरेंगे। दुर्भाग्य से ऐसा ही हुआ है। सरकार को महामारी के केंद्र वुहान की तरह संपूर्ण लॉकडाउन की घोषणा करनी चाहिए थी, ताकि वायरस भौगोलिक रूप से सीमित हो सके। भारत के शहरों में फंसे लोग भूखे हैं और अपनी आजीविका कमाने में असमर्थ हैं। सरकार ने उनके बैंक खातों में पैसा भेजने की पहल की, ताकि वे राशन का सामान खरीद सकें। लेकिन यह पहल भी बहुत उपयोगी नहीं है, क्योंकि उनमें से कई के जन-धन खाते नहीं हैं। कई लोगों के पासबुक और डेबिट कार्ड उनके गांव में ही है। यह अभी तक स्पष्ट नहीं है कि ऐसे लोगों का क्या होगा, क्योंकि सरकार ने इस पर कोई बात ही नहीं की है। और अगर लोगों को किसी तरह से पैसा मिल भी जाता है, तो सरकार के पास दुकानों तक राशन का सामान पहुंचाने की क्या योजना है? लगता है, सरकार यह भूल गई है कि थोक बाजार से स्थानीय दुकानों तक राशन और सब्जी आदि पहुंचाने का काम श्रम आधारित है। यानी, इसमें श्रमिकों की भारी संख्या की जरूरत होगी। सरकार ने लोगों को लॉकडाउन होने के लिए कहा और सिर्फ ये वादा किया कि भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित की जाएगी। लेकिन इस बात पर कोई चर्चा नहीं हुई कि यह कैसे सुनिश्चित किया जाएगा।

सबसे बड़ी चिंता यह है कि अभी रबी फसल की कटाई का समय है। देश के कुछ हिस्सों में कटाई का काम खत्म हो गया है जबकि अन्य भागों में अभी बाकी है। लॉकडाउन से कृषि क्षेत्र तबाह हो सकता है। इसके केंद्र में थोक बाजार हैं। यदि उन्हें खुला छोड़ दिया जाता है, तो सरकार को कई चीजों के बारे में सावधान रहना होगा। खरीदार, विक्रेता, किसान और व्यापारी, सभी थोक बाजार में जाते हैं। ऐसे में वहां किस हद तक सामान्य स्थिति बनाए रखी जा सकती है? और, अगर थोक बाजार बंद हो जाते हैं, तो पूरी व्यवस्था ध्वस्त हो जाएगी। इसका कृषि पर व्यापक नकारात्मक असर पड़ेगा।

कोविड-19 की वजह से जो लॉकडाउन है, वो नोटबंदी (विमुद्रीकरण) की तुलना में अधिक हानिकारक हो सकता है। जब नवंबर 2016 में नोटबंदी की घोषणा की गई थी, तब भी आर्थिक गतिविधियां जारी थीं। समस्या सिर्फ धन (करेंसी) तक पहुंच की थी। उस वक्त भी बहुत सारे लोग काम करना और उत्पादन जारी रखे हुए थे, लेकिन उसके बदले उन्हें पैसा नहीं मिल पा रहा था। नियोक्ताओं के पास नकदी का अभाव था। हालांकि, कामगार इस शर्त के साथ काम कर सकते थे कि एक बार नकदी उपलब्ध होने के बाद उन्हें भुगतान कर दिया जाएगा। वे दुकानों से भी इसी तरह की अनौपचारिक बातचीत करके सामान उधार ले सकते थे और जब नकदी आने लगी थी तब उन्होंने पैसा चुका दिया। लेकिन इस बार मामला अलग है। उत्पादन गतिविधियां रुक गई हैं। इसका अर्थ है, कामगारों की आय खत्म हो जाना। यदि कामगारों के पास बचत नहीं होगी तो उनके लिए जीना कठिन जो जाएगा। और जो बचत होगी, वे उसे खर्च करेंगे, लेकिन अगर लॉकडाउन जारी रहता है, तो क्या होगा?

नोटबंदी का दुष्प्रभाव लंबे समय तक रहा, क्योंकि ने सरकार ने वे काम नहीं किए, जो उसे पहले दिन से करने चाहिए थे। जैसे, तब तक बैंक ऋण चुकाने की बाध्यता खत्म कर देनी चाहिए थी, जब तक नए नोटों की आपूर्ति का काम पूरा नहीं हो जाता या तब तक क्रेडिट व्यवस्था जारी रखनी चाहिए थी जब तक लोगों के पास भुगतान के लिए नकदी उपलब्ध नहीं हो जाती। नोटबंदी की प्रक्रिया को पूर्ण करने में तकरीबन एक साल लग गए। इस बीच, छोटे और मध्यम उद्यमों (एसएमई) को गैर-निष्पादित आस्तियां (एनपीए) बना दिया गया, कई बंद हो गए। इसके दुष्प्रभाव आज तक दिखाई दे रहे हैं। निम्न-मध्यम वर्ग, जैसे छोटे दुकानदार और व्यापारियों का अस्तित्व खतरे में आ गया। नोटबंदी अब भी अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रही है। तो क्या अगर नोटबंदी नहीं की गई होती तो, आज भारत लॉकडाउन के इस चोट से उबर सकता था? इसका जवाब यही है कि मुद्रा लोन के बलबूते अर्थव्यवस्था कुछ हद तक सामान्य होने लगी थी। एसएमई ऋण लेकर काम शुरू कर रहे थे, हालांकि पहले के मुकाबले काम का पैमाना थोड़ा कम ही था, लेकिन वे सक्रिय हो रहे थे। लेकिन, अब तो वह भी बंद हो गए हैं।

(डाउन टू अर्थ को दिए साक्षात्कार के संपादित अंश। लेखक, सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय में आर्थिक सांख्यिकी संबंधी स्थायी समिति के प्रमुख हैं)

गांवों में गंभीर संकट

नियमों में छूट मिलने के बावजूद किसान कोरोनावायरस के खिलाफ छिड़ी जंग से बुरी तरह प्रभावित हैं

जितेंद्र, कुंदन पांडे, विवेक मिश्रा, भागीरथ, केए शाजी, अजीत पांडा, गुरविंदर सिंह और पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

एक महीना पहले तक धनीराम साहू को नहीं पता था कि वायरस या सोशल डिस्टेंसिंग किस बला का नाम है। साहू छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले के शंकरदह में रहते हैं। वह कहते हैं, "अब हर कोई कोरोनावायरस और इससे खुद को महफूज रखने की बात करता दिख रहा है।" दुनियाभर के तमाम विज्ञानियों और एपिडेमियोलॉजिस्ट की तरह साहू को भी इस वायरस के बारे में बहुत जानकारी नहीं है। लेकिन, 24 मार्च को उनका सामना इस वायरस के क्रूर चरित्र से हुआ। उस दिन अहले सुबह धमतरी शहर के घड़ी चौक पर वह 1,500 दिहाड़ी मजदूरों के साथ काम के इंतजार में बैठे थे। राइस मिलर, दुकानदारों, बिल्डरों या धनाढ्य घरों के लोग काम करवाने के लिए यहां से मजदूरों को दिहाड़ी पर ले जाते हैं। काम देने वाले तो आए नहीं, लेकिन कुछ पुलिस कर्मचारी आ धमके। पुलिस कर्मचारियों ने मजदूरों से दो टूक लहजे में कह दिया कि सभी अपने घरों में लौट जाएं और तीन हफ्ते तक अपने गांवों से बाहर कदम न रखें। धनीराम उस दिन को याद करते हुए कहते हैं, "पुलिसवाले ने हमसे कहा कि कोरोनावायरस से निबटने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर लॉकडाउन की घोषणा की है। पुलिस की बात सुनकर हममें से ज्यादातर लोग हक्के-बक्के रह गए। हमें समझ ही नहीं आया कि इस पर क्या प्रतिक्रिया दें।" साहू पांच सदस्यों वाले अपने परिवार में इकलौते कमाने वाले शख्स हैं। मजदूरी कर वह रोजाना 150 से 200 रुपए कमा लेते हैं, जिससे दो दिनों तक परिवार के खाने लायक चावल, दाल और सब्जियां

पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

छत्तीसगढ़ की गोंड आदिवासियों के लिए महुआ का फूल जीवनयापन का साधन है लेकिन लॉकडाउन के कारण हाट बंद होने से उन्हें फायदा नहीं मिल रहा है

आ जाती हैं। 24 मार्च के पुलिसिया फरमान के एक हफ्ते बाद उन्हें फ्री में अगले दो महीने का राशन मिल गया। साहू ने बताया, "राशन में 70 किलो चावल, 2 किलो चीनी और 4 पैकेट नमक के थे।" लेकिन, उनकी चिंता इससे खत्म नहीं हुई। वह सोचने लगे कि बच्चों के लिए अब दाल और सब्जियों का इंतजाम कैसे होगा।

खदादह जैसे गांवों में गोंड जनजाति की हालत भी कमोवेश साहू जैसी ही है। महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार अधिनियम के तहत 100 दिनों के रोजगार (मनरेगा) व वन्य उत्पाद मसलन महुआ, इमली और लाख की बिक्री कर गोंड जनजाति अपनी आजीविका चलाती है। धमतरी, एशिया का सबसे बड़ा लाख उत्पादक क्षेत्र है। लेकिन लॉकडाउन के चलते मनरेगा का काम ठप है। दूसरी तरफ, प्रसंस्करण सेंटर और मार्केट भी बंद है। लुप्तप्राय कमरी जनजाति से आने वाली समरी बाई कहती हैं, "महुआ के फूल पूरी तरह तैयार हो चुके हैं। मैंने कई टोकरी महुआ तोड़ कर रखा है, लेकिन बिचौलिया आ नहीं रहा है और साप्ताहिक हाट भी बंद है। महुए की बिक्री नहीं हो रही है जिस कारण मैं सब्जी या तेल खरीद नहीं पा रही हूं।" वन्य उत्पादों के स्थानीय व्यापारी दिलावर रुकारिया विस्तार से समझाते हुए कहते हैं, "साप्ताहिक हाट जनजातीय अर्थव्यवस्था की जीवनरेखा है।" चूंकि अब वे सामान बेच नहीं पा रहे हैं, तो वन्य उत्पादों के लिए जंगल में जाना भी बंद कर देंगे। इससे वन्य उत्पाद जंगल में खराब हो जाएंगे और जनजातियों की आजीविका पर संकट आ जाएगा।

कोरोनावायरस महामारी ने भारत में ऐसे समय (फरवरी से अप्रैल) में दस्तक दी है जब कृषि व वन्य उत्पादों की बिक्री होती है और किसानों के हाथ में पैसा आता है। हाथ में दो पैसा हो, तो ग्रामीण परिवारों में एक अलग तरह का आत्मविश्वास दिखता है। उत्तर प्रदेश के महोबा जिले के पुपवारा गांव में रहने वाले बिंद्रावन समेत अधिकांश किसानों का यह आत्मविश्वास डिगता दिख रहा है। बिंद्रावन बताते हैं कि इस साल जैसी फसल पिछले 10 साल से नहीं हुई। उम्मीद थी कि फसल बेचकर कर्ज चुका देंगे लेकिन जब बाजार में आढ़ती के पास पहुंचे तो फसल में तमाम कमियां निकाल दीं और कम दाम पर फसल लेने को तैयार हुआ। इतना ही नहीं आढ़ती फसल का मूल्य भी तत्काल नहीं दे रहे हैं। उनका कहना है कि दो से तीन महीने में फसल के पैसे मिलेंगे। यह सब देख बिंद्रावन खरेला स्थित मंडी में बेचने के बजाय फसल को घर ले आए। अब उन्हें लॉकडाउन के बाद हालात सुधरने का इंतजार है। वह बताते हैं कि अगर फसल समय पर नहीं बिकी को खरीफ की फसल प्रभावित हो सकती है। उनका कहना है कि 26 अप्रैल को उनके बड़े बेटे की शादी तय हुई थी। शादी की तैयारियों में काफी पैसा खर्च हो गया। लॉकडाउन के कारण शादी कैंसल होने से उन्हें काफी नुकसान पहुंचा है। अगर फसल समय पर नहीं बिकी और उसके ठीक दाम नहीं मिले तो भारी नुकसान होने की आशंका है। हालांकि सरकार ने किसानों, कृषि संबंधी गतिविधियों और खाद्य आपूर्ति को लॉकडाउन से राहत दी है, लेकिन कोरोनावायरस से लड़ाई में सबसे ज्यादा "कोलेटरल डैमेज" देश की कृषि अर्थव्यवस्था को होता दिख रहा है। इसकी मुख्य वजहें कोरोनावायरस के संक्रमण को लेकर तेजी से फैलती अफवाह और आजादी के बाद कामगारों का शहर से अपने गांवों की ओर सबसे बड़ा पलायन हैं।

नुकसान की तस्वीर

दिल्ली

आजादपुर मंडी,
एशिया का सबसे बड़ा फल और सब्जियों का बाजार है

रोजगार
1 लाख लोग यहां काम करते हैं (इनमें बाहर से आने वाले 40,000 कामगार शामिल)

कोविड का असर
व्यापार में **50%** का नुकसान रिवर्स माइग्रेशन और वाहनों की आवाजाही पर प्रतिबंध के कारण

महाराष्ट्र

नासिक
अंगूर का बड़ा उत्पादन क्षेत्र है

रोजगार
2 लाख कृषि मजदूर यहां काम करते हैं

कोविड का असर
10,000 करोड़ रुपए का नुकसान मजदूर की कमी और यातायात पर प्रतिबंध के चलते

छत्तीसगढ़

धमतरी
देश का बड़ा वन उत्पाद क्षेत्र है। एशिया का सबसे बड़ा लाख का बाजार यहीं है

रोजगार
आदिवासी समुदाय और वनों पर आश्रित लोग इस पर निर्भर हैं

कोविड का असर
ट्रेडिंग सेंटर, साप्ताहिक हाट, लाख प्रोसेसिंग सेंटर बंद होने से आदिवासी उत्पाद नहीं बेच पा रहे हैं

(नोट : ये सूचनाएं 10 अप्रैल तक किसानों, ट्रेड यूनियनों और उद्योग से जुड़े संगठनों के साथ हुई बातचीत के आधार पर तैयार की गई हैं)

रबी फसल पर असर

गेहूं और दाल रबी सीजन की सबसे अहम फसलें हैं। मध्य प्रदेश के सेमोर जिले के बिलकिसगंज के किसान प्रवीण परमार ने कहा कि इस बार खेती के सीजन में भगवान मेहरबान रहे। लेकिन, सरकार की लचर तैयारी के कारण प्रवीण अभी परेशान हैं। मध्य प्रदेश के इस क्षेत्र में बेमौसम बारिश और ओलावृष्टि के बावजूद पैदावार अच्छी हुई है। प्रवीण के 8 हेक्टेयर खेत में 50,000 किलो गेहूं की पैदावार हुई है। 15 से 17 मार्च के बीच नकदी की सख्त जरूरत थी, तो उन्होंने नजदीकी मंडी में 1,750 रुपए प्रति क्विंटल की दर से 20,000 किलो गेहूं बेच दिया। हालांकि, सरकार ने गेहूं का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1,952 रुपए प्रति क्विंटल तय किया है। लेकिन, तब तक सरकार ने गेहूं की अधिप्राप्ति शुरू नहीं की थी। परमार कहते हैं, "सरकार को खाद्य पदार्थों की अधिप्राप्ति करने के बाद लॉकडाउन की घोषणा करनी चाहिए थी।" परमार ने बताया कि उनके गांव के किसानों को अनाज स्टोर कर रखने में कठिनाई हो रही है, क्योंकि उनके पास वैसी व्यवस्था नहीं है। वह उदास होकर कहते हैं, "अगर अनाज खराब हो गया, तो हमें भारी नुकसान होगा।" कुछ ऐसी ही स्थिति से बुंदेलखंड के किसान भी जूझ रहे हैं। बांदा जिले के बसहरी गांव में रहने वाले घनश्याम श्रीवास बताते हैं, "कई साल से सूखे की मार झेल रहे बुंदेलखंड में कुदरत की मेहरबानी से 20 साल बाद चने की बंपर पैदावार हुई है। एक बीघा में औसतन तीन क्विंटल चना निकला है, लेकिन उपज मंडी तक पहुंचाने में दिक्कत आ रही है। किसान लंबे समय तक उपज को घर में रखने की स्थिति में नहीं हैं।"

सप्लाई चेन बेपटरी

किसानों की चिंताओं को समझते हुए पश्चिम बंगाल सरकार ने 7 अप्रैल को फूलों की खेती करने वाले किसानों को लॉकडाउन से मुक्त कर दिया। लेकिन, इस निर्णय से पूर्व मिदनापुर के महतपुर गांव के किसान गणेश माइती को बहुत खुशी नहीं हुई। उनका कहना है कि जो नुकसान होना था, वह हो चुका। असल में नवरात्र व अन्य पर्व के चलते मार्च से अप्रैल के बीच फूलों खासकर सूरजमुखी की मांग बाजार में ज्यादा रहती है। फूलों की मांग का गणित समझाते हुए 30 वर्षीय माइती कहते हैं, "चूंकि मार्च से अप्रैल तक मौसम

बेहद खुशनुमा होता है, तो लोग वैवाहिक कार्यक्रम व अन्य सामाजिक जुटान का आयोजन इसी समय करते हैं। मगर, इस बार इस सीजन में फूलों की मांग नहीं के बराबर रही। अगर फूलों को सही वक्त पर न तोड़ा जाए, तो इससे पौधों की उत्पादन क्षमता को नुकसान हो सकता है। इसलिए हमने टनों फूल तोड़कर मवेशियों को खिला दिया।" माइती को अनुमान है कि उन्हें दो हफ्ते में 15,000 रुपए का नुकसान हो चुका है।

औद्योगिक संगठनों का कहना है कि फूल बंगाल के हावड़ा, नदिया, उत्तर व दक्षिण 24 परगना और पूर्व मिदनापुर के किसानों की महत्वपूर्ण नकदी फसल है। देश में कुछ फूल उत्पादन में बंगाल की भागीदारी करीब 12 प्रतिशत है। बंगाल फ्लावर ग्रोअर एंड ट्रेडर्स एसोसिएशन के महासचिव नारायण चंद्र नायक ने कहा, "मार्च के मध्य में जब सरकार ने सामाजिक जुटान को लेकर तरह-तरह के दिशा-निर्देश जारी करना शुरू किया था, तभी से फूल बाजार में सुस्ती आने लगी थी। हमारा आकलन है कि लॉकडाउन से 8 से 10 करोड़ रुपए का नुकसान हो सकता है।" नायक ने कहा कि फूल किसानों को नियमों में ढील देने के बावजूद 20 प्रतिशत तक ही मार्केट में रिकवरी हो सकेगी, क्योंकि फूलों की सप्लाई के लिए बहुत कम वाहन उपलब्ध हैं। पश्चिम मिदनापुर के फूल किसान हीरानंद मन्ना कहते हैं, "जब तक विज्ञानी कोरोनावायरस का इलाज नहीं खोज लेते और सामाजिक जुटान से प्रतिबंध पूरी तरह हट नहीं जाता है, तब तक हालात सुधरने के आसार नहीं दिखते।"

महाराष्ट्र के नासिक जिले के कदकमालेगांव के 39 वर्षीय किसान योगेश रायाते लॉकडाउन की जरूरत को भली-भांति समझते हैं। वह कहते हैं, "इसके बावजूद मैं पहले कभी इतना चिंतित नहीं हुआ जितना आज हूं।" उनका गांव सहयाद्री पहाड़ी पर है, जो अंगूर की वैराइटी के लिए मशहूर है। वह 2 हेक्टेयर में अंगूर और 8 हेक्टेयर में सब्जी उगा रहे हैं। 15 मार्च को वह अंगूर तोड़ कर क्रेट में सजा रहे थे, तभी उनके कानों में खबर आई कि सरकार ने 31 मार्च तक नासिक में गतिविधियों पर रोक लगा दी है। योगेश कहते हैं, "हमें उस दिन 10,000 किलो अंगूर बिक जाने की उम्मीद थी, लेकिन व्यापारी नहीं आए। करीब एक हफ्ते के इंतजार के बाद मैंने क्रेट से अंगूर निकाल कर किसमिस बनाने के लिए धूप में सूखने को डाल लिया। मेरा अंगूर एक्सपोर्ट क्वालिटी का था, लेकिन बिक्री नहीं होने से 30-40 लाख रुपए का नुकसान हो गया।"

अंगूर की बिक्री नहीं होने से हुए नुकसान की भरपाई वह फूलगोभी व बंदगोभी बेचकर करने की योजना बना रहे थे कि केंद्र सरकार ने लॉकडाउन की अवधि बढ़ा दी। वह कहते हैं, "लॉकडाउन बढ़ाने का वक्त हमारे लिए निर्दयी रहा। घोषणा के अगले दिन हमने घर के भीतर रहकर गुड़ी पड़वा (मराठी हिन्दुओं के नए साल की शुरुआत इसी पर्व के साथ होती है और इस पर्व के साथ ही रबी फसल की कटाई भी शुरू हो जाती है) मनाया।" इसके दो दिन बाद ही सरकार ने मंडियों, अधिप्राप्ति करने वाली एजेंसियों, कृषि गतिविधियों और कृषि मजदूरों को लॉकडाउन से छूट दे दी। लेकिन, रायाते का कहना है कि व्यापारियों ने बंदगोभी और फूलगोभी 2-3 रुपए प्रति किलो की दर से खरीदने का प्रस्ताव दिया। व्यापारियों ने इसका कारण मांग में गिरावट और यातायात पर प्रतिबंध

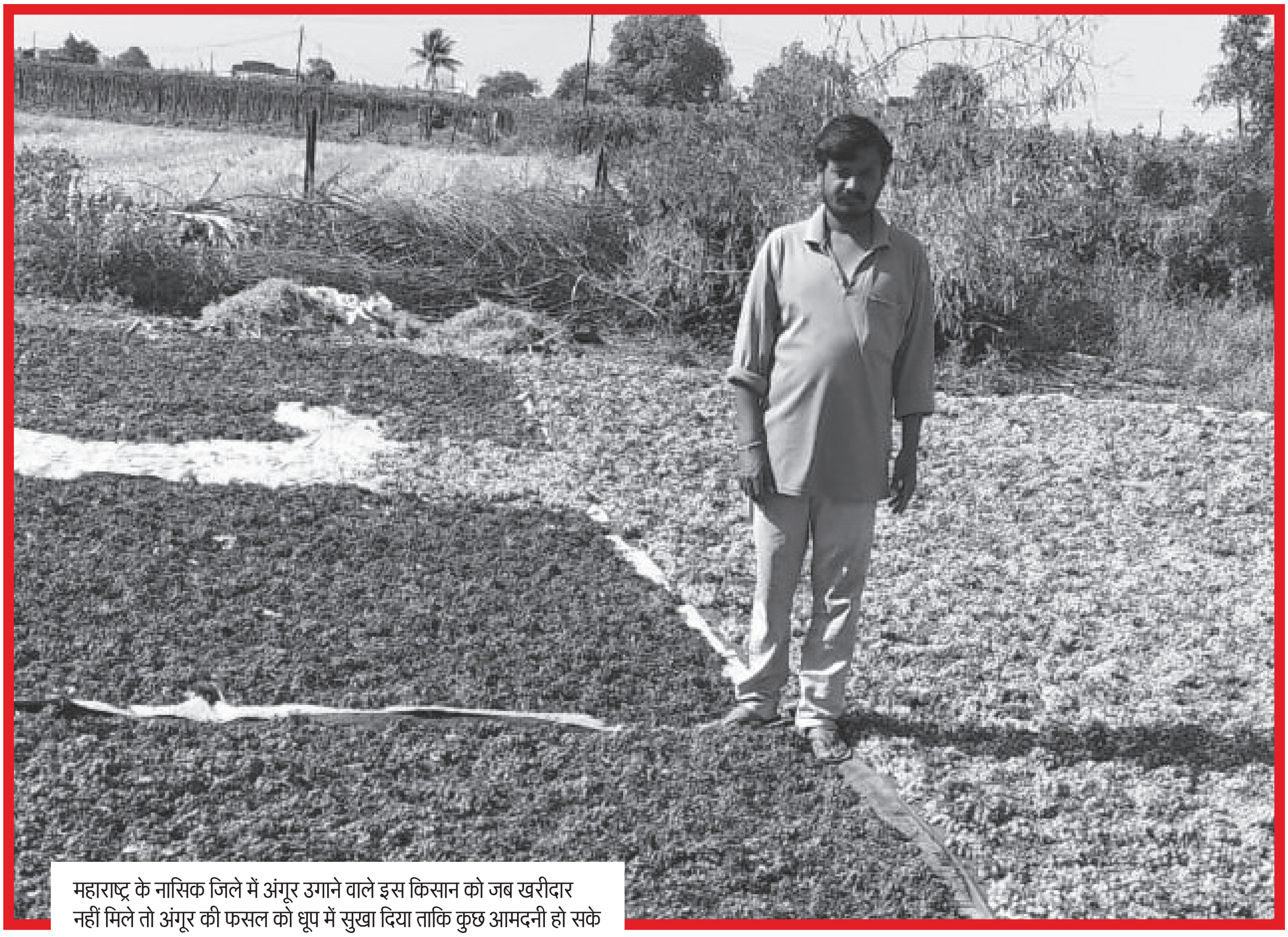

महाराष्ट्र के नासिक जिले में अंगूर उगाने वाले इस किसान को जब खरीदार नहीं मिले तो अंगूर की फसल को धूप में सुखा दिया ताकि कुछ आमदनी हो सके

बताया। कुछ दिन बाद उन्होंने 1.5 लाख रुपए की खड़ी फसल को रोटावेटर से रौंद दिया। कृषि उत्पादों से उन्हें कमाई नहीं हो पाई है, तो वह सोच नहीं पा रहे हैं कि 18 लाख रुपए का कृषि लोन कैसे चुकाएंगे। नेशनल फार्मर्स वर्कर्स फेडरेशन के राज्य अध्यक्ष शंकर दरेकर ने कहा कि अंगूर के किसानों को बेमौसम बारिश और ओलावृष्टि के कारण पहले ही 30-40 प्रतिशत का नुकसान हो गया था। ऐसे में लॉकडाउन किसानों पर बड़ा धक्का बनकर आया है। रायाते सोच रहे हैं कि प्राकृतिक आपदा की तरह कोरोनावायरस के चलते लॉकडाउन से हुए नुकसान की भरपाई फसल बीमा से की जाएगी या नहीं।

मजदूरों की किल्लत

पश्चिम बंगाल में घरेलू मांग पूरा करने के लिए प्याज की पैदावार बढ़ाई जा रही है। यहां पिछले पांच वर्षों की तरह इस साल भी प्याज की बम्पर पैदावार हुई है, लेकिन हुगली जिले के एक अत्यधिक उत्पादन वाले जोन में प्याज खेतों में बेतरतीब बिखरा पड़ा है। बालागढ़ ब्लॉक के किसान विकास मलिक इसकी वजह के बारे में विस्तार से समझाते हैं। वह कहते हैं, "प्याज की खेती में बहुत मजदूरों की जरूरत पड़ती है। इसकी बुआई से लेकर कटाई, साफ-सफाई और फिर बोरियों में भरने तक का काम हाथ से होता है। एक बीघा प्याज के खेत में सीजन भर कम से कम 10 मजदूर काम करते हैं। मजदूरों ने प्याज को खेत से उखाड़ना शुरू ही किया था कि लॉकडाउन की घोषणा हो गई। जो मजदूर प्याज उखाड़ने के लिए दूसरे जिलों से गए थे, वो अगली सुबह मुर्शिदाबाद व बर्दवान अपने घर के लिए रवाना हो गए।" हुगली जिले के बनसा गांव के किसान सुब्रत कर्मकार ने कहा, "मेरे गांव के ज्यादातर किसानों ने खेत से प्याज नहीं निकाला है। अगर अगले 15-20 दिनों में प्याज नहीं निकाला गया, तो उसके सड़ने का खतरा बढ़ जाएगा। दूसरी ओर, खेत खाली नहीं होने से हम लोग अगली फसल के लिए खेत तैयार नहीं कर पाएंगे।"

हुगली से मजदूरों का पलायन हो जाने से जिले के आलू किसान भी परेशान हैं। हालांकि, आलू को फरवरी में ही मिट्टी से बाहर निकाल कर कोल्ड स्टोरेज में डाल दिया जाता है। कर्मकार बताते हैं, "आलू की बोरियों को मजदूरों की मदद से ही वाहनों पर लादा और स्टोरेज में सजाकर रखा जाता है। मजदूर नहीं होने से बोरियों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में दिक्कत होने लगी है।" उन्होंने कहा कि हुगली के बाजार में अब पुराने स्टॉक में महज दो महीने का आलू बचा हुआ है। इस दो महीने के भीतर मजदूर नहीं लौटते हैं, तो क्षेत्र में आलू की कृत्रिम किल्लत हो सकती है।

मजदूरों की किल्लत से देश की 8,000 दाल मिलों का कामकाज भी ठप हो गया है। अनुमान के मुताबिक, देशभर की दाल मिलों में लगभग 2,40,000 मजदूर काम करते हैं। इन मजदूरों का पलायन उन दाल किसानों के लिए नुकसानदेह साबित हो रहा है जो पिछले तीन साल से दाल का न्यूनतम समर्थन मूल्य पर्याप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। इस साल बिना मौसम हुई बारिश और ओले पड़ने से उनकी फसल को क्षति हुई है। दाल मिल एसोसिएशन का कहना है कि बेमौसम बारिश से देशभर में दाल के उत्पादन में 10 प्रतिशत की कमी आई है। पंजाब और हरियाणा में इस साल गेहूं का बम्पर उत्पादन हुआ है, लेकिन लॉकडाउन के कारण अनिश्चितता बरकरार है। पंजाब सरकार ने 15 अप्रैल से गेहूं की अधिप्राप्ति की घोषणा की जबकि हरियाणा में इसके कुछ समय बाद अधिप्राप्ति शुरू होगी। अधिप्राप्ति की अवधि भी बढ़ा कर मध्य जून कर दी गई है। गौरतलब हो कि हर साल बिहार और उत्तर प्रदेश से लगभग 15 लाख मौसमी कृषि मजदूर पंजाब और हरियाणा जाते हैं। ये मूल रूप से फसल की कटाई से लेकर अधिप्राप्ति तक में मजदूरी करते हैं। लेकिन, इस साल ये नहीं आ पाएंगे। राज्य सरकारें इस समस्या को समझते हुए कम्बाइंड हार्वेस्टर्स के इस्तेमाल को प्रोत्साहित कर रही हैं।

मसाला किसानों की मुश्किलें

तमिलनाडु के नीलगिरि और केरल के इडुक्की क्षेत्र के चाय बागानों के लिए लॉकडाउन एक मुश्किल वक्त है। एसोसिएशन ऑफ प्लांटर्स ऑफ केरल (एपीके) के सचिव बीके अजीथ कहते हैं, "प्रसंस्कृत चाय पाउडर के निर्यात में कमी आ जाने से पिछले कई महीनों से हमारी फैक्ट्रियों को नुकसान हो रहा है।" उन्होंने कहा कि नीलगिरि और इडुक्की में करीब 55 प्रतिशत चाय का उत्पादन निर्यात के लिए किया जाता है, लेकिन इस साल इसे कोई खरीदार नहीं मिल पाया। पहले से ही परेशान चाय उत्पादकों की मुश्किलें लॉकडाउन ने और बढ़ा दी हैं। चाय बागानों के कामगारों का कहना है कि चाय की पत्तियों को नियमित तौर पर तोड़ना पड़ता है। अगर ऐसा नहीं किया गया, तो फिर चाय के पौधों की कटनी-छंटनी करनी होगी और ऐसा करने पर दोबारा पत्तियों के लिए कई महीने तक इंतजार करना होगा। कुन्नूर के संगठन यूनाइटेड प्लांटर्स एसोसिएशन ऑफ साउथ इंडिया के मुताबिक, लॉकडाउन के कारण क्षेत्र के चाय बागानों को लगभग 250 करोड़ रुपए का नुकसान हो सकता है।

वहीं, कोच्चि के संगठन स्पाइसेस बोर्ड के अनुमान के मुताबिक, पूरे दक्षिण भारत के इलाइची किसानों को 210 करोड़ का नुकसान हो सकता है। मालूम हो कि 80 प्रतिशत इलाइची की बिक्री बोली लगाकर की जाती है, जिसमें अंतरराष्ट्रीय स्तर की एजेंसियां और संघ शामिल होते हैं। लेकिन, अभी नीलामी बंद है और खुदरा बाजारों में बिक्री थमी हुई है। इडुक्की के आदिमाली के इलाइची किसान केवी वर्गीज कहते हैं, "दिल्ली व मुफस्सिल इलाकों में स्थित कंपनियों में रोजाना 20-25 टन इलाइची की खपत होती है। ऐसे में लॉकडाउन बढ़ाने का विध्वंसक परिणाम हो सकता है।" एपीके का कहना

नुकसान की तस्वीर

मध्यप्रदेश
सिहोर
गेहूं और दाल यहां की मुख्य फसलें हैं

रोजगार
2 लाख 40 हजार प्रवासी मजदूर (लगभग) इसमें कार्यरत

कोविड का असर
अधिप्राप्ति शुरू नहीं होने से गेहूं गोदामों तक नहीं पहुंचा पा रहा। विपरीत पलायन (रिवर्स माइग्रेशन) के चलते कामगार नहीं मिल पा रहे, इसलिए दाल मिलें भी बंद

केरल
इलाइची और नेचुरल रबर का बड़ा उत्पादक राज्य

रोजगार
यहां तमिलनाडु के **कुशल मजदूर** काम करते हैं

कोविड का असर
निलामी बंद होने से इलाइची किसानों को 210 करोड़ का नुकसान। डिमांड घटने से रबर किसानों को 350 करोड़ की क्षति

हरियाणा
ये बड़ा पोल्ट्री उत्पादक राज्य

रोजगार
25,000 परिवार इस पर निर्भर है

कोविड का असर
अफवाह के चलते चिकन के दाम में 50-70 रुपए की कमी, जबकि अंडे का दाम 4-4 .5 रुपए तक गिरा

(नोट : ये सूचनाएं 10 अप्रैल तक किसानों, ट्रेड यूनियनों और उद्योग से जुड़े संगठनों के साथ हुई बातचीत के आधार पर तैयार की गई हैं)

तमिलनाडु के नीलगिरि में लॉकडाउन के कारण चाय की फैक्ट्रियां बंद हैं लेकिन कामगार चाय के बागानों को जीवित रखने के लिए पत्तियां चुन रहे हैं

सिबी पल्यल्ली

है कि केरल के वायनाड और कर्नाटक के कोडागु के गोल मिर्च के किसानों को लगभग 80 करोड़ का संभावित नुकसान हो सकता है, जबकि नेचुरल रबर क्षेत्र को 350 करोड़ रुपए का नुकसान हो चुका है। ग्लोव्स बनाने में इस्तेमाल होने वाले लेटेक्स की कीमत भी बढ़ने का अनुमान है।

आग की तरह फैली अफवाह

हरियाणा के पानीपत जिले का 2 हेक्टेयर में फैला विशाल पोल्ट्री फार्म में फरवरी से ही मुर्दा सन्नाटा पसरा हुआ है। ऐसी विरानी यहां पहले कभी नहीं थी। दो माह पहले ही यहां 2,00,000 से ज्यादा पोल्ट्री मुर्गे थे। फार्म के मालिक और नेशनल पोल्ट्री फेडरेशन ऑफ इंडिया के सचिव बिट्टू धांधा कहते हैं, "हम लोग रोजाना केवल दिल्ली में 5,000 चिकन की सप्लाई करते थे। लेकिन, फरवरी की शुरुआत से ही हम तक मेसेज पहुंचने लगा कि चिकन, मीट और अंडा से कोरोनावायरस फैलता है। उस वक्त सिर्फ केरल में कोरोनावायरस के तीन मामले सामने आए थे।" उन्होंने आगे कहा, "हमने हालांकि इस मेसेज को गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन ग्राहकों के मन में डर बैठ गया। एक आदमी बीमारी से लड़ सकता है, लेकिन अफवाह से नहीं।" इस अफवाह के जोर पकड़ने के साथ ही बिट्टू के मुर्गे की मांग घटने लगी और फरवरी का तीसरा हफ्ता आते-आते मांग शून्य हो गई। उन्होंने कुछ मुर्गे 15-20 रुपए किलो की दर से बेच दिए और फार्म बंद करने से पहले बचा-खुचा मुर्गा फ्री में बांट दिया। पंजाब में पोल्ट्री किसानों ने 2 करोड़ मुर्गों को मार दिया, क्योंकि खाद्य सप्लाई चेन पूरी तरह तहस-नहस हो गई थी। 30 मार्च को केंद्र सरकार ने सभी राज्यों को एक पत्र लिखकर स्पष्ट किया कि चिकन और अंडे सुरक्षित हैं, लोग बेहिचक खा सकते हैं। धांधा कहते हैं, "सरकार की तरफ से प्रतिक्रिया बहुत देर से आई।" महज एक अफवाह के चलते उन्हें एक करोड़ रुपए का नुकसान हो चुका है।

लॉकडाउन ने दूध का व्यापार करने वाले देश के 7.3 करोड़ किसानों को भी बुरी तरह प्रभावित किया है। इनमें से ज्यादातर किसान एक से दो मवेशियों पर निर्भर हैं। दूध की मांग में गिरावट के चलते गांवों के दूध संग्रह केंद्र या तो बंद हो चुके हैं या फिर बाजार में मांग गिर जाने से कम दूध ले रहे हैं। अमूल के मैनेजिंग डायरेक्टर आरएस सोढ़ी कहते हैं, "देश भर में जितने दूध का संग्रह किया जाता है, उसका 10-15 प्रतिशत हिस्सा रेस्तरां, वाणिज्यिक दफ्तरों और होटलों में जाया करता था, लेकिन ये सब अभी बंद हैं।" उन्होंने कहा, "अगर दूध प्रोसेसिंग सेंटरों तक पहुंच भी जाता है, तो कामगारों की किल्लत के कारण मशीनों की क्षमता का पूरा दोहन नहीं हो पा रहा है और उसकी प्रोसेसिंग में दिक्कत आ रही है।" अमूल ने दावा किया कि उसने दूध की खरीद कम कर दी है। वहीं, राजस्थान को-ऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड ने दूध की खरीद एक चौथाई तक कम कर दी है। उत्तर प्रदेश में निजी डेयरीज ने दूध की खरीद में 50 प्रतिशत तक की कटौती कर दी है। उत्तर प्रदेश की ज्ञान डेयरी के मैनेजिंग डायरेक्टर जय अग्रवाल ने कहा, "बैक्टीरिया रहित दूध की मांग में भारी गिरावट आई है, जिस कारण लोग अब दूध का इस्तेमाल दुग्ध उत्पाद बनाने में कर रहे हैं।

इस कठिन समय में भी अपना कारोबार किसी तरह बचाए रखने के लिए पंजाब के किसान अलग तरकीब अपना रहे हैं। उन्होंने खर्च बचाने के लिए मवेशियों को महंगा चारा खिलाना बंद कर दिया है ताकि मवेशी ज्यादा दूध न दे। 31 मार्च को कर्नाटक के बेलागवी जिले के किसानों ने 1,500 लीटर दूध सिंचाई के नाले में बहा दिया, क्योंकि वे किसी भी तरह दूध बेच नहीं पा रहे थे।

डाउन टू अर्थ के साथ ईमेल के जरिए हुई बातचीत में अमेरिका के सेंटर फॉर डिजीज डायनैमिक्स, इकोनॉमिक्स एंड पॉलिसी के डायरेक्टर रमणन लक्ष्मीनारायण ने बताया कि महामारी के चलते हुए लॉकडाउन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बाधित कर दिया है। हालांकि फिजिकल डिस्टेंसिंग नहीं होने से महामारी से मौतों की आशंका के मद्देनजर इस नुकसान को रोका नहीं जा सकता था। मगर फिर भी हमारे यहां यह महामारी अभी नई है और आने वाले दिनों में इसका असर और गहरा होगा। सरकारी योजनाओं के जरिए और ग्रामीण क्षेत्रों की गरीब आबादी को नकदी ट्रांसफर कर इसमें सुधार करना होगा।

“महामारी में गांवों की भूमिका अहम”

राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान (एनआईआरडीपीआर) के महानिदेशक डब्ल्यूएम रेड्डी ने अनिल अश्विनी शर्मा से बातचीत में ग्राम पंचायतों के महत्व पर प्रकाश डाला

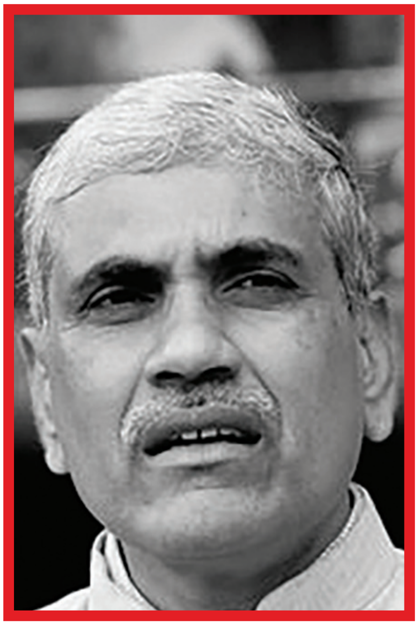

कोरोनावायरस की रोकथाम एवं प्रबंधन में ग्राम पंचायतों की क्या भूमिका हो सकती है?
आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति, 2009 के प्रावधानों के अनुसार, प्रत्येक पंचायत आपदा प्रबंधन योजनाओं को तैयार करने के लिए एक स्थानीय इकाई है। इसका पहला काम सरकार के दिशानिर्देशों के अनुसार लोगों में जागरुकता पैदा करना होता है। वार्ड सदस्यों, समर्पित स्वयंसेवकों, स्वयं सहायता समूहों, आशा और आंगनबाड़ी कार्यकर्ता इसमें अहम भूमिका निभाते हैं। सामाजिक अलगाव का पालन करवाना, आइसोलेशन केंद्रों की स्थापना, प्रवासियों को आइसोलेशन केंद्रों में रखना और उनकी देखभाल उनके काम में शामिल है। साथ ही सरकारी वितरण प्रणाली के साथ तालमेल बिठाकर राशन प्रदान करना और घर लौटते प्रवासी मजदूरों, दिहाड़ी कामगारों, गरीबों एवं समाज के सबसे कमजोर तबके के लिए सामुदायिक रसोई के माध्यम से भोजन की व्यवस्था करना ग्राम पंचायतों के स्तर पर संभव है।

आपकी संस्था की जागरुकता सामग्री बहुत उपयोगी है। आप अपने पोर्टल ग्राम स्वराज के माध्यम से इनका प्रसार करने की योजना बना रहे हैं। लेकिन इसके लिए कमजोर इंटरनेट की चुनौती है। क्या इसे हिंदी और अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध करवाने की योजना है?
ग्राम स्वराज पोर्टल संदेशों को प्रसारित करने का एकमात्र मंच नहीं है। इसके अलावा कई व्हाट्सएप समूह, एसएमएस और ई-मेल हैं जिनके माध्यम से संदेशों एवं मॉड्यूल को प्रसारित किया जा रहा है ताकि हालात को लेकर सही समझ बन सके। अगर ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के पास व्हाट्सएप एक्सेस करने के लिए बैंडविड्थ है, तो वे ग्राम स्वराज पोर्टल को भी अपने मोबाइल पर देख सकते हैं। इसके अलावा, एनआईआरडीपीआर सरपंचों और पीआरआई के सदस्यों के मोबाइल नंबर रखता है जिन्हें संदेशों के स्रोतों और मॉड्यूल के बारे में सूचित किया जा रहा है ताकि वे मार्गदर्शन और त्वरित कार्रवाई के लिए तैयार रहें। जहां तक अंग्रेजी और हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं का सवाल है, राज्य स्तर पर एनआईआरडीपीआर ग्राम पंचायतों और ग्रामीण विकास के माध्यम से स्थानीय भाषा में अनुवाद के काम में पहले से ही लगा है।

जागरुकता आम लोगों तक पहुंच रही है या नहीं, इसकी निगरानी के लिए क्या तंत्र विकसित किया है?
अभी इसकी निगरानी के लिए कोई तंत्र नहीं है। लेकिन देश भर के 4,000 प्रमाणित मास्टर ट्रेनर इतने प्रतिबद्ध हैं कि वे आम लोगों तक इसकी पहुंच संभव बना रहे हैं।

गांवों में अगुआ कार्यकर्ताओं के पास मास्क और सेनिटाइजर जैसे बुनियादी सुरक्षात्मक सामानों की उपलब्धता पर क्या स्थिति है?
हां, शुरू में कुछ कमियां रही होंगी। लेकिन कुछ ही समय में, फ्रंटलाइन कार्यकर्ताओं को मास्क और सेनिटाइजर मुहैया करा दिए गए हैं।

कई ग्राम पंचायतें कोविड-19 के खिलाफ लड़ाई में अपनी भूमिका के बारे में अनभिज्ञ हैं और जिला प्रशासन द्वारा उठाए जा रहे कदमों के बारे में भी उन्हें जानकारी नहीं है। ऐसे हालात में सुरक्षा चक्र कैसे बन पाएगा?
हां, शुरू में थोड़ी कठिनाई हुई होगी। लेकिन, धीरे-धीरे देश भर की लगभग सभी ग्राम पंचायतें एनआईआरडीपीआर द्वारा प्रसारित दिशा-निर्देशों के साथ-साथ केंद्र और राज्य सरकारों के दिशा-निर्देशों के आधार पर बहुत प्रभावी भूमिका निभा रही हैं। स्वशासन के स्थानीय संस्थानों और आपदा प्रबंधन योजनाओं के लिए स्थानीय प्राधिकरण पंचायतें ही हैं और इस वजह से उन्हें किसी अन्य प्राधिकारी से किसी भी निर्देश की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, पंचायतें सभी निवारक और राहत उपायों के लिए संबंधित केंद्र और राज्य सरकारों के साथ संपर्क बनाए रखकर अनुशासित ढंग से काम कर रही हैं ।

कई फ्रंटलाइन कार्यकर्ताओं को इस बात का खौफ है कि चूंकि उन्हें आधिकारिक तौर पर कोविड-19 के खिलाफ इस लड़ाई का हिस्सा बनने का निर्देश नहीं दिया गया है, इसलिए उन्हें केंद्र सरकार द्वारा घोषित 50 लाख की बीमा जैसे प्रावधानों का लाभ नहीं मिलेगा?
सबसे पहले स्वशासन के स्थानीय संस्थानों के रूप में, पंचायतों को किसी अन्य प्राधिकरण से किसी भी निर्देश की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरा, चूंकि पंचायतें सभी निवारक और राहत उपायों में संबंधित केंद्र और राज्य सरकारों के साथ संपर्क में हैं, इसलिए केंद्र द्वारा घोषित 50 लाख टर्म बीमा जैसे प्रावधानों से लाभ के बारे में किसी भी तरह का संदेह पैदा होने का सवाल नहीं उठता।

घर वापस आने वाले प्रवासी मजदूरों के लिए अब तक कितने गांवों में अलगाव केंद्र स्थापित किए गए हैं?
अभी पंचायतों द्वारा स्थापित अलगाव केंद्रों की संख्या की गणना का उपयुक्त समय नहीं है। पंचायतें इतनी समझदार और संवेदनशील हैं कि एक क्वारंटाइन किए गए मरीजों और दूसरों के बीच दूरियों के मानदंडों को बनाए रखें। स्थानीय स्वास्थ्य कार्यकर्ता जिनके पंचायतों के निकट संपर्क हैं, इस संबंध में पंचायतों की मदद कर रहे हैं।

घर वापसी की परेशानी

लॉकडाउन खत्म होने के बाद बड़ी आबादी गांवों की ओर लौटेगी। एक बार फिर सामूहिक पलायन होने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था और स्वास्थ्य पर बोझ बढ़ेगा

विकास चौधरी / सीएसई

लॉकडाउन की घोषणा के बाद से ही शहरों से गांवों की ओर रिवर्स पलायन शुरू हो गया। बहुत से लोग पैदल ही गांव की ओर चल दिए

नोएडा के रिक्शा चालक मोहम्मद इद्रीश बड़ी बेसब्री से दिन गिन रहे हैं। उन्होंने तय कर लिया है कि लॉकडाउन खत्म होगा या सरकार इसमें ढील देगी, तो वह बिहार के पूर्णिया जिले के शेखपुरा गांव में अपने परिवार के पास लौट जाएंगे। हालांकि ऐसा नहीं है कि वह पहली बार परिवार से अलग हैं। वह तो सालों से परिवार से दूर हैं, लेकिन पहले कभी इतनी शिद्दत से उन्हें परिवार की याद नहीं आई, जितनी शिद्दत से इस लॉकडाउन में उन्हें याद आ रही है। वह कहते हैं, "यहां मैं अकेला हूं। मेरी कमाई रुकी हुई है और राहत शिविर में बहुत कम खाना मिलता है। गांव में हम लोग एक साथ रहते, तो कोरोनावायरस हो या लॉकडाउन सब झेल लेते।" इद्रीश इकलौते शख्स नहीं हैं, जो किसी भी सूरत में अपने गांव जाना चाहते हैं। हाल ही में केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट को बताया कि देश में कुल 4 करोड़ 14 लाख प्रवासी कामगार हैं, जिनमें से 6 लाख 60 हजार कामगार राहत शिविरों में रह रहे हैं और 22 लाख 80 हजार कामगारों को भोजन मुहैया कराया जा रहा है। इनमें से एक बड़ी आबादी लॉकडाउन खत्म होते ही गांवों की ओर लौटेगी, जिससे फिर एक बार सामूहिक पलायन होगा। इससे ग्रामीण स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर बोझ बढ़ेगा।

अमेरिका के सेंटर फॉर डिजीज डायनैमिक्स, इकोनॉमिक्स एंड पॉलिसी के डायरेक्टर रमणन लक्ष्मीनारायण ने *डाउन टू अर्थ* को बताया, "प्रवासी कामगारों की वापसी से बहुत संभव है कि कोरोनावायरस ग्रामीण क्षेत्रों में घुसपैठ कर गया हो। इससे ग्रामीण इलाकों में मामले होंगे और लोगों की मौत होगी। लेकिन, चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में नमूनों की जांच की कोई व्यवस्था नहीं है, तो ये मौतें

भारत का प्रयास कितना बड़ा?

भारत ने लॉकडाउन से प्रभावित लोगों की मदद के लिए 1.7 लाख करोड़ रुपए का वित्तीय पैकेज घोषित किया है लेकिन जब हम दूसरे देशों को देखते हैं तो यह पैकेज छोटा नजर आता है

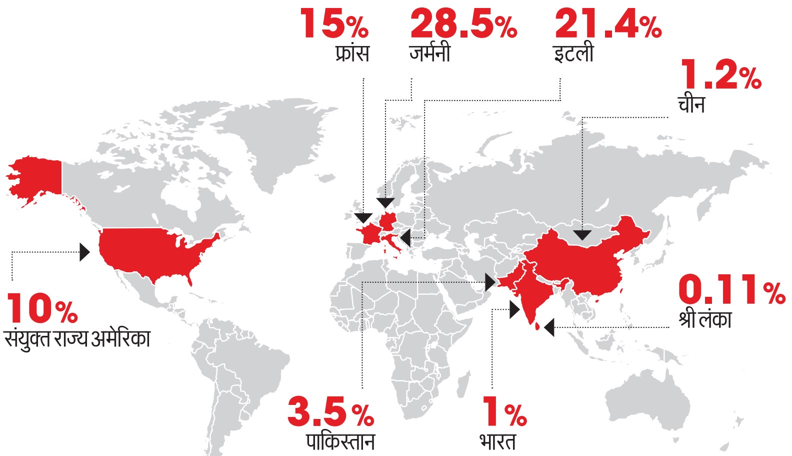

मानचित्र में दिए गए प्रतिशत के आंकड़े जीडीपी की हिस्सेदारी प्रदर्शित करते हैं

रिकॉर्ड में दर्ज भी नहीं होंगी।" उन्होंने कहा, "हालांकि चुनौती शहरी क्षेत्रों में भी है, खासकर हाउसिंग कॉलोनियों और मलिन बस्तियों में। इसलिए हमें दोनों तरफ नजर रखनी चाहिए।"

इधर, कृषि प्रधान और ग्रामीण देश की नाजुक अर्थव्यवस्था की मरम्मत भी एक कठिन चुनौती है। जो प्रवासी मजदूर गांवों की ओर लौट गए हैं, वे पूर्व में शहरों व नगरों में काम करते थे और गांव में पैसा भेजते थे। लॉकडाउन के कारण उनका रोजगार खत्म हो गया है और वे गांवों में फांके में दिन गुजार रहे हैं। ओडिशा का नौपाड़ा जिला पलायन के लिए कुख्यात है। देशभर में जब कोरोनावायरस संक्रमण के मामले बढ़ने लगे, तब से 3,869 मजदूर यहां लौटे हैं। जिला प्रशासन का कहना है कि लॉकडाउन खत्म होते ही 15,000-20,000 मजदूर लौटेंगे।

नौपाड़ा की तरह ही उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के गांवों में बड़ी संख्या में मजदूर दूसरे राज्यों के शहरों में प्रवास करते हैं। ये मजदूर लॉकडाउन की घोषणा से पहले और बाद में अपने गांवों में लौटे हैं। गांव लौटने वालों अधिकांश मजदूरों के पास खेती न के बराबर है। ऐसे में उनका गुजारा कैसे होगा, यह सवाल बना हुआ है। जिले के स्थानीय पत्रकार चंद्रभान सिंह बताते हैं कि अगर लॉकडाउन लंबा खिंचता है तो इन मजदूरों के सामने भुखमरी की नौबत आ जाएगी। जिले के कोर्रा कनक और गढ़ी गांव से बड़ी संख्या में युवा मुंबई, सूरत, दिल्ली-एनसीआर में काम करते हैं। इन शहरों के विपरीत हालात को देखते हुए मजदूर गांवों में लौटे हैं। कोर्रा कनक के प्रधान दिनेश सिंह ने *डाउन टू अर्थ* बताया कि गांव के करीब 50 प्रतिशत युवा बाहरी राज्यों में प्रवास करते हैं। मौका मिलते ही ये युवा गांव यातायात के विभिन्न साधनों से लौट रहे हैं। इन लोगों के सामने अब रोजी रोटी का संकट खड़ा हो गया है।

आशा वर्करों की ओर से किए गए सर्वे में पता चला है कि लॉकडाउन के चलते लौटे ज्यादातर मजदूर कंस्ट्रक्शन साइट्स पर दिहाड़ी पर काम करते थे। वे लोग मजदूरी लिए बिना ही वहां से भाग आए हैं और अब ये अपने परिवार पर बोझ हैं। नौपाड़ा जिले के कुसमल गांव के लोकनाथ माझी के परिवार में 8 लोग हैं। माझी और उनके बड़े बेटे मनोरंजन की कमाई से ही परिवार चलता है। माझी नजदीक में ही दैनिक मजदूरी करते हैं, जबकि मनोरंजन 450 रुपए दिहाड़ी पर मुंबई में रंगाई-पुताई का काम करते थे। जब कोरोनावायरस का खौफ बढ़ा, तो वह काम छोड़कर घर लौट गए। घर पर काम नहीं मिल रहा है, तो अब पूरा परिवार सरकार के रिलीफ पैकेज पर निर्भर है। लेकिन लोकनाथ का कहना है कि रिलीफ पैकेज पर्याप्त नहीं है। उन्होंने कहा, "आधार कार्ड में कुछ गलतियों के चलते मैं अपने दो बच्चों का पंजीयन राशन कार्ड के लिए नहीं करा सका। अभी हमें अगले दो महीनों के लिए जो चावल सरकार से मिला है, वो एक महीने भी मुश्किल से चलेगा। लॉकडाउन में मुश्किलें और बढ़ेंगी। दिल्ली की थिंकटैंक रिसर्च एंड इनफार्मेशन सिस्टम फॉर डेवलपिंग कंट्रीज के फेलो अमिताभ कुंडू ने नेशनल सैंपल सर्वे, 2007-2008 के आंकड़ों के जरिए तर्क दिया कि देश के 70-75 लाख कामगार उस श्रेणी में आते हैं, जिन्हें रोज या हफ्ते में काम का जुगाड़ करना पड़ता है। वहीं, 70 लाख कामगार ऐसे हैं, जिन्हें हर महीने तनख्वाह तो मिलती है, मगर वे असंगठित क्षेत्र में आते हैं। इसके अलावा 70-80 लाख लोग ऐसे हैं, जो वेंडर का काम करते हैं। इनमें से आधे अंतरराज्यीय प्रवासी हैं। कुंडू कहते हैं कि तमाम तरह की घोषणाओं और बयानों के बावजूद ये लोग ही सबसे ज्यादा प्रभावित होने जा रहे हैं। वैसे, केंद्र सरकार ने इस महामारी से गरीबों को राहत देने के लिए 1.7 लाख करोड़ रुपए के आर्थिक पैकेज की घोषणा की है, लेकिन अर्थशास्त्री ज्यां द्रेज का कहना है कि सरकार का आर्थिक पैकेज कुल जीडीपी का महज बहुत छोटा हिस्सा है *(देखें, भारत का प्रयास कितना बड़ा?)*। ये पिछले साल केंद्र सरकार की तरफ से कारपोरेट टैक्स में दी गई छूट से भी कम है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की हालिया रिपोर्ट के अनुसार, जिस राहत पैकेज की घोषणा भारत सरकार ने की है, वो दूसरे विकसित और विकासशील देशों के मुकाबले बहुत कम है। हाल ही में करीब 300 अर्थशास्त्री, अकादमिशियन और समाज विज्ञानियों ने प्रधानमंत्री और सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को चिट्ठी लिख कर गरीबों के लिए तैयार किए गए रिलीफ पैकेज में इजाफा करने को कहा है। चिट्ठी में की गई सिफारिशों में एक सिफारिश यह भी है कि जिस परिवार का एक भी सदस्य संगठित क्षेत्र का कर्मचारी या करदाता नहीं है, उस परिवार के खाते में हर महीने 6,000 रुपए ट्रांसफर किए जाएं और परिवार के हर सदस्य को हर महीने 10 किलो अनाज मुफ्त मिले। इस पर कुल 3,60,000 करोड़ रुपए खर्च होंगे, जिसका वहन केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर करें। जहां तक राहत उपायों का सवाल है, तो नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अभिजीत बनर्जी का कहना है कि सरकार को ज्यादा चालाक बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। वह यह सोचने में समय खपाए बगैर कि इसमें कुछ फर्जीवाड़ा हो रहा कि नहीं, तेज गति से परिवारों को पैसा ट्रांसफर करे।

लॉकडाउन से सबसे ज्यादा प्रभावित लोग असंगठित क्षेत्रों से आते हैं। इस संकट की घड़ी में सरकार इन लोगों तक रिलीफ पैकेज कैसे पहुंचाएगी? इस सवाल पर इंडियन इंस्टीट्यूट फॉर ह्यूमैन सेटलमेंट्स के फैकल्टी मेंबर गौतम भान ने कुछ सुझाव दिए हैं। उन्होंने कहा कि जिन राज्यों के पास महामारी के शुरू होने से पहले से मजबूत सामाजिक सुरक्षा तंत्र है, वे राज्य उन तंत्रों का इस्तेमाल कामगारों तक पहुंचने में कर सकते हैं। जिन राज्यों के पास ऐसा तंत्र नहीं है, उन्हें तुरंत नया तंत्र विकसित करना चाहिए।

“हमें जनस्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा को उच्च प्राथमिकता देनी होगी”

कोरोनावायरस संकट के मद्देनजर केंद्र सरकार ने अंतरिम उपायों के अंतर्गत राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन और इसके साथ कुछ अन्य उपायों की घोषणा की है। इन उपायों का मकसद है कोरोनावायरस से लड़ना और बेरोजगार हो चुके लाखों लोगों को आर्थिक मदद, भोजन और रहने की व्यवस्था करना। क्या सरकार के इन उपायों को पर्याप्त माना जा सकता है? समाज के सबसे निचले तबके को क्या चाहिए? *डाउन टू अर्थ* ने इन मुद्दों पर जाने-माने अर्थशास्त्री **ज्यां द्रेज** से बात की

लॉकडाउन की घोषणा के बाद लाखों प्रवासी श्रमिक शहरों से भाग गए। उनके सामने क्या स्थिति है?

इनमें से बहुत से परिवार सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस), सामाजिक सुरक्षा पेंशन और संबंधित योजनाओं के अंतर्गत आते हैं। कल्याणकारी योजनाओं द्वारा दिए जाने वाले अल्प लाभों पर जीवित रहना इनके लिए मुश्किल होगा। इसलिए लाभ का दायरा बढ़ाया जाना चाहिए और आपातकालीन कैश ट्रांसफर और सामुदायिक रसोई जैसे उपायों पर जोर देना चाहिए। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रवासी श्रमिक कुछ समय के लिए दोबारा अपने घरों को छोड़ने में संकोच करेंगे। इसके अलावा, घर पर उनके लिए काम के सीमित अवसर होंगे। खासकर तब जब उनके पास जमीन नहीं होगी। यदि महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के तहत अधिक मजदूरी प्रदान करने के लिए विश्वसनीय भुगतान प्रणाली को दोबारा अपनाया जाता है तो उन्हें पुनः सक्रिय किया जा सकता है।

केंद्र सरकार के राहत पैकेज पर आपकी क्या राय है?

क्रिएटिव अकाउंटिंग और और विंडो ड्रेसिंग को छोड़ दें तो पैकेज 1.7 लाख करोड़ रुपए के बजाय 1 लाख करोड़ रुपए के करीब है। यह पैकेज देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 0.5 प्रतिशत ही है। पिछले साल आर्थिक मंदी की आहट पर केंद्र द्वारा दी गई कारपोरेट टैक्स छूट से भी यह कम राशि है। राहत उपायों को लागू करने में वक्त लगेगा, लेकिन इस बीच भूख फैल रही है। राज्यों को चाहिए कि वे प्रवासी श्रमिकों के लिए सामुदायिक रसोई और आश्रय जैसे आपातकालीन राहत उपायों के लिए तत्काल कदम उठाएं। यह केंद्र के पैकेज में यह दिखाई नहीं देता।

प्रवासी श्रमिकों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अग्रणी भूमिका निभाई है। अब इसमें क्या बदलाव आएगा?

देर सवेर मौसमी प्रवास शुरू हो जाएगा। यह प्रवास श्रमिकों की मजबूरी है क्योंकि लाखों गरीबों का इसके बिना गुजारा नहीं चलेगा। लेकिन स्वास्थ्य के संकट को देखते हुए प्रवास की अवधि सीमित होगी और यह संकट जल्द खत्म भी नहीं होने वाला।

कोरोना की महामारी हमारी खाद्य आपूर्ति और अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करेगी?

पूरी संभावना है कि लॉकडाउन और आर्थिक मंदी से खाद्य प्रणाली बाधित होगी। इस समय हमारे सामने अजीब से हालात हैं, कमी और अधिकता (सरप्लस) दोनों स्थितियां हैं क्योंकि आपूर्ति श्रृंखला टूट रही है। खाद्य महंगाई नियंत्रित है क्योंकि अधिकांश लोग जरूरत से अधिक खरीदारी में असमर्थ हैं। लॉकडाउन में छूट मिलने के साथ इस स्थिति में बदलाव आ सकता है। इसके बाद जो लोग समक्ष हैं, वे खरीदारी के लिए निकल सकते हैं। अगर आपूर्ति श्रृंखला की स्थिति तब भी खराब रहती है तो स्थानीय स्तर पर मूल्य वृद्धि देखने को मिल सकती है। आपूर्ति श्रृंखला से वे लोग अधिक प्रभावित होंगे जिनके पास काम नहीं है। अगर आने वाले कुछ महीनों तक लॉकडाउन जारी रहता है तो इस तरह की घटनाओं में बढ़ोतरी देखने को मिलेंगी। अगर लॉकडाउन समाप्त हो जाता है, तब भी अव्यवस्थित अर्थव्यवस्था के कारण आपूर्ति श्रृंखला कुछ समय के लिए बाधित हो सकती है।

संकट के इस दौर से भारत क्या सीख सकता है?

पहले तो भारत को स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा को उच्च प्राथमिकता देने की जरूरत है। पूंजीवाद के प्रबल समर्थक भी स्वीकार करते हैं कि बाजार की प्रतिस्पर्धा स्वास्थ्य सेवाओं, विशेष रूप से सार्वजनिक स्वास्थ्य को दुरुस्त करने का गलत तरीका है। अधिकांश समृद्ध देश इस तथ्य को मानने लगे हैं और उन्होंने स्वास्थ्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। यही बात सामाजिक सुरक्षा पर भी लागू होती है। एक सबक यह हो सकता है कि हम एकजुटता के मूल्य को समझें जिसे जाति व्यवस्था और अन्य सामाजिक विभाजनों द्वारा लगातार क्षीण किया जा रहा है।

मृतप्राय कानून, मजबूर मजदूर

मजदूरों का हित साधने के मकसद से बनाए गए कानूनों और मजदूर कल्याण बोर्डों की असफलता ने लॉकडाउन के संकट में उन्हें गांव लौटने को विवश कर दिया

राजू सजवान

मूलरूप से बिहार के पूर्णिया जिले में रहने वाले सुरेश वर्मा आठ साल पहले बेहतर जिंदगी की तलाश में औद्योगिक नगरी फरीदाबाद आए थे। शुरू में उन्होंने एक फैक्ट्री में नौकरी की लेकिन चार साल पहले फैक्ट्री में छंटनी के कारण उनकी नौकरी चली गई। नौकरी छूटते ही उन्होंने पहले मजदूरी और फिर राजमिस्त्री का काम शुरू कर दिया। लॉकडाउन ने उनका यह काम भी छीन लिया। उनके सामने अब भोजन का संकट आ खड़ा हुआ है। उनका एक बेटा सात साल का है और दूसरा चार साल का। दोनों पास के ही एक स्कूल में पढ़ने जाते हैं। अब फीस का इंतजाम कैसे होगा, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा है। रुआंसे सुरेश बताते हैं, "सरकार हमें गांव भिजवाने का इंतजाम कर देती तो अच्छा होगा। अगर मरना ही है तो अपने गांव में मरते। लॉकडाउन से पहले सब ठीक चल रहा था लेकिन अब हालात बदतर हो चुके हैं।" सुरेश ने सोचा था कि 24 मार्च को देशभर में एक साथ लगे लॉकडाउन के बाद कुछ दिन में सब ठीक हो जाएगा। लेकिन 14 अप्रैल को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लॉकडाउन अवधि बढ़ाने की घोषणा की तो हिम्मत जवाब दे गई। अब वह किसी भी तरह अपने घर-गांव लौटना चाहते हैं।

सुरेश ने हरियाणा के भवन एवं अन्य निर्माण मजदूर कल्याण बोर्ड में भी अपना पंजीकरण कराया है। इसकी फीस के रूप में वह हर साल 20 रुपए देते हैं। हरियाणा सरकार ने घोषणा की है कि बोर्ड के पास जमा पैसे से हर मजदूर को हर सप्ताह 1,000 रुपए देंगे। सुरेश बताते हैं कि अभी तक तो पैसा नहीं आया है,

भवन निर्माण मजदूरों के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने आर्थिक मदद का आश्वासन दिया है, लेकिन अधिकांश मजदूरों को इसका लाभ नहीं मिलेगा

लेकिन आ भी गया तो बैंक कैसे जाएंगे?

हरियाणा ही नहीं, लगभग सभी राज्यों में भवन एवं अन्य निर्माण मजदूर अधिनियम 1996 के तहत राज्यों में मजदूरों के लिए कल्याण बोर्ड बना हुआ है। इसका मकसद निर्माण मजदूरों को अलग-अलग स्कीम के तहत सामाजिक सुरक्षा एवं सहायता सहायता उपलब्ध कराना है। भारत में कोरोनावायरस के प्रसार को रोकने के लिए जब 24 मार्च 2,020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 21 दिन के देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की तो उसके बाद प्रवासी मजदूरों में अफरातफरी मच गई। इसे रोकने के लिए 25 मार्च 2020 को केंद्रीय श्रम मंत्री संतोष गंगवार का बयान आया कि सभी राज्य सरकारों से कहा गया है कि वे अपने राज्य में बने भवन एवं अन्य निर्माण मजदूर (बीओसीडब्ल्यू) कल्याण बोर्ड में जमा पैसे से मजदूरों को आर्थिक सहायता दें। बयान में यह भी बताया गया कि मजदूर कल्याण बोर्डों के पास 52 हजार करोड़ रुपए जमा हैं और इनमें 3.5 करोड़ मजदूर पंजीकृत हैं। केंद्र के इस बयान के बाद राज्य सरकारों ने अपने-अपने हिसाब से आर्थिक मदद की घोषणाएं कर दीं। हरियाणा सरकार ने घोषणा की कि लॉकडाउन की अवधि तक हर सप्ताह 1,000 रुपए हर मजदूर को दिए जाएंगे। लेकिन 16 अप्रैल को जब *डाउन टू अर्थ* ने सुरेश से बात की तो तब तक उसे यह पैसा नहीं मिला था।

हरियाणा में भवन निर्माण मजदूरों पर काम कर रही संस्था हरियाणा निर्माणकर्ता मजदूर सभा के अध्यक्ष जगदीप वालिया बताते हैं कि सरकार ने पैसा देने की घोषणा तो कर दी, लेकिन कई दिन तक तो श्रम विभाग के अधिकारी कर्मचारियों को पता ही नहीं था कि पैसा कैसे मिलेगा? हमने बार-बार श्रम विभाग और बोर्ड के अधिकारियों से बात की, तब जाकर 18 अप्रैल को बोर्ड के अधिकारियों ने बताया कि कुछ मजदूरों को बैंक खाते में पैसा ट्रांसफर नहीं हो पा रहा है, क्योंकि उनका खाता आधार से लिंक नहीं है। वह बताते हैं, "हमें फरीदाबाद के 1,606 और पलवल के 1,466 मजदूरों की सूची दे दी गई है, जिनके खाते आधार कार्ड से लिंक नहीं हैं। लॉकडाउन और कोरोनावायरस के इस भय भरे माहौल में पहले मजदूरों को आधार कार्ड लिंक कराने के लिए बैंकों की लाइन में लगना पड़ेगा। तब उनके पास पैसा आएगा।"

दूसरी तरफ सरकार का दावा कुछ और है। सरकार की ओर से कोरोनावायरस के अपडेट्स को लेकर रोजाना की जा रही प्रेस कॉन्फ्रेंस में 8 अप्रैल 2020 को गृह मंत्रालय की संयुक्त सचिव सहेली घोष राय ने बताया कि 31 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में निर्माण मजदूर बोर्डों ने सेस फंड से 1,000 से लेकर 6,000 रुपए तक देने की घोषणा की है और अब तक करीब 2 करोड़ निर्माण मजदूरों को 3,000 करोड़ रुपए दिए जा चुके हैं।

सरकार के दावों पर सवाल खड़े करते हुए निर्माण मजदूरों की राष्ट्रीय अभियान समिति (एनसीसी-सीएल) ने 14 अप्रैल को लिखे एक पत्र में कहा कि जो आंकड़े दिए जा रहे हैं, वे निराधार हैं। समिति ने दावा किया कि सबसे अधिक निर्माण मजदूर (1.21 करोड़ से अधिक) उत्तर प्रदेश में हैं। 30 जून 2017 तक इनमें से 36 लाख मजदूर ही बोर्ड में पंजीकृत थे। 5 अप्रैल 2020 को श्रम विभाग के प्रमुख सचिव के पत्र में बताया गया कि उत्तर प्रदेश निर्माण मजदूर कल्याण बोर्ड के पास केवल 10.92 लाख मजदूरों का बैंक खातों का विवरण उपलब्ध है। राज्य सरकार ने पंजीकृत मजदूर को 1,000 रुपए देने की घोषणा की है। यानी उत्तर प्रदेश कुल मिलाकर केवल 109.2 करोड़ रुपए ही दे सकता है। यदि सबसे अधिक पंजीकरण वाले राज्य उत्तर प्रदेश में ही केवल 109 करोड़ रुपए दिए गए तो सभी राज्यों का मिलाकर 3,000 करोड़ रुपए कैसे हो सकता है।

कुछ ऐसा ही सवाल दिल्ली असंगठित निर्माण मजदूर यूनियन ने भी उठाया। यूनियन के महासचिव अमजद हसन बताते हैं कि दिल्ली सरकार ने सबसे अधिक 5,000 रुपए प्रति मजदूर देने की घोषणा की है। दिल्ली में कुल निर्माण मजदूरों की संख्या 10 लाख से अधिक है, लेकिन 2018 तक इनमें से 5.5 लाख मजदूर ही पंजीकृत हो पाए थे। राज्य सरकार की लापरवाही के चलते इनमें से भी केवल 2.80 लाख मजदूर लाइव (जिन मजदूरों ने हर साल अंशदान देकर अपना पंजीकरण रिन्यू कराया) थे। आम आदमी पार्टी की सरकार ने नवंबर 2018 में जब ऑनलाइन पंजीकरण शुरू किया तो फरवरी 2020 तक केवल 35 हजार मजदूर ही अपना दोबारा पंजीकरण करा पाए, जबकि उस समय तक 7,500 मजदूरों का पंजीकरण अटका हुआ था। यूनियन के दबाव में इन मजदूरों का पंजीकरण किया गया। अमजद बताते हैं कि दिल्ली सरकार ने 17 अप्रैल 2020 तक 39,600 मजदूरों को ही आर्थिक सहायता दी है जो लगभग 19.80 करोड़ रुपए बनती है।

बिल्डिंग एंड वुक वर्क्स इंटरनेशनल (बीडब्ल्यूआई) से संबंधित निर्माण मजदूर पंचायत संगम की ओर से 11 अप्रैल 2,020 को एक पत्र लिखा गया, जिसमें कहा गया कि इस समय दिल्ली निर्माण कल्याण मजदूर बोर्ड के पास लगभग 3,200 करोड़ रुपए हैं। दिल्ली में कुल निर्माण मजदूरों की संख्या लगभग 10 लाख है। इसका मतलब है कि बोर्ड के पास प्रति मजदूर 32 हजार रुपए हैं। लेकिन यह फंड केवल पंजीकरण कराने वाले मजदूरों को दिया जा रहा है। जबकि यह समय सभी निर्माण मजदूरों तक सहायता पहुंचाने का है।

देशभर में कुल कितने निर्माण मजदूर हैं, इसका कोई ठोस आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। लेकिन जब बिल्डिंग एंड अदर कंस्ट्रक्शन वर्कर्स (रेगुलेशन ऑफ इम्प्लॉयमेंट एंड कंडीशन ऑफ सर्विस) बिल 1996 में जब संसद में रखा गया था, तब उसमें बताया गया था कि देश भर में 8.5 करोड़ मजदूर भवन एवं निर्माण कार्यों में लगे हुए हैं, जो असंगठित क्षेत्र से हैं। हालांकि 2017 में एनसीसी-सीएल में एक विश्लेषण के बाद बताया था कि जून 2017 में देश में निर्माण मजदूरों की संख्या 7.43 करोड़ से अधिक थी, जबकि उस समय तक निर्माण मजदूर कल्याण बोर्डों में पंजीकृत मजदूरों की संख्या 2.77 करोड़ थी। यानी कि केवल 37 फीसदी मजदूर ही बोर्ड में पंजीकृत हैं *(देखें: पंजीकरण का खेल, पेज 31)*। अब श्रम मंत्रालय द्वारा कहा जा रहा है कि पंजीकृत मजदूरों की संख्या 3.5 करोड़ है, हालांकि राज्यसभा में पूछे गए एक सवाल के जवाब में यह संख्या 30 सितंबर 2018 तक 3.16 करोड़ थी।

बिल्डिंग एंड वुड वर्कर्स इंटरनेशन के रीजनल पॉलिसी ऑफिसर (एशिया पेसिफिक) राजीव शर्मा बताते हैं कि यह अस्थायी राहत दी जा रही है, लेकिन इसमें भी काफी खामियां हैं। मजदूरों के पास बैंक खाते नहीं है, वे इधर से उधर

उत्तर प्रदेश निर्माण मजदूर कल्याण बोर्ड के पास केवल 10 .92 लाख मजदूरों का बैंक खातों का विवरण उपलब्ध है। राज्य सरकार ने पंजीकृत मजदूर को 1,000 रुपए देने की घोषणा की है। यानी बोर्ड केवल 109 .2 करोड़ रुपए ही दे सकता है

पंजीकरण का खेल

देशभर के कुल मजदूरों में से केवल 37 प्रतिशत ही पंजीकृत हैं और अगर केवल पंजीकृत मजदूरों को ही आर्थिक मदद मिलती है तो एक बड़ा हिस्सा इससे वंचित रह जाएगा

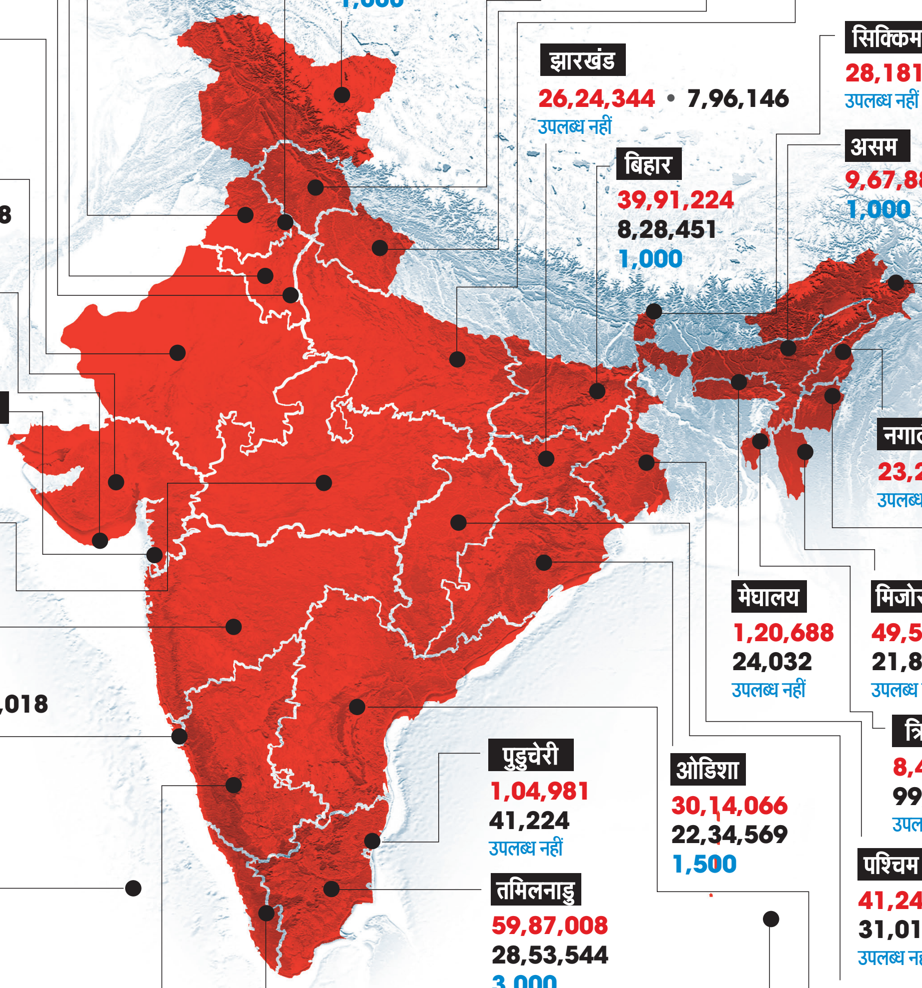

हरियाणा
17,69,664 • 7,63,373
1,000*

दिल्ली
10,00,000 • 5,39,421
5,000

राजस्थान
73,17,894
20,49,258
1,500

गुजरात
20,02,397 • 3,738
1,000

दमन और दीव
1,811 • 5,149
उपलब्ध नहीं

दादरा और नगर हवेली
11,611 • 2,176
उपलब्ध नहीं

मध्य प्रदेश
50,14,170
29,96,227
1,000

महाराष्ट्र
44,84,955 • 9,89,018
2,000

गोवा
57,432 • 1,823
उपलब्ध नहीं

लक्षद्वीप
5,184 • 179
उपलब्ध नहीं

पंजाब
21,15,200
7,46,102
6,000

चंडीगढ़
43,136 • 19,813
उपलब्ध नहीं

जम्मू और कश्मीर
11,53,600
3,42,295
1,000

हिमाचल प्रदेश
28,73,378
1,47,932
2,000

उत्तराखंड
6,59,298 • 2,32,627
उपलब्ध नहीं

उत्तर प्रदेश
1,21,38,136
42,08,744
1,000

झारखंड
26,24,344 • 7,96,146
उपलब्ध नहीं

बिहार
39,91,224
8,28,451
1,000

सिक्किम
28,181 • 36,236
उपलब्ध नहीं

असम
9,67,882 • 1,43,574
1,000

अरुणाचल प्रदेश
33,379
30,841
उपलब्ध नहीं

नगालैंड
23,291 • 11,912
उपलब्ध नहीं

मेघालय
1,20,688
24,032
उपलब्ध नहीं

मिजोरम
49,590
21,865
उपलब्ध नहीं

मणिपुर
2,63,485
1,18,332
उपलब्ध नहीं

त्रिपुरा
8,40,339
99,762
उपलब्ध नहीं

पश्चिम बंगाल
41,24,747
31,01,362
उपलब्ध नहीं

ओडिशा
30,14,066
22,34,569
1,500

पुडुचेरी
1,04,981
41,224
उपलब्ध नहीं

तमिलनाडु
59,87,008
28,53,544
3,000

छत्तीसगढ़
10,96,574
15,74,790
उपलब्ध नहीं

आंध्र प्रदेश और तेलंगाना
48,48,352
29,91,420
1,000

कर्नाटक
22,59,608
15,42,432
2,000

केरल
32,53,990 • 14,91,300
1,000 नगद और 2,000 रु.मेडिकल ट्रीटमेंट के लिए

अंडमान निकोबार द्वीप समूह
37,352 • 14,392
उपलब्ध नहीं

00 कुल अनुमानित मजदूर, जून 2017 तक
00 कुल पंजीकृत मजदूर, 30 सितंबर 2018 तक
00 राज्यों द्वारा घोषित आर्थिक मदद *हर सप्ताह

स्रोत: अनुमानित मजदूरों का आंकड़ा, निर्माण मजदूरों की राष्ट्रीय अभियान समिति (एनसीसी-सीएल) के अनुसार, पंजीकृत मजदूरों का आंकड़ा, केंद्र सरकार द्वारा 17 दिसंबर 2018 में राज्यसभा में दी गई जानकारी के मुताबिक, आर्थिक मदद के आंकड़े मीडिया रिपोर्ट्स के हवाले से

आते-जाते रहते हैं। ऐसे में, उनके लिए आसान नहीं होता कि वे अपना बैंक खाता रखें। उन्हें जो दिहाड़ी मिलती है, उसे वो उसी दिन खर्च कर देते हैं। इतना ही नहीं, वे तो अपना हर साल का पंजीकरण भी नहीं कर पाते। इस वजह से पिछले कुछ सालों के दौरान जहां देश में निर्माण गतिविधियां बढ़ी हैं, वहीं निर्माण मजदूर कल्याण बोर्ड में मजदूरों का पंजीकरण घटता जा रहा है। ऐसे में यदि सरकार उन्हीं मजदूरों को आर्थिक सहायता देगी, जिन्होंने अपना पंजीकरण को रिन्यू कराया है तो सहायता पाने वाले मजदूरों की संख्या काफी कम रह जाएगी। निर्माण मजदूर अधिकार अभियान के संयोजक थानेश्वर आदिगौड़ बताते हैं कि दिल्ली का ही उदाहरण लीजिए, एक समय में 5.5 लाख मजदूर पंजीकृत थे, अब लगभग 40 हजार हैं। मतलब 10 फीसदी से भी कम रह गए हैं? क्या इसके लिए पंजीकरण प्रक्रिया दोषी नहीं है? दरअसल, सरकारें नहीं चाहती कि मजदूरों को उनका हक मिले। महामारी के समय में भी सरकार आंकड़ों का खेल खेल रही है।

राजीव शर्मा कहते हैं कि सरकार को आखिर सोचना चाहिए कि लॉकडाउन की घोषणा होते ही प्रवासी मजदूरों में अफरातफरी क्यों मच गई? क्या उन्हें इतना भी भरोसा नहीं था कि सरकार उनके लिए कुछ न कुछ करेगी? निर्माण मजदूर कल्याण बोर्ड के पास 52 हजार करोड़ रुपए से अधिक पैसा है। क्या इस पैसे का इस्तेमाल इस ढंग से नहीं किया जाना चाहिए था कि मजदूरों को यह भरोसा रहता कि उन्हें घर के भीतर रहने के बावजूद भूखा नहीं रहना पड़ेगा?

थानेश्वर कहते हैं कि दिल्ली में प्रदूषण की मात्रा बढ़ने के बाद निर्माण कार्य रुकवा दिए जाते हैं। उस समय भी मजदूर खाली हाथ हो जाते हैं और कई मजदूर उस समय भी अपने गांव चले जाते हैं। हमने सरकार से बात की और कहा कि ऐसे समय में मजदूरों को बोर्ड की ओर से आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए, लेकिन सरकार ने हमारी बात नहीं मानी। अगर उस समय ही एक आपदा राहत कोष बना दिया जाता तो मजदूरों को भरोसा रहता कि काम न मिलने पर उन्हें कुछ न कुछ सहायता मिल जाएगी।

लॉकडाउन की घोषणा के तरीके पर सवाल उठाते हुए जगदीप वालिया कहते हैं कि जब प्रधानमंत्री लॉकडाउन की घोषणा कर रहे थे, तभी यह भी घोषणा की जानी चाहिए थी कि प्रवासी मजदूरों को नगद सहायता के साथ-साथ राशन की व्यवस्था की जाएगी तो मजदूरों में हड़कंप नहीं मचता। वह कहते हैं कि सरकार के एजेंडे में मजदूर हैं ही नहीं, इसलिए उनके बारे में सोचा ही नहीं गया।

कानून में कमियां

राज्यों में बने निर्माण मजदूर कल्याण बोर्डों के कामकाज को लेकर पहले भी सवाल उठते रहे हैं। 1996 में दो एक्ट पास हुए थे। एक था बिल्डिंग एंड अदर कंस्ट्रक्शन वर्कर्स (रेगुलेशन ऑफ इम्प्लॉयमेंट एंड कंडीशंस ऑफ सर्विस) एक्ट और दूसरा द बिल्डिंग एंड अदर कंस्ट्रक्शन वर्कर्स वेलफेयर (बीओसीडब्ल्यू) सेस एक्ट।

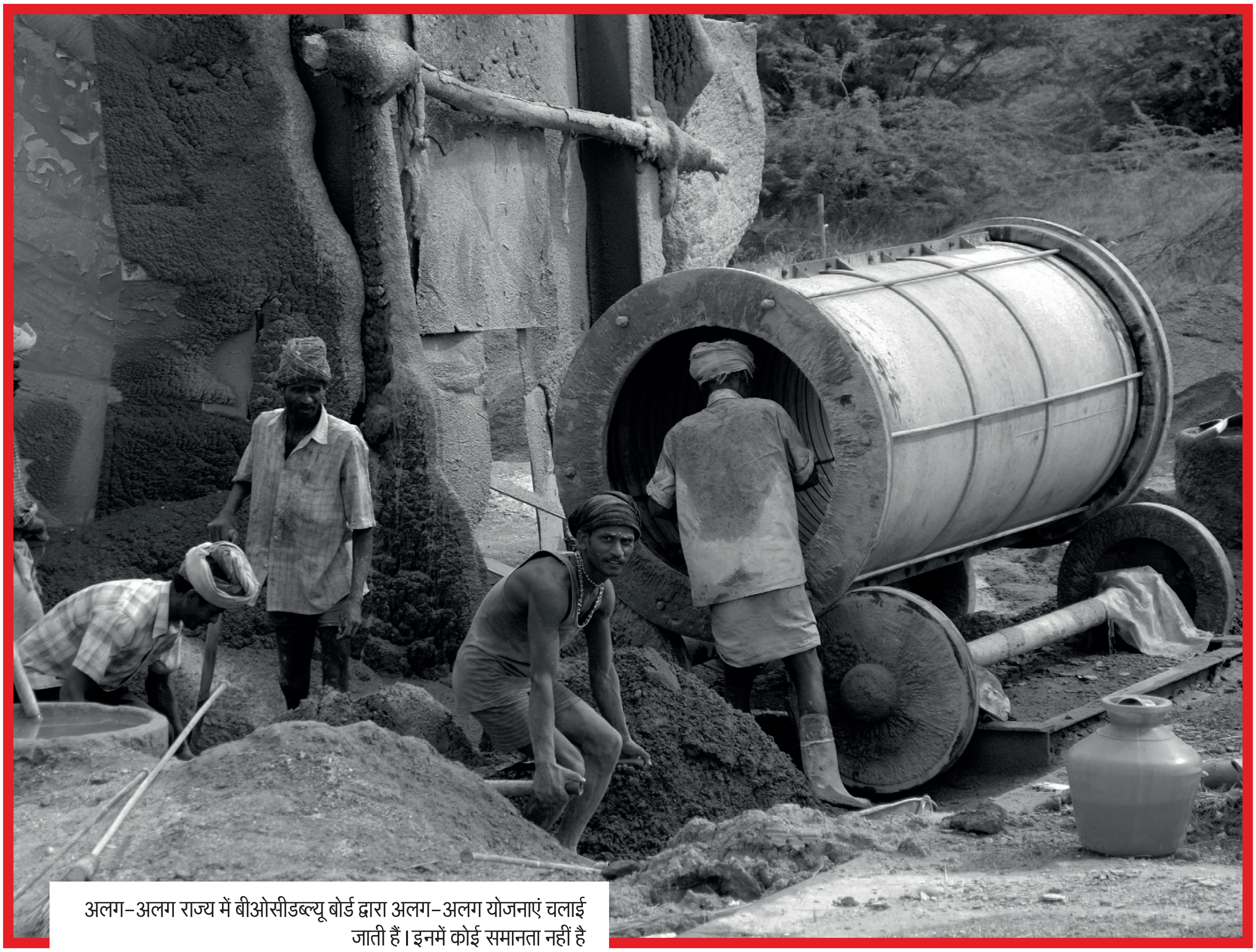

अलग-अलग राज्य में बीओसीडब्ल्यू बोर्ड द्वारा अलग-अलग योजनाएं चलाई जाती हैं। इनमें कोई समानता नहीं है

30 सितंबर 2018 तक राज्यों में बने बोर्डों के पास 45,473.1 करोड़ इकट्ठा था, लेकिन इसमें से 17,591.59 करोड़ ही खर्च किया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने बोर्डों में जमा पैसे में से कम खर्च किए जाने पर नाराजगी जताई

एक एक्ट में मजदूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी योजनाएं बनाने का प्रावधान है तो दूसरे में उनके लिए फंड की व्यवस्था करने का। सेस एक्ट में प्रावधान है कि भवन या निर्माण करने वाली एजेंसी को कुल परियोजना लागत का एक फीसदी सेस वेलफेयर बोर्ड के पास जमा कराना होगा।

सेस तो जमा होने लगा, लेकिन जब यह राशि खर्च नहीं हो रही थी तो एनसीसी-सीएल ने अदालत का दरवाजा खटखटाया, लेकिन अदालतों के लगातार आदेश के बावजूद भी सरकारों का रवैया नहीं बदला। एक अवमानना याचिका पर सुप्रीम कोर्ट ने 19 मार्च 2018 को केंद्र व राज्य सरकारों को बोर्ड के कामकाज और योजनाओं की निगरानी करने को कहा था। राज्यसभा में 17 दिसंबर 2018 में दी गई जानकारी के मुताबिक, 30 सितंबर 2018 तक राज्यों में बने बोर्डों के पास 45,473.1 करोड़ इकट्ठा था, लेकिन इसमें से 17,591.59 करोड़ ही खर्च किया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने बोर्डों में जमा पैसे में से कम खर्च किए जाने पर नाराजगी जताई।

एक्ट की सेक्शन 34 में हर नियोक्ता के लिए यह अनिवार्य किया गया है कि वह मजदूरों को रहने के लिए निशुल्क अस्थायी इंतजाम करे, इसमें खाना बनाने, नहाने का अलग इंतजाम हो। ये अस्थायी इंतजाम तब तक रहने चाहिए, जब तक भवन या प्रोजेक्ट का काम पूरा न हो जाए। एक्ट की इस धारा का कितना पालन हो रहा है, इसका एक उदाहरण है सुप्रीम कोर्ट के सामने प्रगति मैदान में चल रहा निर्माण कार्य। लॉकडाउन से पहले यहां लगभग 6,000 मजदूर काम कर रहे थे, लॉकडाउन की घोषणा होते ही यहां से मजदूर निकलना शुरू हो गए, लेकिन लगभग 1,600 मजदूर यहां फंस गए। कंस्ट्रक्शन कंपनी के अधिकारी व ठेकेदार नदारद हो गए। पुलिस ने इसकी जानकारी स्वयंसेवी संस्था सेंटर फॉर हॉलिस्टिक डेवलपमेंट के सुनील अलाबादी को दी। सुनील बताते हैं कि इन मजदूरों के खाने का जैसे-तैसे इंतजाम किया जा रहा है, लेकिन सवाल यह है कि न तो कंस्ट्रक्शन कंपनी ने इनका खयाल रखा और न ही वेलफेयर बोर्ड में इनका रजिस्ट्रेशन कराया गया, क्योंकि ऐसा करने पर कंपनी को श्रम विभाग को मजदूरों का पूरा ब्यौरा देना पड़ता। सुनील ने इस सिलसिले में दिल्ली उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका भी दायर की है। बीओसीडब्ल्यू एक्ट में यह भी कहा गया है कि काम पूरा होने के बाद राज्य सरकार को नया काम ढूंढने में मजदूरों की मदद करनी होगी। साथ ही, दूसरी जगह आने-जाने, रहने के लिए लेबर शेड या रैनबसेरा, मोबाइल टॉयलेट, बच्चों के लिए मोबाइल क्रश का इंतजाम करना होगा। राज्य सरकारें यह सब खर्च बोर्ड में जमा सेस से कर सकती हैं। लेकिन लॉकडाउन के बाद क्या हुआ, यह किसी से छिपा नहीं है।

राजीव शर्मा कहते हैं कि अगर बीओसीडब्ल्यू एक्ट की सही पालना की जाती तो मजदूरों में इस तरह भगदड़ नहीं मचती। जब एक्ट बना था तो उस समय कहा गया था कि देशभर में 8.5 करोड़ मजदूर हैं, लेकिन पंजीकरण 3.5 करोड़ का ही हो पाया। सरकार अगर हर प्रोजेक्ट में काम करने वाले मजदूर का बीओसीडब्ल्यू बोर्ड में पंजीकरण अनिवार्य कर देती तो इस समय ज्यादातर मजदूर पंजीकृत होते। इसके अलावा बोर्ड की योजनाएं ऐसी बनाई जा सकती थीं कि काम न होने पर भी उन्हें इस बात का भरोसा रहता कि वे भूखे नहीं मरेंगे।

अलग-अलग राज्य में बीओसीडब्ल्यू बोर्ड द्वारा अलग-अलग योजनाएं चलाई जाती हैं। इनमें कोई समानता नहीं है। जैसे 15 फरवरी 2015 को केंद्र सरकार ने एक शपथ पत्र दाखिल कर सुप्रीम कोर्ट को बताया कि हरियाणा में 22, हिमाचल प्रदेश में 17, महाराष्ट्र में 17, मेघालय में 14, दिल्ली में 18 योजनाएं चल रही हैं। सुप्रीम कोर्ट ने इस पर हैरानी जताते हुए कहा था कि इससे स्पष्ट है कि राज्य सरकारें एक ही तरह की योजनाएं बनाने में रुचि नहीं लेतीं और ज्यादातर योजनाएं कागज में ही चल रही हैं।

राज्यों द्वारा जो स्कीम चलाई जा रही हैं, उनमें बच्चों के लिए स्कॉलरशिप, शादी के लिए आर्थिक सहायता, बच्चों के लिए किताबें, पेंशन, मजदूरों के साइकिल, महिलाओं के लिए साड़ी, अंतिम क्रिया के लिए सहायता, टूल्स खरीदने जैसी योजनाएं शामिल हैं। इनमें एक हास्यास्पद स्कीम भी कुछ राज्यों में है। इसे निर्माण कामगार आवास सहायता योजना कहा जाता है। इसमें मजदूरों को घर बनाने के लिए सहायता दी जाती है। उत्तर प्रदेश में दो किस्तों में 45,000 रुपए देने का प्रावधान है, लेकिन इसके लिए मजदूर के पास कम से 20 वर्गमीटर की अपनी जमीन होनी चाहिए। थानेश्वर कहते हैं कि निर्माण मजदूर प्रवासी होते हैं और उनके पास प्लॉट कहां से आएगा? वह कहते हैं कि राज्यों में ऐसी कई योजनाएं हैं, जो मजदूरों के किसी काम की नहीं हैं। ऐसे ही एक चिकित्सा सहायता योजना के तहत एक मजदूर को पूरे परिवार के लिए साल में एक बार एकमुश्त 3,000 रुपए देने का प्रावधान है। अब अगर काम के दौरान मजदूर को चोट लग जाए या वह बीमार पड़ जाए तो उसे केवल 3,000 रुपए ही मिलेंगे, जबकि वे ज्यादातर बड़े शहरों में काम करते हैं, जहां इलाज के लिए 3,000 रुपए बहुत कम है।

40 साल पुराना कानून

कोरोना वैश्विक महामारी के समय 40 साल पुराना कानून इंटरस्टेट माइग्रेंट वर्कर्स एक्ट 1979 भी प्रवासी मजदूरों के काम नहीं आया। इस एक्ट की विशेषताएं एक साल पहले 24 जुलाई 2019 को केंद्रीय श्रम मंत्री संतोष गंगवार ने राज्यसभा में गिनवाई थीं। उन्होंने बताया था कि सभी प्रधान नियोक्ताओं और ठेकेदारों का पंजीकरण करना होगा, ठेकेदारों को लाइसेंस दिया जाएगा, पासबुक जारी की जाएगी, न्यूनतम मजदूरी का भुगतान किया जाएगा, पुरुष एवं महिला कामगारों को एक जैसे कार्य के लिए समान मजदूरी दी जाएगी, यात्रा भत्ते का भुगतान किया जाएगा, विस्थापन भत्ता दिया जाएगा, उपयुक्त रिहाइशी आवास प्रदान किया जाएगा, निर्धारित चिकित्सा सुविधाएं प्रदान की जाएंगी और सुरक्षात्मक वस्त्र प्रदान किए जाएंगे। गंगवार ने यह नहीं बताया कि इस कानून पर कितना अमल हो रहा है।

राजीव शर्मा कहते हैं कि इस कानून की पालना शून्य है। अगर इसे लागू किया जाता और प्रवासी मजदूरों को आवास व चिकित्सा सुविधा मिलती तो इस महामारी के दौरान उन्हें सड़कों पर ही पैदल चलने के लिए मजबूर न होना पड़ता। वह कहते हैं कि इस आपदा ने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रवासी मजदूरों को उनके लिए बनाए कानून और सरकारों पर भरोसा नहीं रहा, इसलिए अब सरकार को न केवल नए सिरे से दोनों बीओसीडब्ल्यू और इंटर स्टेट माइग्रेंट लेबर एक्ट पर बात करनी होगी, बल्कि इन्हें प्रभावी ढंग से लागू भी करना होगा।

“प्रवासियों ने क्यों छोड़ा शहर”

राज्य सरकारें प्रवासियों को सुविधा देकर उनकी यात्रा को सुरक्षित, व्यवस्थित और नियमित बना देतीं तो संक्रमण फैलने की आशंका कम हो जाती

बिनोद खादरिया

देशव्यापी लॉकडाउन के पहले सप्ताह में अपने गांव लौटने को बेचैन लोग भारी संख्या में सड़कों पर दिखे। इन लोगों को परिवहन के जो भी साधन हाथ लगे, उन्ही के सहारे वे अपने घर लौटने की कोशिश करते नजर आए। फिर चाहे भीड़भाड़ वाली ट्रेन की छत हो, बसों के ऊपर खचाखच भरे लोग हों, साइकिल-रिक्शा हों या फिर पैदल ही सैकड़ों किलोमीटर लंबे रास्ते को नापने का जज्बा, लोग किसी तरह बस अपने गांव जाने की जुगत में लगे थे। दिल्ली जैसे शहरों से हुआ यह पलायन बरबस भारत विभाजन के दौरान हुई जनसंख्या अदला-बदली की दुखद याद दिलाता है। वह प्रक्रिया तो दो राष्ट्रों के बीच अनिवार्य राजनीतिक विभाजन के लिए खींची एक नई रेखा की वजह से थी, जबकि वर्तमान पलायन ने देश के अंदर ही ग्रामीण और शहरी भारत के बीच पनपते एक अवांछनीय विभाजन को उजागर किया। एक विशेष अंतर यह भी था कि अचानक हुई तालाबंदी की वजह से दिल्ली और इसके आसपास के शहरों से प्रवासी श्रमिकों का अप्रत्याशित विस्थापन हुआ। आमतौर पर जीवन को बेहतर बनाने की तलाश लोगों को ग्रामीण इलाकों से शहरों की ओर प्रवास को प्रेरित करती है। सवाल यह है कि क्या वास्तव में इस प्रक्रिया ने इन प्रवासियों को गांवों की तुलना में शहरों में एक बेहतर जिंदगी दी? अगर सच में ऐसा हुआ होता तो अब हम शायद ही विपरीत दिशा में होने वाले इतने बड़े पलायन को देखते। यह समयोचित मौका है एक गंभीर स्थिति में प्रभावपूर्ण सुधार ला पाने का। एक ऐसा सुधार, जो ग्रामीण लोगों और शहर के वासी दोनों के हित में हो।

दिसंबर 2018 में दुनिया के अधिकांश देशों ने ग्लोबल कॉम्पेक्ट फॉर माइग्रेशन (जीसीएम) पर सहमति के हस्ताक्षर किए थे। इस सहमतिपत्र का चरम उद्देश्य है प्रवास के आवागमन को सेफ, ऑर्डरली और रेगुलर (सुरक्षित, व्यवस्थित और नियमित) बनाया जाए। जीसीएम दरअसल सीमाओं के पार होने वाले अंतरराष्ट्रीय प्रवास पर लागू है, जहां कार्यान्वयन की जिम्मेदारी गंतव्य देशों की अधिक होती है। क्यों न भारत में इसके मापदंड तथा उद्देश्य को आंतरिक प्रवास से जुड़े आवागमन में सुधार लाने के लिए इस्तेमाल किया जाए? क्या ग्रामीण भारत और शहरों के बीच “सुरक्षित, व्यवस्थित और नियमित” आवागमन तथा प्रवास की व्यवस्था नहीं हो सकती? जैसा कि हमने तालाबंदी के दौरान हुए पलायन में देखा, किसी भी दृष्टिकोण से यह “सुरक्षित, व्यवस्थित और नियमित” नहीं दिखा। फिर भी इससे भविष्य के लिए सीखने की गुंजाइश जरूर है। शहरों से ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले प्रवासन या विस्थापन को ऐसा बनाने की योजना पर पुनर्विचार अत्यावश्यक है। अंतरराष्ट्रीय प्रवास की तुलना में देश के भीतर होने वाले प्रवास की जिम्मेदारी एक ही देश की होने में कुछ सहूलियतहै। भारत के संघीय ढांचे में जलवायु परिवर्तन से जुड़े प्रवास से निपटने के दौरान राज्यों के एक-दूसरों के सहयोगी के रूप में भूमिका निभाने की जरूरत, न कि व्यवधान या प्रतिस्पर्धा पैदा करने की। हालांकि वर्तमान लॉकडाउन से प्रभावित प्रवास के मामले में कुछ राज्यों ने सीमाओं पर ऐसा व्यवहार किया कि मानो वे एक-दूसरे के विरोधी हों और शहरों से गावों की ओर धावित बेसब्र प्रवासी मजदूर राष्ट्रहीन अनाथ जनता हो। कई राज्यों ने इस शहरी-ग्रामीण मानव प्रवाह को रोकने के लिए बिना कोई सुविधा प्रदान किए सीमाओं को सील कर दिया। इससे प्रवासी मजदूरों के घर लौटने की प्रक्रिया काफी दुरुह हो गई। वह किसी भी दृष्टि से सुरक्षित, व्यवस्थित और नियमित नहीं रही। यदि राज्य सरकारें इन प्रवासियों को कुछ प्राथमिक सुविधा मात्र देकर उनकी यात्रा को सुरक्षित, व्यवस्थित और नियमित बना देतीं तो संक्रमण फैलने की संभावना कम हो जाती, जो लॉकडाउन का एकमात्र और मूल उद्देश्य है।

भारत के बेहतर भविष्य के लिए इससे क्या सबक लिया जा सकता है? एक सबक यह हो सकता है कि लोगों को वापस आकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। अगर ये प्रवासी लोग वापस आकर गांवों में नहीं तो कम से कम छोटे शहरों में रह पाएं तो बड़े शहरों-महानगरों में जारी जनसंख्या विस्फोट से हुई भीड़भाड़ को कम करने का जरिया भी बन सकते हैं। लॉकडाउन के दौरान अस्थायी मानव उद्यम की अनुपस्थिति से भारत और अन्य जगहों पर जंगलों के जानवर सड़कों पर घूम रहे हैं, नदियां साफ हो रही हैं, आसमान नीले दिख रहे हैं और शहरी हवा शुद्ध होती जा रही है। यहां तक कि शहरी बीमारियों की घटनाओं में कमी आई है और यह माना जा रहा है कि इन बीमारियों का एक बड़ा हिस्सा चिकित्सा उद्योग के निहित स्वार्थ द्वारा निर्मित है। लॉकडाउन से शहर में एक नया वातावरण विकसित हो रहा है। क्या इन सकारात्मक प्रभावों को पोषित कर के हमेशा ऐसे ही बनाए रखा जा सकता है? क्या इन्हें कोरोनावायरस की तुलना में आगे आने वाली और बड़ी आपदा को रोकने की तैयारी के रूप में देखने का अवसर नहीं है? अगर हम इन स्थितियों और सुरक्षा उपायों को अत्यंत तेजी से नहीं बढ़ा सकते तब भी कम से कम तटस्थ होकर उन्हे निरंतर बढ़ाते रहने की आवश्यकता है। ऐसा

विकास चौधरी / सीएसई

लॉकडाउन की घोषणा के बाद दिल्ली से बड़ी संख्या में प्रवासियों की भीड़ अपने गांव जाने के लिए उमड़ी। आनंद विहार बस अड्डे में भारी भीड़ जमा हो गई

करना आसान नहीं है लेकिन लॉकडाउन को झेलना भी तो आसान नहीं था। यदि भारत के लोग लॉकडाउन को सफलतापूर्वक निभा सके हैं, तो उन्हें एक अलग तरह के संतुलित ग्रामीण-शहरी विकास को अपनाने की क्षमता न होने का कोई कारण नहीं है। उदाहरण के लिए, इससे आवास क्षेत्र में प्रचलित और प्रसारित अवैध निर्माण की गतिविधियों पर अंकुश लगाने में मदद मिलेगी। वर्तमान डीडीए कॉलोनियों में पूरे साल आवास रेनोवेशन के नाम पर अवैध निर्माण और तोड़फोड़ की गतिविधियां जारी रहती हैं। इससे बच्चे, युवा और बुजुर्गों को निरंतर धूल-प्रदूषणऔर ध्वनि प्रदूषण का सामना करना पड़ता है। लोगों के पड़ोसियों से संबंध भी खराब रहते हैं। इन सब से समुदाय तथा समाज के अंतरंग हिस्से- व्यक्ति तथा लोगों के स्वास्थ्य की प्राकृतिक कवच प्रणाली जिसे हम "नैचरल इम्यूनिटी" कहते है, जो उन्हें वायरस के हमले से बचाने में मददगार होता है, उसका हनन होता है। इस वजह से शहरी बीमारियों की घटनाएं भी बढ़ती हैं और लोगों की उत्पादक शक्ति में कमी आती है। दूसरी तरफ श्रमिकों के शहरोन्मुखी होने की वजह से ग्रामीण क्षेत्र युवा शक्ति से वंचित हो जाते हैं। इस युवा शक्ति का इस्तेमाल छोटे शहरों में नए सिरे से रोजगारों में उपयोग किया जा सकता है। अगर लोगों को शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच संतुलित तरीके से वितरित और व्यवस्थित किया जा सके तो अब तक विकास से वंचित ग्रामीण और अर्धशहरी क्षेत्रों को शिक्षा और स्वास्थ्य, व्यापार, वाणिज्य, निर्माण के हब अर्थात केन्द्र बनाना असम्भव नहीं होगा।

लॉकडाउन के दौरान प्रवासी मजदूरों के अपने गांव लौटने की बेसब्री एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है। सवाल है कि वे घर लौटने के लिए इतने बेताब क्यों थे? इसका कारण यह है कि जब शहरों में कोई संकट आता है, तो उनके पास वहां बने रहने के लिए न तो वांछित शारीरिक शक्ति होती है न मानसिक। फिर भी वे इनको झेलते हैं क्योंकि शहरों में ज्यादा मजदूरी मिलती है और मजदूर शहर में ज्यादा कमाते हैं। लेकिन ये कमाई उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के साथ किए जाने वाले समझौतों की बड़ी कीमत पर आती है। एक और सवाल मन में आता है कि आखिर कोविड-19 के मामले शहरों की तुलना में ग्रामीण भारत में इतने अधिक क्यों नहीं पाए जा रहे हैं? इसकी एक वजह यह है कि गांव के लोगों के फेफड़े मजबूत हैं। वे स्वच्छ हवा में सांस लेते हैं। इसके विपरीत, शहरी लोग- अमीर और गरीब दोनों प्रदूषण के कारण अपने कमजोर फेफड़ों की वजह से सांस की समस्याओं का सामना करते हैं। शहरों में आज स्वच्छ हवा दुर्लभ हो गई है। इसका एक बड़ा और प्रमुख कारण है मानव-निर्मित लालच, जो नागरिकों को शहरी आवासों में गैरकानूनी निर्माण करने को आकर्षित ही नहीं बल्कि एक-दूसरे से होड़ के लिए भी उकसाती है। इसमें शरीक होने के लिए भ्रष्टाचार शासनतंत्र की सभी इकाइयों को अपनी ओर खींच लेता है। दिल्ली सरकार ने कुछ साल पहले सड़कों की धूल साफ करने के लिए झाड़ू लगाने की शिफ्ट चेंज की बात की थी ताकि सुबह की सैर करने वाले वरिष्ठ नागरिक धूल के गुबार की चपेट में न आएं और अपने मूल्यवान फेफड़ों को धीमी गति की क्षति से बचा पाएं। वह प्रस्ताव टिका नहीं, अन्यथा आज शायद दिल्ली के बहुत से वरिष्ठ नागरिकों के फेफड़े कोरोनावायरस से उतने त्रस्त नहीं होते जितने हैं। जिस दृढ़ता से अभी संक्रमण के खिलाफ लॉकडाउन लागू किया गया है, शायद उस दृढ़ता की दूरदृष्टि उस समय नहीं थी। कौन जानता था आज की विश्वव्यापी महामारी फेफड़ों से ही जुड़ी होगी! कोविड-19 संकट के डर ने हमें बहुत कुछ सिखाया है। इसने लोगों को कठोर परिवर्तनों को स्वीकार करना सिखा दिया है। भगवान के क्रोध का डर तो लोगों के मन में अब रहा नहीं क्योंकि भगवान को तो उसके नकली एजेंटों के माध्यम से "रिश्वत" देकर मना लेने का दुस्साहस व्यापक परिमाण में फैल चुका है। सौभाग्यवश आज प्रकृति के तांडव का खौफ उजागर हुवा है। मेरी राय में यही नकारात्मक वर्तमान संकट का सकारात्मक रुख है।

(लेखक एक वरिष्ठ माइग्रेशन स्कॉलर हैं और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर हैं)

जैव आतंकवाद की शुरुआत

अमेरिकन इंडियन को विस्थापित करने के लिए चेचक से संक्रमित कंबल भेंट किए गए थे। 250 साल पहले की इस घटना ने अमेरिका और कनाडा के कई क्षेत्रों को बंद कर दिया था

प्रणय लाल

इस सदी के शुरुआती वर्षों में उत्तरी अमेरिका के ग्रेट लेक्स के आसपास के मैदानों में कंबल की एक अजीबोगरीब खोज शुरू हुई। ये कोई साधारण कंबल नहीं थे। जंगली सांड की खाल से बने ये कंबल चेचक से भरे शारीरिक द्रव के साथ सने हुए थे और 200 साल पहले अमेरिकन इंडियन लोगों को विस्थापित करने के लिए इस्तेमाल किए गए थे। 9/11 के बाद अमेरिकी अधिकारियों ने आशंका जताई थी कि इस तरह के कुछ कंबल अब भी मौजूद हो सकते हैं और चेचक फैलाने का एक स्रोत गलत हाथों में पड़ सकता है। उस वक्त अमेरिका और कनाडा में कई क्षेत्रों को बंद कर दिया गया था। हालांकि यह पूरी कार्रवाई गोपनीय ही रही।

इस खोज से और तो कुछ हासिल नहीं हुआ, लेकिन इससे अमेरिकी इतिहास के पहले घिनौने पन्ने सामने आ गए। कई इतिहासकारों के अनुसार अमेरिकी इतिहास में 1763 के वसंत के दौरान घटे एक भीषण प्रकरण में इन कुख्यात कंबलों के इस्तेमाल होने का पता लगता है। उस वर्ष डेलावेयर इंडियंस की एक पार्टी ने अपने ओटावा प्रमुख पोंटियाक के नेतृत्व में ब्रिटिश स्वामित्व वाले फोर्ट पिट (अब पिट्सबर्ग, पेंसिल्वेनिया) की घेराबंदी की। उस दिन एक स्विस सैनिक और किले के वरिष्ठ अधिकारी कैप्टन शिमोन इकुयर ने अंग्रेजों को मुसीबत से बचाया। इंडियंस 2 कंबल और 1 रुमाल के उपहार के बदले अस्थायी रूप से अपनी घेराबंदी खत्म करने पर सहमत हुए। उन्हें इस बात की भनक भी नहीं थी कि विली इकुयर ने जानबूझकर तोहफों को चेचक से संक्रमित किया हुआ था।

स्विस सैनिक और किले के वरिष्ठ अधिकारी कैप्टन शिमोन इकुयर ने डेलावेयर इंडियंस को 2 कंबल और 1 रुमाल के उपहार स्वरूप दिए। उन्हें इस बात की भनक नहीं थी कि तोहफों को चेचक से संक्रमित किया गया है

इस प्रकरण की पुष्टि फोर्ट पिट में यूरोपीय उपनिवेशियों के रक्षक सेना के नेता विलियम ट्रेंट ने अपने जर्नल में की है। अधिकतर इतिहासकार इस स्रोत को "संकटग्रस्त किले में चिंतित दिनों और रातों के सबसे विस्तृत समकालीन वृत्तांत" के तौर पर देखते हैं। 24 मई 1763 की एक प्रविष्टि में ट्रेंट लिखते हैं, "मुझे आशा है कि इन साधनों का वांछित प्रभाव होगा।" उनका प्रभाव वास्तव में पड़ा। 17 जुलाई तक चेचक डेलावेयर इंडियंस के बीच स्थानिक महामारी बन गया था।

इस कहानी के दूसरे खलनायक हैं लॉर्ड जेफरी एमहर्स्ट, जो फ्रांसीसी और इंडियंस के युद्ध (1756-1763) की अंतिम लड़ाई के दौरान उत्तरी अमेरिका में ब्रिटिश सेनाओं के कमांडर थे। जनरल के पत्राचार से पता चलता है कि उन्होंने अपने कट्टर औपनिवेशिक प्रतिद्वंद्वी, फ्रांसीसियों के साथ एक अनकही

सहभागिता शुरू की, जिससे इकुयर द्वारा शुरू की गई संदिग्ध गतिविधियों को आगे बढ़ाया जा सके। अपनी पुस्तक, "द कॉन्सपिरेसी ऑफ पोंटियाक एंड द इंडियन वॉर आफ्टर द कनक्वेस्ट ऑफ कनाडा" में इतिहासकार फ्रांसिस पार्कमैन ने लिखा है कि एमहर्स्ट ने एक फ्रांसीसी जनरल हेनरी बुके के साथ विद्रोही इंडियन जनजातियों के बीच चेचक फैलाने के बारे में नियमित पत्रों का आदान-प्रदान किया।

ईकुयर की कार्य विधि के बारे में बुके को पता था। 23 जून 1763 को लिखे गए एक पत्र में उन्होंने फोर्ट पिट में इंडियंस के बीच चेचक फैलने का उल्लेख किया है। और 13 जुलाई 1763 को उन्होंने इंडियंस को संक्रमित करने के लिए चेचक से लिप्त कंबलों के वितरण का सुझाव दिया। एमहर्स्ट ने 16 जुलाई 1763 के एक पत्र में विधि का अनुमोदन किया और "इस अधम प्रजाति को समाप्त करने" के अन्य तरीकों के बारे में अपने फ्रांसीसी वार्ताकार से भी पूछताछ की। बुके और एमहर्स्ट ने एक स्पेनिश पद्धति की भी चर्चा की थी जिसमें इंडियंस का शिकार करने के लिए कुत्तों के उपयोग होता था, लेकिन इस विधि को व्यवहार में नहीं लाया जा सकता था, क्योंकि वहां पर्याप्त कुत्ते नहीं थे।

एमहर्स्ट इंडियंस के साथ ही साथ फ्रांसीसियों के साथ भी युद्ध में लिप्त थे, लेकिन वह उन्हें पृथ्वी की सतह से गायब कर देने जैसी किसी भी जुनूनी इच्छा से प्रेरित नहीं थे। पर इंडियंस के लिए जनरल के मन में ऐसी कोई झिझक न थी। उनके पत्र में "उन दरिंदों ने मानवता के अधिकारों के सभी दावों को खारिज कर दिया है" जैसे वाक्यांशों की भरमार होती थी। इतिहासकार जेसी लॉन्ग ने जनरल को यह कहते हुए रिकॉर्ड किया कि "मैं प्रांतों (पिट्सबर्ग) के लिए तब खुश होता, जब उनमें एक हजार मील के भीतर (अमेरिकन) इंडियंस की बस्ती नहीं होती।"

एमहर्स्ट और बुके जैसे यूरोपीय उपनिवेशवादी उन कुख्यात कंबलों का इस्तेमाल करके अमेरिकन इंडियंस का विनाश कर सकते थे क्योंकि वे स्वयं संक्रमण के ज्ञान से लैस थे। इस प्रक्रिया की खोज एक डच फिजियोलॉजिस्ट जान इंगेनहास ने की थी और 1721 में किसी लेडी मैरी वोर्टली मोंटेग द्वारा इसे इंग्लैंड लाया गया था। इसमें स्वस्थ मनुष्यों को उन व्यक्तियों के फोड़ों से निकले मवाद से संक्रमित किया जाता था, जिनमें इस बीमारी के हलके लक्षण पाए गए होते थे, लेकिन अक्सर इसके घातक परिणाम होते थे। लेकिन, एमहर्स्ट जैसे उपनिवेशवादियों को लंबे समय तक इंतजार नहीं करना पड़ा। 18वीं शताब्दी के आखिरी दशकों तक वे इस काम को बिना किसी डर के अंजाम देते रहे।

उस समय तक ब्रिटिश चिकित्सक एडवर्ड जेनर के चेचक और गायों में होने वाले चेचक के बीच के संबंध पर अनुसंधान से निर्णायक परिणाम आने शुरू हो गए थे। 1796 में जेनर ने बताया कि चेचक से बचाव के लिए मनुष्यों का टीकाकरण संभव है यदि उन्हें गायों के चेचक की एक छोटी खुराक दी जाए। उपनिवेशों में इस तरह की जानकारियों को मूल निवासियों से दूर रखा जाता था।

आज के वक्त में पश्चिम हर समय उन बिमारियों के डर के साए में रहता है जो एशिया (सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम, या सार्स, एवियन इन्फ्लूएंजा) और अफ्रीका (एक्वायर्ड इम्यून डेफिसिएंसी सिंड्रोम या एड्स, इबोला और मंकीपॉक्स) में उत्पन्न होती हैं। लेकिन, लगभग सभी प्रकार के टीकाकरण विकसित दुनिया के नागरिकों की सुरक्षा के लिए डिजाइन किए गए हैं। इन हिंसक बीमारियों से जिनको सबसे ज्यादा खतरा है, उन लोगों को बचाने के लिए बहुत थोड़े प्रयास हुए हैं। उदाहरण के लिए, अफ्रीका में चेचक के टीकाकरण को बंद करने से कई लोग बंदर को होने वाले चेचक जैसे अन्य संबंधित संक्रमणों के संपर्क में आ गए हैं।

डाउन टू अर्थ प्रकाशन

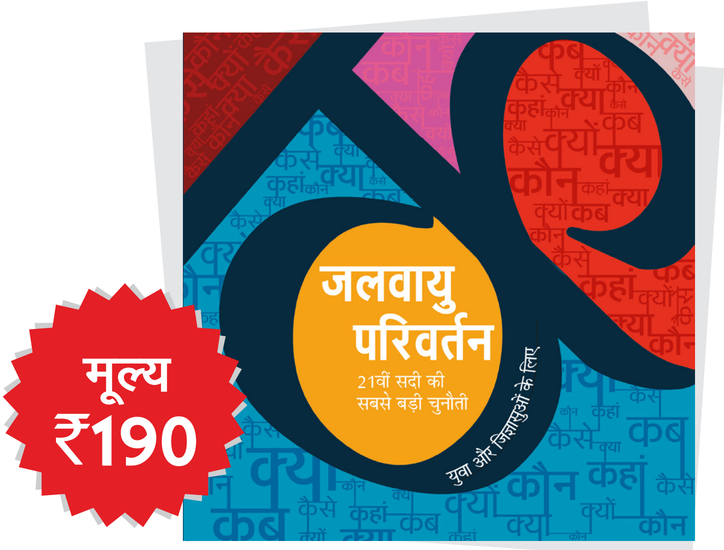

जलवायु परिवर्तन

21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती

युवा और जिज्ञासुओं के लिए लिखी गई यह किताब जलवायु परिवर्तन के बारे में समझ विकसित करती है।

https://csestore.cse.org.in/ पर जाकर आज ही अपनी प्रति बुक करें।

बदनसीब अफ्रीका की खुशकिस्मती

अफ्रीकी देशों ने अतीत से सबक लेते हुए कई जानलेवा महामारियों से बेहतर बचाव किया है लेकिन कमजोर स्वास्थ्य तंत्र और उच्च मृत्युदर वाले ये देश कब तक ऐसा कर पाएंगे?

दक्षिण अफ्रीका से एंजेला डुवनेज, नाइजीरिया से बेनेट ओगिफो और मैना वारूरू, केन्या से अगाथा नगोथो, सेनेगल से अडोल्फस मोवोलो, रवांडा से क्रिस्टोफ हितायेजू और डीआर कांगो से आंद्रे पेलिस नदीमुरुकुंडो की रिपोर्ट

दक्षिण अफ्रीकी डेयरी चैंपियनशिप के 187 साल के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है कि प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कृत करने के लिए कोई रंगारंग कार्यक्रम नहीं हुआ और न ही इसमें लाखों दर्शकों की मौजूदगी रही। इस प्रतियोगिता के विजेताओं की घोषणा 26 मार्च, 2020 को फेसबुक लाइव के जरिए की गई। ऐसा कोई नई रिवायत शुरू करने के लिए नहीं किया गया, बल्कि कोविड-19 महामारी के डर के चलते ऐसा हुआ। प्रतियोगिता का आयोजन दक्षिण अफ्रीका में कोरोनावायरस के संक्रमण को रोकने के लिए शुरू होने वाले 21 दिनों के लॉकडाउन से महज 12 घंटे पहले किया गया था। 27 अप्रैल 2020 तक अफ्रीकी महाद्वीप में कोरोनावायरस के कुल 32,887 मामलों में सर्वाधिक 4,546 मामले दक्षिण अफ्रीका में थे। हालांकि मृत्यु के मामले में यह देश अलजीरिया, मोरक्को और इजिप्ट के बाद चौथे स्थान पर था। दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने लॉकडाउन के 4 दिन बाद ही एहतियातन घर-घर जाकर कोरोनावायरस को लेकर स्क्रीनिंग शुरू कर दी। करीब 10,000 कर्मचारियों को इस काम में लगाया गया। दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति सिरिल रामफोसा ने राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में कहा, "जिन लोगों में कोरोनावायरस संक्रमण के लक्षण नजर आ रहे हैं, उन्हें जांच के लिए लोकल क्लीनिक या मोबाइल क्लीनिक में भेजा जाएगा। जिनमें कोरोनावायरस का संक्रमण पाया जाता है लेकिन उनमें कोई लक्षण नहीं आता है या बिलकुल कम लक्षण दिखता है, उन्हें घरों में या सरकार निर्मित आइसोलेशन सेंटर में रखा जाएगा।"

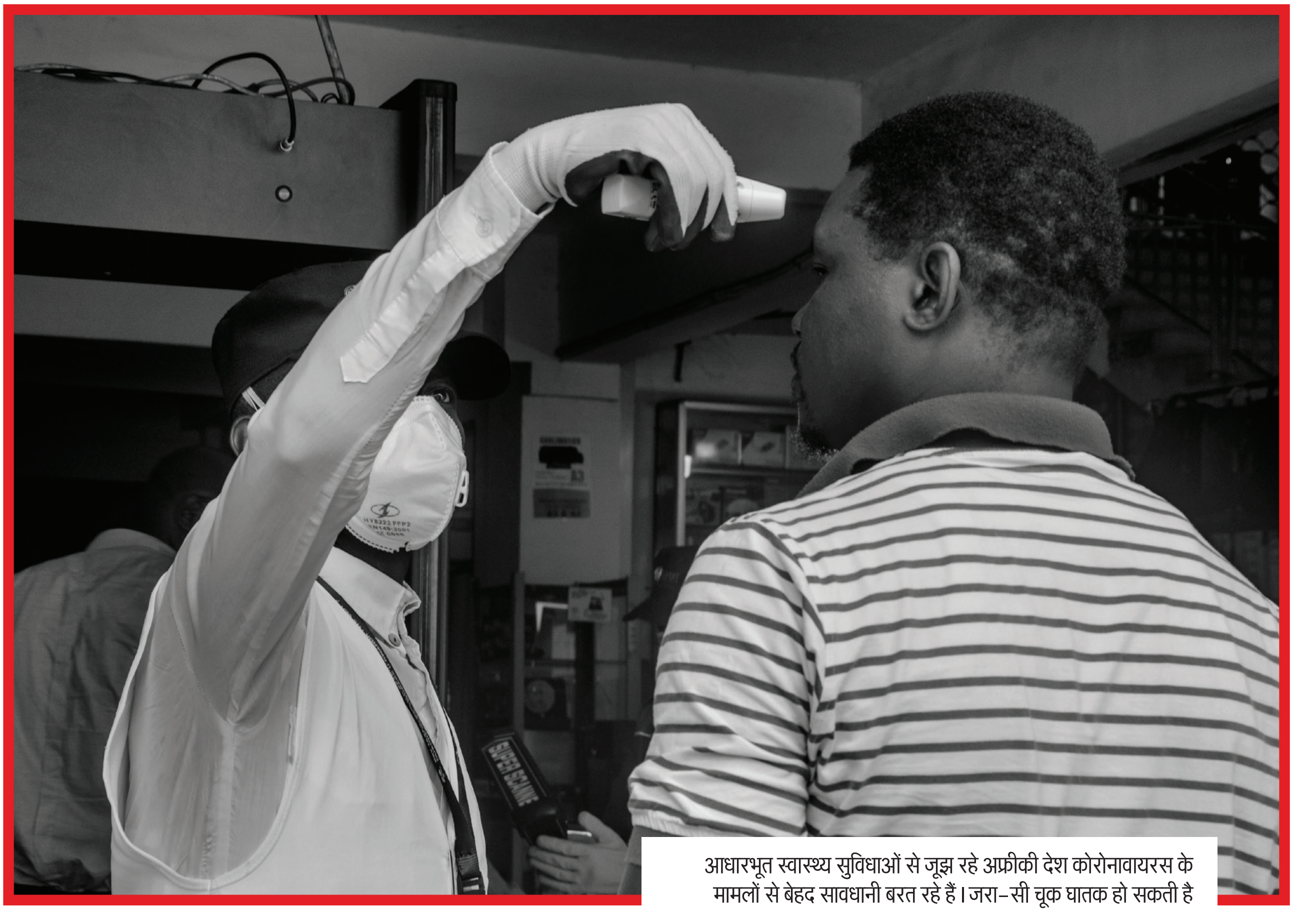

आधारभूत स्वास्थ्य सुविधाओं से जूझ रहे अफ्रीकी देश कोरोनावायरस के मामलों से बेहद सावधानी बरत रहे हैं। जरा-सी चूक घातक हो सकती है

अफ्रीका एग्रीकल्चर स्टेटस रिपोर्ट 2018 के मुताबिक, महाद्वीप की आबादी का 70 प्रतिशत हिस्सा खेतीबाड़ी पर निर्भर है। इनमें से बड़े तबके के पास दो हेक्टेयर से कम जमीन है। ये तबका ही बंदी से सबसे अधिक प्रभावित है

महामारी को लेकर अफ्रीकी देश अति सावधान रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका की तरह केन्या ने 12 मार्च से दो हफ्ते के लिए स्कूल व अन्य शैक्षणिक संस्थानों को बंद करने से पहले ऑनलाइन पठन-पाठन की तैयारी कर ली थी। केन्या सरकार के एक अंग केन्या इंस्टीट्यूट ऑफ कैरिकुलम डेवलपमेंट ने रेडियो व टेलीविजन के माध्यम से स्कूल कार्यक्रमों की जानकारी देनी तेज कर दी। केन्या के शिक्षा मंत्री जार्ज मगोहा ने कहा, "बंदी के चलते 1.5 करोड़ स्कूली बच्चे (प्राथमिक व माध्यमिक) घरों में हैं और उन्हें घरों में पढ़ाई के लिए दिशानिर्देश की जरूरत है।"

पश्चिमी अफ्रीकी देश सेनेगल में साल 2014 में इबोला संक्रमण के एकमात्र मरीज की जांच की गई थी। इबोला ने लाइबेरिया, गिनी और सियरा लियोन को प्रभावित किया था। इसके 6 साल बाद अब कोविड-19 महामारी फैली है। साल 2014 की महामारी के अनुभवों से प्रशासन को मौजूदा महामारी से मुकाबला करने के लिए प्रभावी कदम उठाने में मार्गदर्शन मिला। स्वास्थ्य मंत्रालय के पब्लिक हेल्थ इमरजेंसी ऑपरेशन सेंटर के डायरेक्टर अब्दोलाय बोसो ने कहा, "इस महामारी से मुकाबले के लिए सबसे पहली प्रतिक्रिया सभी कार्रवाइयों का नेतृत्व और उनमें सामंजस्य बनाए रखने के लिए इमरजेंसी ऑपरेशंस सेंटर की स्थापना थी।" उन्होंने आगे कहा, "लोगों को जागरूक करने के लिए संदेश तैयार करने में हमें पूर्व के अनुभवों से सीख लेने की जरूरत थी।" संक्रामक रोगों जैसे खसरा-रूबेला, मैनिंजाइटिस, तपेदिक और रेबीज से सेनेगल ने बेहतर तरीके से निबटा है जिससे ये देश अपने पड़ोसियों से बेहतर स्थिति में है। महामारी को लेकर लोगों की समझ बढ़ाने के लिए सरकार ने अहम सूचना को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक प्रसारित करने में समुदायों को एकजुट कर उनका सहारा लिया। इतना ही नही, सरकार समाज को प्रभावित करने वाले लोगों मसलन संगीतकारों और धार्मिक गुरुओं का भी सहारा ले रही है ताकि ये अपने फैन और अनुयायियों तक संदेश पहुंचा सकें। गिनी के जन स्वास्थ्य विशेषज्ञ और एपिडेमियोलॉजिस्ट अल्पा बैरी ने कहा, "समुदाय आधारित निगरानी को शामिल करने के लिए देश के पास एक मजबूत एकीकृत रोग निगरानी व कार्य तंत्र है।" अल्पा बैरी ने 2014 में पश्चिमी अफ्रीका में आई इबोला महामारी से लड़ाई को नेतृत्व दिया था।

सक्रिय प्रतिक्रियाओं के बावजूद, अफ्रीका एक ऐसा महाद्वीप भी है जिसका स्वास्थ्य का बुनियादी ढांचा नाजुक हैं। ऐसे में उम्मीद रहती है कि वह अति चौकन्ना रहेगा। दूसरी तरफ, पिछले महीने की तुलना में हाल में कोविड-19 के संक्रमण की गति तेज रही है। 15 मार्च से लेकर महीने के अंत तक प्रभावित देशों की संख्या 9 से बढ़कर 41 हो गई। 6 अप्रैल तक अफ्रीकी महाद्वीप के सभी देशों से संक्रमण की खबरें आने लगीं और कोविड-19 के पॉजिटिव मामले 9,000 से ज्यादा हो गए। 27 अप्रैल तक कुल मामलों की संख्या 32,887 पहुंच गई, जबकि मौत का आंकड़ा 1,431 हो गया। अफ्रीकी देशों में एचआईवी/एड्स व कुपोषण को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोविड-19 से घातक हालात बनने की चेतावनी दी थी। अफ्रीका में स्वास्थ्य का नाजुक बुनियादी ढांचे तो जगजाहिर है।

अफ्रीका सबसे युवा महाद्वीप है और इसकी औसत आयु 19.7 वर्ष है (चीन में यह 38.4 वर्ष है)। कोविड-19 ने 60 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को प्रभावित किया है और उनके लिए घातक साबित हुआ है जिनका शारीरिक स्वास्थ्य नाजुक है। हालांकि, हमारे पास कोई स्पष्ट ट्रेंड नहीं है कि ये वायरस कैसा व्यवहार करता है, सिवाय इसके कि इस वायरस ने महिलाओं से ज्यादा पुरुषों की जान ली है। लेकिन, अफ्रीका की युवा आबादी स्वस्थ नहीं है बल्कि कुपोषण, एनीमिया, मलेरिया, एचआईवी/एड्स और टीबी की चपेट में है। कोविड-19 संक्रमण के गंभीर मामलों का इलाज वेंटिलेटर, बिजली और ऑक्सीजन पर निर्भर करेगा। प्रति व्यक्ति अधिकतम इंटेंसिव केयर बेड की उपलब्धता को लेकर किए गए एक वैश्विक विश्लेषण में अफ्रीका के एक भी देश को जगह नहीं मिली है। मसलन लाइबेरिया में वेंटिलेटर के साथ एक भी इंटेंसिव केयर यूनिट नहीं है। युगांडा में 1,00,000 की आबादी पर 0.1 आईसीयू बेड है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका में 1,00,000 की आबादी पर 34.7 बेड हैं। इसके अलावा अफ्रीकी देशों में लॉकडाउन के दौरान लाखों लोगों को भोजन उपलब्ध कराना तात्कालिक चिंता है। कांगो की डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ने कोविड-19 के हॉटस्पॉट किनशासा में 28 मार्च से तीन हफ्ते की गृहबंदी की घोषणा की है। गृहबंदी के बीच राशन वगैरह की आमद के लिए चार दिनों की ढील दी गई। लेकिन, गृहबंदी की घोषणा के साथ ही खाद्य पदार्थों को जमा कर रखने के लिए लोग बाजारों में टूट पड़े। दोपहर तक किनशासा के सेंट्रल मार्केट में कुछ चीजें मुश्किल से मिल पा रही थीं। किनशासा की रहने वाली मरियम ग्लाबिजे कहती हैं, "मैंने लगभग पूरी मार्केट घूम ली, लेकिन मुझे टॉयलेट पेपर नहीं मिला। पता नहीं आलू भी मिलेगा कि नहीं।" किनशासा निवासी व दिहाड़ी मजदूर मुगोली कमुनानी का कहना है, "हमें गृहबंदी के बारे में पहले आगाह नहीं किया गया था। हम लोग भूखे मर जाएंगे।" सड़क किनारे दुकान लगाने वाले चार्ल्स मुकेंदी म्वेंजेले ने कहा, "हम रोज की कमाई पर जिंदा हैं। दूसरी तरफ यूरोपियन यूनियन अपने नागरिकों को भोजन कराता है, लेकिन कांगो का उससे मतभेद है।"

सेनेगल में लोग एक अलग तरह की समस्या से भी जूझ रहे हैं। सेनेगल के ज्यादातर लोग दिन के पहले भोजन में तपालपा ब्रेड लेते हैं। ये ब्रेड कियोस्क में बिकती थे, लेकिन कोविड-19 की महामारी के चलते सरकार ने कियोस्क में इसकी बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया है। इसकी जगह सीधे बेकरी से ब्रेड खरीदने की अपील की है। कियोस्क में बिक्री पर प्रतिबंध के कारण सोशल डिस्टेंसिंग की अनदेखी करते हुए बेकरियों के बाहर लोगों की भारी भीड़ उमड़ने लगी। 34 वर्षीय मलिक बा पास की एक बेकरी से रोजाना अपने परिवार के लिए ब्रेड खरीदते हैं। उन्होंने कहा कि बेकरी में लोगों की अस्त-व्यस्त भीड़ से उन्हें चिंता होती है। वह बताते हैं, "भीड़ को श्रृंखलाबद्ध नहीं किया जाता है। मुझे डर है कि कुछ लोग बहुत आसानी से कोरोनावायरस के संक्रमण का शिकार हो सकते हैं या संक्रमण फैला सकते हैं।"

महामारी के दौरान और उसके बाद भोजन एक मुद्दा रहेगा। कृषि प्रधान देश रवांडा में प्रतिबंध के चलते किसानों को बहुत मुश्किल हो रही है। अधिकारियों की तरफ से यह कहने के बावजूद कि कृषि कार्यों पर प्रतिबंधों का कोई असर नहीं पड़ेगा, कृषि उत्पाद के डीलर जेरेमी रूहिरवा को फर्टिलाइजर खरीदने में दिक्कत आ रही है। रूहिरवा गसाबो जिले के नतुंगा सेक्टर के गांवों में खेतीबाड़ी में इस्तेमाल होने वाले उत्पादों की बिक्री करते हैं। उन्होंने बताया कि वह थोक विक्रेता से डीएपी नहीं खरीद पा रहे हैं। उन्होंने बताया, "कृषि इनपुट की खरीद के लिए पहले पेमेंट

करना पड़ता है। मैंने बैंक जाकर पेमेंट कर दिया और मोटरसाइकिल से लगभग एक घंटे सफर कर स्टोर तक पहुंचा, लेकिन ऑफिस और स्टोर बंद था। वहां मेरे कुछ साथी मौजूद थे। हम लोगों ने मिलकर स्टोर के कर्मचारी को फोन किया, तो उसने आने में असमर्थता जाहिर की। उसने हमें बताया कि 21 मार्च से बंदी के कारण वाहन नहीं मिल रहे हैं। ऐसे में जिन किसानों को डीएपी की जरूरत है, उन्हें डीएपी नहीं दे पा रहा हूं। इस सूरत में किसान डीएपी की जगह दूसरे फर्टिलाइजर का इस्तेमाल करेंगे। इससे उत्पादन पर असर पड़ेगा।" अर्थव्यवस्था के विश्लेषक टेडी कबेरुका कहते हैं, "ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो गैर-कृषि व्यवसायों से कमाई करते हैं और वही पैसा खेती में लगाते हैं। लेकिन, गैर-कृषि व्यवसाय ठप पड़ा हुआ है। इनमें से ज्यादातर व्यवसाय शहरों में हैं। मगर, इन व्यवसायों से जुड़े लोगों का परिवार गांवों में रहता है और जीवनयापन के लिए इन्हीं व्यवसायों पर निर्भर है।"

अफ्रीका एग्रीकल्चर स्टेटस रिपोर्ट 2018 के मुताबिक, महाद्वीप की आबादी का 70 प्रतिशत हिस्सा खेतीबाड़ी पर निर्भर है। इनमें से बड़े तबके के पास दो हेक्टेयर से कम जमीन है। ये तबका ही बंदी से सबसे अधिक प्रभावित है। न्याबिहु जिले में जमीन के छोटे से टुकड़े पर खेती करने वाले किसान रियोजेने बहानुगिरा ने कहा, "मैं एक स्कूल में पढ़ाता हूं और उसकी कमाई से ही खेती करता हूं। लेकिन स्कूल बंद है। अभी बुआई का सीजन है, लेकिन पूंजी नहीं होने से बीज और फर्टिलाइजर नहीं खरीद नहीं पा रहा हूं।" इम्बरागा फार्मर्स ऑर्गनाइजेशन के महासचिव और किसान जोसेफ गफरांगा ने कहा, "हम लोग खेती में दैनिक मजदूरों की मदद लेते हैं, लेकिन सोशल डिस्टेंसिंग को बरकरार रखने के लिए जरूरत से काफी कम मजदूर लगाने पड़ रहे हैं। इस वजह से बहुत वक्त लग रहा है। दूसरी तरफ, हाल ही में मैं वाहन से सेम की ढुलाई करना चाहता था। मुझे बताया गया कि लॉकडाउन के चलते वाहनों के परिचालन के लिए आदेश लेना होगा। लेकिन, मुझे पता चला कि आदेश लेने की प्रक्रिया काफी लंबी चलती है, इसलिए मैंने इसकी ढुलाई के लिए मजदूरों को लगाया। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाएगी।"

जो इलाके टिड्डी के हमले से प्रभावित रहे हैं, वहां कोविड-19 महामारी के कारण चीजें और भी मुश्किल हो गई हैं। गौरतलब हो कि केन्या में टिड्डी के बारे में पहली जानकारी 28 दिसंबर 2019 में मिली थी, जब टिड्डी दल सोमालिया से सीमा पार कर आ गया था। अब तक ये टिड्डी दल केन्या के 47 में से 26 काउंटी के कृषि उत्पादों को बर्बाद कर चुका है। कृषि, पशुपालन, मंत्रालय और सहकारी के कैबिनेट सेक्रेटरी पीटर मुन्या ने 15 जनवरी को एक मीडिया ब्रीफिंग में कहा कि रेगिस्तानी टिड्डी को नियंत्रित करने के लिए नेशनल ट्रेजरी से मंत्रालय को 530 शिलिंग (सोमालिया की करेंसी) मिली है। उन्होंने कहा, "हम उन क्षेत्रों में ज्यादा फोकस कर रहे हैं, जिन क्षेत्रों में टिड्डी ने अधिक नुकसान पहुंचाया है। प्रभावित क्षेत्रों में हवा से कीटनाशक का छिड़काव किया जा रहा है। हालांकि, मौजूदा कोविड-19 महामारी के कारण इस काम में सुस्ती आई है क्योंकि कीटनाशक व मशीन की पर्याप्त सप्लाई नहीं हो रही है। जब टिड्डी का हमला होता है, तो उनके ठिकाने का पता लगाया जाता है और उसके प्रजनन स्थल पर नजर रखी जाती है। फरवरी में फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेश (एफएओ) ने 600 नेशनल यूथ सर्विसमैन को प्रशिक्षित किया, जिन्हें टिड्डी नियंत्रण अभियान पर लगाया गया। टिड्डी पर काबू

2019 में केन्या की 26 काउंटी में टिड्डी दल का हमला हुआ। अब कोविड-19 के चलते कीटनाशकों का आयात कम होने से किसानों की दिक्कत बढ़ गई है

एएलआईएमए चेतावनी दे रहा है कि बहुत सारे अफ्रीकी देश जहां की स्वास्थ्य व्यवस्था दुनिया के सबसे नाजुक स्वास्थ्य व्यवस्थाओं में शामिल हैं और जहां यूरोप, चीन व अमेरिका के मुकाबले बेहद कम संसाधन उपलब्ध हैं, वहां तबाही संभावित है

करने के केन्या सरकार के उपायों को और मजबूत करने की योजना थी। इसके तहत प्रशिक्षितों में से 30 को दोबारा प्रशिक्षित किया जाना था, जो प्रभावित देशों की 900 स्थानीय टीमों को प्रशिक्षित करते। ये टीम ग्राउंड पर जाकर निगरानी और टिड्डियों की गतिविधियों को नियंत्रित करती है। ये टीम टिड्डी पर नियंत्रण करने के लिए डेटा उपलब्ध कराने में भी अहम भूमिका निभाएगी। लॉकडाउन से किसानों को भी नुकसान हो रहा है क्योंकि वे अपना उत्पाद नहीं बेच पा रहे हैं। कृषि मंत्रालय से मिले आंकड़ों के मुताबिक, सब्जी और फल बाजार में व्यापारिक गतिविधियां कम हो रही हैं, क्योंकि निर्यातक अपनी क्षमता का महज 25-30 प्रतिशत माल ही खरीद रहे हैं। जिन किसानों से माल खेत में खरीद लिया जाता था, उनके खेतों से अभी माल नहीं उठाया जा रहा है। इससे किसानों को क्षति हो रही है। केन्या से फूलों का निर्यात यूरोपीय देशों में होता है, लेकिन यूरोप में लॉकडाउन के कारण पिछले महीने केन्या के फूल किसानों की कमाई में 70 प्रतिशत का नुकसान हो चुका है।

महामारी से मुकाबले की तैयारी

ऐसा पहली बार नहीं है कि अफ्रीकी देशों में महामारी फैली है। कुछ हद तक महामारी के फैलाव को देखते हुए यहां इस बीमारी से लड़ने के लिए बेहतर तैयारी है। डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो में हाल में इबोला का एक भी केस सामने नहीं आया है और यहां के डॉक्टर समस्या की गंभीरता से बखूबी वाकिफ हैं। कांगो के डॉक्टर और नर्स लाइबेरिया, सिएरा लियोन और गिनी में इबोला की रोकथाम में शामिल थे। यहां जागरुकता संदेश लोगों तक पहुंचाना आसान है क्योंकि लोग हाल ही में इबोला से उभरे हैं। लोग अभी एकजुट हैं। यह बात व्यवहार बदलाव और सामुदायिक सहभागिता के कम्युनिकेशन एक्सपर्ट रोड्रिगेज कसांडो ने कही। उन्होंने आगे बताया, "गृहबंदी और सोशल डिस्टेंसिंग कांगो के लिए नया एहतियाती कदम है और यहां के लोग इबोला से बचाव को लेकर साफ-सफाई के आदी हो गए हैं। ऐसे में सोशल डिस्टेंसिंग पर ज्यादा फोकस की जरूरत है। इसके साथ ही साफ-सफाई के उपायों पर भी जोर दिया जाना चाहिए क्योंकि कोविड-19 का संक्रमण हवा के जरिए होता है। इबोला के मामले में ऐसा नहीं था।" कसांदो कहते हैं, "इबोला से मुकाबले में खर्च का हमारा अनुभव बताता है कि कोविड-19 से निबटने के लिए आकस्मिक प्लान के तहत दिए जा रहे 135 मिलियन यूएस डॉलर में जागरुकता की जरूरत, सुरक्षात्मक और स्क्रीनिंग उपकरणों की खरीद, दवाओं की खरीद और कर्मचारियों के भुगतान खर्च नहीं किया जा सकता है। कसांदो ने मशविरा दिया है कि कांगो की सरकार को चाहिए कि वह आधारभूत ढांचा मजबूत करने और सहायक उपकरण खरीदने के लिए जरूरी आर्थिक मदद लेने में सहयोगी देशों और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों की मदद ले क्योंकि मौजूदा आर्थिक मदद अपर्याप्त है।

एएलआईएमए (द अलायंस फॉर इंटरनेशनल मेडिकल एक्शन) ने संक्रामक रोग के संदिग्ध और पुष्ट मामलों की जांच व परीक्षण में फन्न यूनिवर्सिटी अस्पताल की संक्रामक रोग इकाई को सहयोग करने के लिए इंस्टीट्यूट पास्चर ऑफ डकर के साथ समझौता किया है। इस संस्थान ने अफ्रीका में स्वास्थ्य विशेषज्ञों, दवाओं और जरूरी मेडिकल आपूर्ति कराने को कहा है। संगठन चेतावनी दे रहा है कि बहुत सारे अफ्रीकी देश जहां की स्वास्थ्य व्यवस्था दुनिया के सबसे नाजुक स्वास्थ्य व्यवस्थाओं में शामिल हैं और जहां यूरोप, चीन व अमेरिका के मुकाबले बेहद कम संसाधन उपलब्ध हैं, उन देशों में तबाही संभावित है। संगठन के एग्जिक्यूटिव डायरेक्टर आगस्टीन आगियर ने कहा, "सब-सहारन अफ्रीका में स्वास्थ्य सिस्टम पहले से ही बेहद नाजुक है। ऐसे में इन क्षेत्रों में महामारी के फैलाव से दुनिया के बाकी हिस्सों के मुकाबले मृत्यु दर ज्यादा होगी।" आगियर कहते हैं, "चूंकि मानव संसाधन और भौतिक संसाधन मसलन हॉस्पिटलाइजेशन और बेड अपर्याप्त हैं, इसलिए यहां कोविड-19 से संबंधित मृत्यु बाकी दुनिया के मुकाबले 3-5 गुना ज्यादा होगी।" उन्होंने कहा कि अफ्रीकी देशों ने अब तक जो निवारक कदम उठाए हैं, वे वैध व स्वागतयोग्य हैं। हालांकि, इनमें से कुछ कदम मानवीय कर्मियों के संचलन और सामान की डिलीवरी से संबंधित हैं। ये कदम मानवीय मदद के लिहाज से आवश्यक हैं क्योंकि जब कोविड -19 से लड़ने की जरूरत बढ़ेगी, तो ऐसा करना असंभव होगा। दक्षिण अफ्रीका भी अपने पूर्व के अनुभवों से सीख रहा है। स्टेलेनबोस्च विश्वविद्यालय से जुड़े जनस्वास्थ्य विशेषज्ञ और वेस्टर्न केप प्रोविंस आउटब्रेक रिस्पांस टीम के सदस्य केरिन बेग ने खुलासा किया कि देश के सभी 9 प्रांतों की आउटब्रेक रिस्पॉन्स टीम मेडिकल स्टाफ को वायरस के फैलाव को रोकने व वेंटिलेटर तथा अन्य उपकरणों को किटाणुरहित करने के लिए आपातकालीन ट्रेनिंग दे रही है।

ट्यूबरकुलोसिस (टीबी) भी हवावाहित और खांसते या छींकते वक्त निकलने वाली तरल बूंदों से फैलता है। अफ्रीका के पास टीबी से निबटने में मिली सीख भी है। बेग विस्तार से बताते हैं, "दक्षिण अफ्रीका के टीबी अस्पतालों में या बहुत सारे टीबी मरीजों के साथ काम करने वाले स्टाफ इस संकट से निबटने में संभवत: सबसे ज्यादा सक्षम होंगे। वे मास्क पहनना, नियमित हाथ धोना, कमरों में हवा की मौजूदगी सुनिश्चित करने और मरीजों को आइसोलेट करने की जरूरत के बारे में जानते हैं। वे ये भी जानते हैं कि पर्सनल प्रोटेक्टिव क्लोथिंग (पीपीसी) को कैसे निकाला और सुरक्षित ठिकाने लगाया जाता है। वे जानते हैं कि किसी नए मरीज को लगाने से पहले वेंटिलेटर की पूरी सफाई क्यों जरूरी है।" डरबन में अफ्रीका स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान के सब-सहारन अफ्रीकन नेटवर्क फॉर टीबी/एचआईवी रिसर्च एक्सिलेंस (एसएएनटीएचई) के प्रोग्राम एग्जिक्यूटिव मैनेजर वायरोलॉजिस्ट डेनिस चोपेरा ने कहा, "रणनीतिक तौर पर हमारी सरकार की तारीफ की जानी चाहिए, क्योंकि हमने जो रुख अपनाया है, वह इंग्लैंड और अमेरिका जैसे देशों के शुरुआती चरणों से अधिक मजबूत है।" उन्होंने नब्बे के दशक के शुरुआती दिनों को याद करते हुए कहा, "साल 1980 में जब दक्षिण अफ्रीका में एचआईवी के मामले आने शुरू हुए, तो बहुत सक्रियता नहीं थी क्योंकि उस वक्त नेतृत्व कमजोर था और कुछ अलग मान्यताएं थीं। हम लोगों ने लंबे समय तक कुछ भी नहीं किया। लेकिन, जब हमने पुरजोर तरीके से निबटना शुरू किया, तब तक बहुत देर हो चुकी थी।"

उन्हें उम्मीद है कि किए गए मजबूत उपाय और इसके साथ गर्म जलवायु व युवा आबादी जैसे कारक मददगार होंगे और इस महामारी के जरिए दुनिया दक्षिण अफ्रीका की तैयारी की हकीकत देखेगी। चोपेरा ने कहा, "हमने पूर्व के कठिन अनुभवों से सीखा कि वायरस को नियंत्रित करने के लिए हमें सामने रहकर लड़ाई लड़नी होगी। कठोर उपायों पर होने वाला खर्च अर्थव्यवस्था की कीमत पर ही क्यों न हो, वह कुछ नहीं करने की कीमत से कम ही होती है।"

कैसी होगी कोविड-19 के बाद दुनिया?

हमारे चार संभावित भविष्य हैं– बर्बरता की अवस्था में पहुंचना, मजबूत पूंजीवादी राज्य, कट्टरपंथी समाजवादी राज्य या फिर आपसी सहयोग की नींव पर बने एक बड़े समाज में परिवर्तन

सिमोन मेयर

अब से छह महीने, एक साल या दस साल बाद हम कहां होंगे? मैं रातों को जागकर सोचा करता हूं कि मेरे प्रियजनों भविष्य क्या होगा? मेरे संवेदनशील दोस्तों और रिश्तेदारों के लिए भविष्य में क्या रखा है? हालांकि मैं बहुतों से भाग्यशाली हूं। मुझे अच्छा बीमारी भत्ता मिलता है और मैं ऑफिस आए बगैर भी काम कर सकता हूं, फिर भी मैं सोचता हूं कि मेरी नौकरी का क्या होगा? यह मैं इंग्लैंड से लिख रहा हूं, जहां मेरे कई स्व-नियोजित मित्रों के सिर पर मासिक आय रुक जाने की तलवार लटक रही है। कई दोस्तों की नौकरी पहले ही जा चुकी है। जिस अनुबंध के तहत मेरे 80 प्रतिशत वेतन का भुगतान होता था, वह दिसंबर में समाप्त हो गया। कोरोनावायरस अर्थव्यवस्था को बुरी तरह से तबाह कर रहा है। जब मुझे काम की जरूरत होगी तो क्या कोई मुझे काम पर रखेगा?

भविष्य की कई आशंकाएं हैं और सभी इस बात पर निर्भर करती हैं कि सरकारें और समाज कोरोनावायरस और उसके आर्थिक परिणाम से किस प्रकार निपटते हैं। उम्मीद है कि हम इस संकट का उपयोग पुनर्निर्माण के लिए करेंगे, कुछ बेहतर और अधिक मानवीय उत्पादन करेंगे। हालांकि, इसके बदतर होने की भी पूरी आशंका है। मुझे लगता है कि अन्य संकटों के दौरान राजनीतिक अर्थव्यवस्था को देखकर हम हमारी स्थिति और हमारे भविष्य का अंदाजा लगा सकते हैं। मेरा शोध आधुनिक अर्थव्यवस्था के मूल सिद्धांतों यानी वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला, मजदूरी और उत्पादकता पर केंद्रित है। मैं जलवायु परिवर्तन और श्रमिकों के खराब मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य जैसी चुनौतियों को लेकर इकोनॉमिक डायनामिक्स के योगदान की तरफ ध्यान दे रहा हूं। मेरा मानना है कि अगर हमें सामाजिक रूप से उचित और पारिस्थितिक रूप से स्वस्थ भविष्य का निर्माण करना है तो हमें एक बहुत ही अलग तरह के अर्थशास्त्र की आवश्यकता है। यह बात कोविड-19 से पहले कभी भी इतनी स्पष्ट नहीं रही। कोविड-19 महामारी के खिलाफ प्रतिक्रियाएं केवल उस शक्ति का विस्तार हैं, जो अन्य सामाजिक और पारिस्थितिक संकटों को बढ़ाती हैं। यानी एक प्रकार के मूल्य को अन्य पर प्राथमिकता देना। इस शक्ति ने कोविड-19 के प्रति वैश्विक प्रतिक्रियाओं नियंत्रित करने में एक बड़ी भूमिका निभाई है। इस हाल में जिस तरह वायरस के खिलाफ प्रतिक्रियाएं बढ़ रही हैं, हमारे आर्थिक भविष्य का विकास कैसे हो सकता है? आर्थिक दृष्टिकोण से, हमारे चार संभावित भविष्य हैं- बर्बरता की अवस्था में पहुंचना, मजबूत पूंजीवादी राज्य, कट्टरपंथी समाजवादी राज्य और एक बड़े समाज में परिवर्तन, जिसकी नींव पारस्परिक सहायता पर टिकी हो। इन सभी भविष्यों के संस्करण भले ही वांछनीय न हों, लेकिन बखूबी मुमकिन है।

छोटे बदलावों से बात नहीं बनेगी

जलवायु परिवर्तन की तरह ही कोरोनावायरस आंशिक रूप से हमारी आर्थिक संरचना की समस्या है। हालांकि दोनों "पर्यावरणीय" या "प्राकृतिक" समस्याएं प्रतीत होती हैं, लेकिन ये सामाजिक रूप से संचालित हैं।

हां, गर्मी को अवशोषित करने वाली कुछ गैसों के कारण जलवायु परिवर्तन होता है, लेकिन यह बहुत ही सतही व्याख्या है। जलवायु परिवर्तन को वास्तव में समझने के लिए हमें उन सामाजिक कारणों को समझना होगा जिनकी वजह से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता रहता है। ऐसा ही कोविड-19 के साथ भी है। हां, इसकी सीधी वजह वायरस है, लेकिन इसके प्रभावों के प्रबंधन के लिए हमें मानवीय व्यवहार और इसके व्यापक आर्थिक संदर्भ को समझना होगा।

यदि आप गैरजरूरी आर्थिक गतिविधि को कम करते हैं तो कोविड-19 और जलवायु परिवर्तन, दोनों से निपटना बहुत आसान है। जलवायु परिवर्तन

भविष्य की कई आशंकाएं हैं और सभी इस बात पर निर्भर करती हैं कि सरकारें और समाज कोरोनावायरस और उसके आर्थिक परिणाम से किस प्रकार निपटते हैं। उम्मीद है कि हम इस संकट का उपयोग पुनर्निर्माण के लिए करेंगे

के संदर्भ में यह इसलिए जरूरी है क्योंकि यदि आप कम सामान का उत्पादन करते हैं, तो आप कम ऊर्जा का उपयोग करते हैं और कम ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं। कोविड-19 का महामारी-विज्ञान तेजी से विकसित हो रहा है, लेकिन मूल तर्क पिछले संदर्भ जैसा ही सरल है। लोग मिलते-जुलते हैं और संक्रमण फैलाते हैं। यह घरों में, कार्यस्थलों पर और लोगों द्वारा की जाने वाली यात्राओं में फैलता है। इस मिलने-जुलने को कम करने से व्यक्ति-से-व्यक्ति संक्रमण के कम होने और कुल मिलाकर कम मामलों के सामने आने की संभावना बनती है। अन्य नियंत्रण रणनीतियों के साथ ही साथ लोगों के बीच संपर्क कम कर देने से भी मदद मिलती है। संक्रामक बीमारी के प्रकोप के लिए कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग और आइसोलेशन एक सामान्य नियंत्रण रणनीति है, जिसके तहत एक संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में आए लोगों की पहचान की जाती है और फिर आगे बीमारी फैलने से रोकने के लिए उन्हें अलग कर दिया जाता है। यह तब सबसे प्रभावी होता है जब आप संपर्कों का प्रतिशत उच्च होने का पता लगाते हैं। किसी व्यक्ति का जितना कम संपर्क रहा होगा, उतना ही कम आपको उस उच्च प्रतिशत को पाने के लिए ट्रेस करना होगा।

हम वुहान के उदाहरण से देख सकते हैं कि इस तरह की सामाजिक दूरी और लॉकडाउन प्रभावी उपाय हैं। राजनीतिक अर्थव्यवस्था हमें यह समझने में मदद कर सकती है कि इन उपायों को पहले यूरोपीय देशों और यूएस में क्यों नहीं लागू किया गया।

एक कमजोर अर्थव्यवस्था

लॉकडाउन से वैश्विक अर्थव्यवस्था पर एक दबाव बन रहा है। हमारा सामना एक गंभीर मंदी से है। इस दबाव की वजह से कुछ वैश्विक नेताओं को लॉकडाउन के उपायों में ढील देने का आह्वान करना पड़ा। यहां जबकि 19 देशों में लॉकडाउन की स्थिति थी, अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प और ब्राजील के राष्ट्रपति जैर बोल्सोनारो ने राहत कार्यों को वापस लेने की बात की। ट्रम्प ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था को 3 सप्ताह में सामान्य रूप में लौटा लाने का आह्वान किया (हालांकि उन्होंने अब स्वीकार किया है कि सामाजिक दूरी को लंबे समय तक बनाए रखने की आवश्यकता होगी)। बोल्सनारो ने कहा, "हमारे जीवन को आगे बढ़ना है, नौकरियों को बचाया जाना चाहिए... हमें सामान्य जीवन में वापस लौट आना चाहिए।"

इसी बीच यूके में तीन सप्ताह का लॉकडाउन लगाने से 4 दिन पहले, प्रधानमंत्री बोरिस जॉनसन काफी कम आशावान दिखे। उनका कहना था कि यूके 12 हफ्तों के अंदर स्थिति संभालने में कामयाब हो सकता है। फिर भी भले ही जॉनसन सही हों, बात यह है कि हमारी आर्थिक प्रणाली ऐसी है जिसे महामारी के एक संकेत से भी भरभरा कर गिर जाने का खतरा होगा।

पतन का अर्थशास्त्र काफी सीधा है। व्यवसाय लाभ कमाने के लिए होता है। अगर वे उत्पादन नहीं कर सकते तो वे चीजें नहीं बेच सकते। इसका मतलब है कि वे लाभ नहीं कमा सकते हैं, जिसका सीधा अर्थ है कि वे आपको

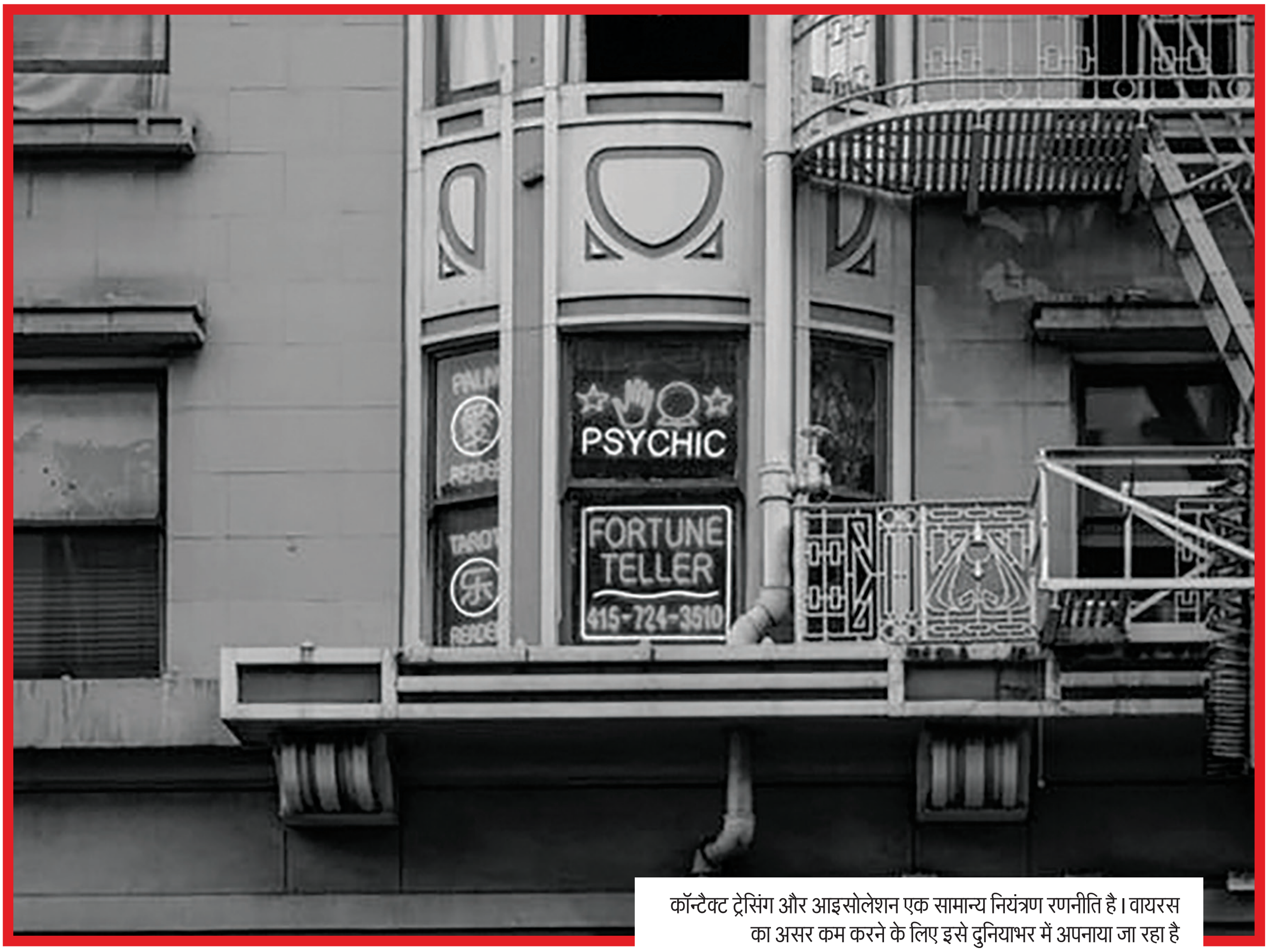

कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग और आइसोलेशन एक सामान्य नियंत्रण रणनीति है। वायरस का असर कम करने के लिए इसे दुनियाभर में अपनाया जा रहा है

रोजगार देने में भी कम सक्षम हैं। व्यवसाय (थोड़े अंतराल पर) उन श्रमिकों को रख सकते हैं और रखते भी हैं, जिनकी उन्हें तुरंत आवश्यकता नहीं है। वे अर्थव्यवस्था के फिर से सामान्य होने के स्थिति में मांग को पूरा करने में सक्षम होना चाहते हैं, लेकिन अगर चीजें वास्तव में बुरी होने लगेंगी तो वे ऐसा नहीं कर पाएंगे। इसलिए, कई सारे लोग अपनी नौकरी खो देते हैं या अपनी नौकरी खोने के डर में जीने लगते हैं। फिर वे कम खरीदारी करते हैं। फिर पूरा चक्र वापस शुरू होता है और हम आर्थिक गिरावट के घुमाव में फंस जाते हैं।

एक सामान्य संकटकाल में इसे हल करने का एक सरल नुस्खा है। सरकार खर्च करती है और तब तक खर्च करती है जब तक लोग उपभोग करना और फिर से काम करना शुरू नहीं करते। यह वो नुस्खा है जिसके लिए जॉन मेनार्ड कीन्स प्रसिद्ध हैं।

लेकिन सामान्य हस्तक्षेप यहां काम नहीं करेंगे क्योंकि हम नहीं चाहते कि अर्थव्यवस्था ठीक हो जाए (कम से कम तुरंत तो नहीं)। लॉकडाउन का एकमात्र मकसद लोगों को काम पर जाने से रोकना है, जहां वे बीमारी फैलाते हैं। एक हालिया अध्ययन के अनुसार वुहान में लॉकडाउन की कार्रवाई (कार्यस्थल बंद होने सहित) को इतनी जल्दी हटा देने की वजह से 2020 के बाद के महीनों में चीन इन मामलों को दोबारा तेजी से बढ़ते देखेगा।

जैसा कि अर्थशास्त्री जेम्स मीडवे ने लिखा है, कोविड-19 की सही प्रतिक्रिया बड़े पैमाने पर उत्पादन के साथ एक युद्धकालीन अर्थव्यवस्था नहीं है, बल्कि हमें एक युद्ध-विरोधी अर्थव्यवस्था और उत्पादन को बड़े पैमाने पर वापस शुरू करने की आवश्यकता है। अगर हम भविष्य में महामारी के लिए (और कठोर से कठोर जलवायु परिवर्तन से बचने के लिए) अधिक तैयार होना चाहते हैं, तो हमें एक ऐसी प्रणाली की आवश्यकता है जो उत्पादन को इस तरह से वापस लाने में सक्षम हो, जिससे आजीविका का नुकसान न होता हो।

तो, जो हमें चाहिए वह है एक अलग आर्थिक मानसिकता। हम अर्थव्यवस्था को चीजें, खासकर उपभोक्ता वस्तुएं, खरीदने और बेचने का माध्यम समझते हैं। लेकिन अर्थव्यवस्था न तो ये होती है और न ही इसे ऐसा होना चाहिए। मूलरूप से अर्थव्यवस्था वह तरीका है जिसके तहत हम अपने संसाधनों को उन चीजों में बदल देते हैं, जिनकी जरूरत हमें जीने के लिए होती है। इस तरह से देखने पर हमें एक अलग तरीके की जिंदगी जीने के अधिक अवसर दिख सकते हैं, जिसमें अपनी तकलीफें बढ़ाए बिना हम कम उत्पादन कर सकते हैं।

मैं और अन्य पारिस्थितिक अर्थशास्त्री लंबे समय से इस सवाल से जुड़े रहे हैं कि आप सामाजिक रूप से उचित तरीके से कम उत्पादन कैसे करते हैं, क्योंकि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए भी कम उत्पादन की चुनौती अत्यंत महत्वपूर्ण है। अगर अन्य बातें पूर्ववत रहें तो जितना अधिक हम उत्पादन करेंगे उतना ही अधिक ग्रीनहाउस गैस भी उत्सर्जित करेंगे। फिर आप लोगों को काम पर रखते हुए आपके द्वारा बनाए गए सामान की मात्रा को कैसे कम करते हैं?

बेल्जियम और नीदरलैंड में फूड डिलीवरी समूह डिलीवरू में काम करने वाले युवा काम के हालात से संतुष्ट नहीं हैं। इसी के विरोध में वे प्रदर्शन कर रहे हैं

स्पष्ट हो रहा है कि बाजारों के बारे में हमारी धारणाएं कितनी झूठी हैं। दुनियाभर में सरकारों को डर है कि महत्वपूर्ण कार्यतंत्र- आपूर्ति श्रृंखला, सामाजिक देखभाल और मुख्य रूप से स्वास्थ्य देखभाल बाधित या अतिभारित होंगे

प्रस्तावों में कार्य सप्ताह की लंबाई को कम करना शामिल है, या जैसा कि मैंने मेरे हाल के कुछ कार्यों से समझा। आप लोगों को धीमी गति और कम दबाव के साथ काम करने दे सकते हैं। इनमें से कोई भी सीधे तौर पर कोविड-19 पर लागू नहीं होता है, जहां उद्देश्य आउटपुट की बजाय संपर्क को कम करना है, लेकिन प्रस्तावों के मूल में एक ही बात है। आपको लोगों की जीने के लिए मजदूरी पर निर्भरता कम करनी होगी।

यह अर्थव्यवस्था किसलिए है?

कोविड-19 की प्रतिक्रियाओं को समझने का आधार यही एक प्रश्न है कि अर्थव्यवस्था क्या है। वर्तमान में वैश्विक अर्थव्यवस्था का प्राथमिक उद्देश्य धन के आदान-प्रदान को सुविधाजनक बनाना है। इसे अर्थशास्त्री एक्सचेंज वैल्यू कहते हैं।

हम जिस में रहते हैं, उस मौजूदा प्रणाली का प्रमुख विचार यह है कि विनिमय मूल्य उपयोग-मूल्य के समान ही है। मूलरूप से, लोग उन चीजों पर पैसा खर्च करेंगे जिन्हें वो पाना चाहते हैं या जिनकी उन्हें जरूरत है और उनके पैसे खर्च करने का तरीका हमें इस बारे में बताता है कि वे इसके उपयोग को कितना महत्व देते हैं। यही कारण है कि बाजारों को समाज को चलाने के सर्वोत्तम तरीके के रूप में देखा जाता है। वे आपको अनुकूल होने देते हैं और उपयोग-मूल्य के साथ उत्पादन क्षमता से मेल खाने के लिए पर्याप्त लचीले होते हैं।

कोविड-19 के कारण जो स्पष्ट हो रहा है वह यह है कि बाजारों के बारे में हमारी धारणाएं कितनी झूठी हैं। दुनियाभर में सरकारों को डर है कि महत्वपूर्ण कार्यतंत्र- आपूर्ति श्रृंखला, सामाजिक देखभाल और मुख्य रूप से स्वास्थ्य देखभाल बाधित या अतिभारित होंगे। इसमें बहुत से कारकों का योगदान है, लेकिन हम 2 की ही बात करते हैं।

सबसे पहली बात, कई सारे सबसे आवश्यक सामाजिक सेवाओं से पैसा कमा पाना काफी कठिन काम है। ऐसा कुछ हद तक है, क्योंकि मुनाफे का एक प्रमुख कारक श्रम उत्पादकता वृद्धि है, यानी कम लोगों के साथ अधिक कार्य करना। कई व्यवसायों में लोग लागत का एक बड़ा कारक हैं, विशेष रूप से स्वास्थ्य सेवा जैसे व्यक्तिगत संवाद पर भरोसा करने वाले व्यवसाय। नतीजतन, स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि बाकी अर्थव्यवस्था की तुलना में कम हो जाती है, इसलिए इसकी लागत औसत से अधिक तेजी से बढ़ती है।

दूसरी बात, कई महत्वपूर्ण सेवाओं में नौकरियां वैसी नहीं हैं, जिसका मूल्य समाज में सबसे अधिक हो। कई बेहतरीन भुगतान वाली नौकरियां तो सिर्फ विनिमय की सुविधा देने, पैसा बनाने के लिए हैं। वे समाज के लिए कोई व्यापक उद्देश्य नहीं रखती। वे वही हैं जिन्हें मानवविज्ञानी डेविड ग्रेबर बकवास नौकरियां कहते हैं। इसके बावजूद हमारे पास बहुत सारे सलाहकार हैं, एक बड़ा विज्ञापन उद्योग है और एक विशाल वित्तीय क्षेत्र है क्योंकि वे अधिक पैसा बनाते हैं। इस दौरान, हमारे यहां स्वास्थ्य और सामाजिक देखभाल का एक संकटकाल चल रहा है, जहां अक्सर लोगों को उन उपयोगी नौकरियों को छोड़ना पड़ता है जिन्हें वो पसंद करते हैं क्योंकि इन नौकरियों से उन्हें जीने के लिए पर्याप्त भुगतान नहीं मिलता।

बेकार की नौकरियां

चूंकि इतने सारे लोग व्यर्थ के काम करते हैं, आंशिक रूप से इसीलिए हम कोविड-19 का जवाब देने के लिए इतने तैयार नहीं हैं। महामारी ने इस बात को उजागर कर दिया है कि कई नौकरियां आवश्यक नहीं हैं, इसके बावजूद जब चीजें गलत होने लग जाती हैं, तब संभालने के लिए पर्याप्त मात्रा में महत्वपूर्ण कर्मचारियों की कमी रहती है।

लोग व्यर्थ के काम करने के लिए मजबूर हैं क्योंकि ऐसे समाज में जहां विनिमय मूल्य अर्थव्यवस्था का मार्गदर्शक सिद्धांत है, जीवन की बुनियादी जरूरतें मुख्य रूप से बाजारों के माध्यम से उपलब्ध होती हैं। इसका मतलब है कि आपको उन्हें खरीदना होगा और उन्हें खरीदने के लिए आपको एक आय की आवश्यकता होगी, जो नौकरी से आती है।

इस सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि हम कोविड-19 प्रकोप पर जो सबसे अधिक तीव्र (और प्रभावी) प्रतिक्रियाएं देख रहे हैं, वे बाजारों के प्रभुत्व और विनिमय मूल्य को चुनौती देते हैं। दुनियाभर में सरकारें ऐसी कार्रवाई कर रही हैं जो तीन महीने पहले असंभव दिखती थीं। स्पेन में निजी अस्पतालों का राष्ट्रीयकरण किया गया है। यूके में परिवहन के विभिन्न साधनों के राष्ट्रीयकरण की संभावना बहुत वास्तविक हो गई है। और फ्रांस ने बड़े व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण की इच्छा जताई है।

इसी तरह, हम श्रम बाजारों का टूटना देख रहे हैं। डेनमार्क और यूके जैसे देश लोगों को भुगतान दे रहे हैं ताकि उन्हें काम पर जाने से रोका जा सके। यह एक सफल लॉकडाउन का एक अनिवार्य हिस्सा है। ये उपाय पूर्णरूप से दोष रहित नहीं हैं, बहरहाल यह उस सिद्धांत में एक बदलाव है जिसके तहत लोगों को अपनी आय अर्जित करने के लिए काम करना पड़ता है और इस विचार की ओर एक कदम है कि लोग काम न कर सकने के बावजूद जीवन जीने के लिए सक्षम होने के पात्र हैं।

यह पिछले 40 वर्षों के प्रमुख रुझानों को उलट देता है। समय के साथ, बाजारों और विनिमय मूल्यों को एक अर्थव्यवस्था को चलाने के सर्वोत्तम तरीके के रूप में स्थापित किया गया है। नतीजतन, सार्वजनिक सेवाओं पर बाजारीकरण और उन्हें पैसा बनाने वाले व्यवसाय की तरह चलाने का दबाव बढ़ गया है। इसी तरह, श्रमिक बाजार के ज्यादा से ज्यादा संपर्क में आ गए हैं। जीरो आवर अनुबंध और गिग अर्थव्यवस्था ने बाजार के उतार-चढ़ाव से सुरक्षा की वह परत हटा दी है, जो एक दीर्घकालिक, स्थिर, रोजगार से मिलती थी। स्वास्थ्य सेवा और श्रम सामग्रियों को बाजार से बाहर निकालकर राज्य के हाथों में सौंपते हुए कोविड-19 महामारी इस प्रवृत्ति को पलटती हुई दिखती है। राज्य कई कारणों से उत्पादन करते हैं। कुछ अच्छे कारण होते हैं और कुछ बुरे। लेकिन बाजारों के विपरीत, उन्हें सिर्फ विनिमय मूल्य के लिए उत्पादन नहीं करना पड़ता।

महामारी के चरम पर पहुंचने के बाद सरकारें हालात को फिर से सामान्य बनाने की दिशा में कदम उठाती हैं। ऐसे में मितव्ययिता के चलते मुश्किल आर्थिक परिस्थितियों के पैदा होने की संभावना होती है। यह विनाशकारी साबित होगा

ये बदलाव मुझे उम्मीद देते हैं। वे हमें कई लोगों की जान बचाने का मौका देते हैं। वे दीर्घकालिक परिवर्तन की संभावना का भी संकेत देते हैं जो हमें खुश करता है और जलवायु परिवर्तन से निपटने में हमारी मदद करता है, लेकिन हमें यहां पहुंचने में इतना समय क्यों लगा? कई सारे देश उत्पादन को धीमा करने के लिए इतने कम तैयार क्यों थे? इसका जवाब विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक हालिया रिपोर्ट में निहित है जो कहती है कि उनकी मानसिकता सही नहीं थी।

हमारा आर्थिक प्रबंधन

करीब 40 वर्षों से व्यापक स्तर पर एक आर्थिक सहमति कायम है। इससे राजनेताओं और उनके सलाहकारों की व्यवस्था में कमियों को देखने या उनके विकल्पों के बारे में सोचने की क्षमता सीमित हो गई है। यह मानसिकता एक-दूसरे से जुड़ी दो मान्यताओं से प्रेरित है:

- बाजार वह है जो जीवन को एक अच्छी गुणवत्ता प्रदान करता है, इसलिए इसकी सुरक्षा की जानी चाहिए
- कुछ समय के संकट के बाद बाजार हमेशा सामान्य हो जाएगा

ये विचार कई पश्चिमी देशों के लिए आम हैं। लेकिन, वे यूके और यूएस में सबसे मजबूत हैं, दोनों ही कोविड-19 का जवाब देने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं हैं।

यूके में एक निजी कार्यक्रम में उपस्थित लोगों ने कोविड-19 के प्रति प्रधानमंत्री के सबसे वरिष्ठ सहयोगी के दृष्टिकोण के बारे में संक्षेप में जानकारी दी और कथित तौर पर उनके "हर्ड इम्युनिटी, अर्थव्यवस्था की रक्षा और बुजुर्गों की मौत" संबंधी बयान के बारे में बताया। हालांकि, सरकार से इससे इनकार किया है, लेकिन अगर यह सच है तो भी इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। महामारी की शुरुआत में एक सरकारी कार्यक्रम में एक वरिष्ठ नौकरशाह ने मुझसे कहा, "क्या इसके लिए अर्थव्यवस्था को ध्वस्त कर देना ठीक है? यदि आप जीवन के खजाने का मूल्यांकन करते हैं, तो शायद नहीं।"

इस तरह का नजरिया एक विशेष अभिजात्य वर्ग में व्याप्त है। टेक्सास के एक अधिकारी ने इसे अच्छी तरह से पेश किया, जिसने तर्क दिया कि कई बुजुर्ग लोग आर्थिक मंदी में अमेरिका को डूबते देखने की बजाय खुशी से मरना पसंद करेंगे। यह नजरिया कई कमजोर लोगों को खतरे में डालता है (और सभी कमजोर लोग बुजुर्ग नहीं हैं), और जैसा कि मैंने यहां बताने की कोशिश की है, यह एक गलत विकल्प है।

कोविड-19 संकट की वजह से जो चीजें हो रही हैं, उनमें से एक है आर्थिक कल्पना का विस्तार। सरकारें और नागरिक ऐसे कदम उठा रहे हैं, जो 3 महीने पहले असंभव लगते थे। दुनिया कैसे काम करती है, इस बारे में हमारे विचार तेजी से बदल सकते हैं। आइए हम देखें कि यह फिर से कल्पना हमें कहां ले जा सकती है।

चार भविष्य

भविष्य के बारे में जानने के लिए हमारी मदद करने के लिए मैं भविष्य विज्ञान की एक तकनीक का इस्तेमाल करने जा रहा हूं। आप ऐसे दो कारकों को चुनिए, जिनके बारे में आपको लगता है कि वे भविष्य के निर्धारण में अहम भूमिका निभाएंगे।

और, अब कल्पना करिए कि उन दो कारकों के विभिन्न संयोजनों का क्या परिणाम निकलेगा। मैं जिन कारकों को लेना चाहता हूं, वे मूल्य और केंद्रीकरण हैं। मूल्य से आशय हमारी अर्थव्यवस्था के मार्गदर्शक सिद्धांत से है। क्या हम अपने संसाधनों का उपयोग विनिमय और धन को बढ़ाने के लिए करते हैं या अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए? केंद्रीकरण से आशय तरीकों से है, जिनसे चीजें व्यवस्थित होती हैं, चाहे वे बहुत सारी छोटी इकाइयों के जरिए हों या फिर किसी प्रभावशाली शक्ति के जरिए। हम इन कारकों को एक ग्रिड में व्यवस्थित कर सकते हैं, तब ये परिदृश्यों में रच-बस सकते हैं। इस तरह से अब हम सोच सकते हैं कि 4 चरम संयोजनों के साथ अगर हम कोरोनावायरस का मुकाबला करने की कोशिश करें, तो क्या हो सकता है:

1) राज्य पूंजीवादः केंद्रीकृत प्रतिक्रिया, विनिमय मूल्य को प्राथमिकता
2) बर्बरताः विनिमय मूल्य को प्राथमिकता देने वाली विकेंद्रीकृत प्रतिक्रिया
3) राज्य समाजवादः केंद्रीकृत प्रतिक्रिया, जीवन की सुरक्षा को प्राथमिकता
4) पारस्परिक सहायताः जीवन की सुरक्षा को प्राथमिकता देते हुए विकेंद्रीकृत प्रतिक्रिया।

राज्य पूंजीवाद

फिलहाल हम दुनियाभर में प्रमुख तौर पर राज्य की पूंजीवादी प्रतिक्रिया देख रहे हैं। यूके, स्पेन और डेनामर्क इसके विशिष्ट उदाहरण हैं। राज्य-पूंजीवादी समाज अर्थव्यवस्था के मार्गदर्शक प्रकाश के तौर पर विनिमय मूल्य का अनुसरण करना जारी रखता है। लेकिन, इसके साथ ही यह भी मानता है कि संकट के समय बाजारों को राज्य की सहायता की आवश्यकता होती है। मान लीजिए कि कई श्रमिक काम नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वे बीमार हैं, और उनको जीवन को लेकर डर सता रहा है, तब ऐसे में राज्य बड़े पैमाने पर कल्याणकारी कदम उठाएगा। इसके साथ ही यह क्रेडिट का विस्तार और व्यवसायों को सीधे भुगतान करके बड़े पैमाने पर कीन्सवादी नीतियों को लागू करेगा।

यहां ऐसी उम्मीद है कि यह सब कुछ वक्त के लिए होगा। उठाए जा रहे कदमों का प्राथमिक काम अधिक से अधिक व्यवसायों को व्यापार चालू रखने की अनुमति देने का होगा। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में अब भी बाजारों के जरिए भोजन वितरित किया जा रहा है (हालांकि, सरकार ने प्रतिस्पर्धा कानूनों में ढील दी है)। जहां श्रमिकों को सीधे तौर पर मदद दी जा रही है, वहां इसके लिए वैसे तौर-तरीके अपनाए जा रहे हैं, जिनसे सामान्य श्रम बाजारों के कामकाज में व्यवधान कम हो। उदाहरण के तौर पर यूके में श्रमिकों के भुगतान के लिए नियोक्ताओं को आवेदन करना होगा और फिर उन्हें ही वितरित भी करना होगा। भुगतान की राशि उस विनिमय मूल्य के आधार पर दी जाती है, जिसे एक श्रमिक आमतौर पर बाजार में सृजित करता है, न कि उसके काम

की उपयोगिता के आधार पर।

क्या यह एक सफल परिदृश्य हो सकता है? संभवतः लेकिन यह तभी हो सकेगा जब कोविड-19 छोटी अवधि तक नियंत्रित साबित हो। चूंकि बाजार में कामकाज को बनाए रखने के लिए पूर्ण लॉकडाउन से बचा जाता है, इसलिए संक्रमण का फैलाव अभी भी जारी रहने की संभावना बनी रहती है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में गैर-आवश्यक निर्माण अभी भी जारी है, जिससे निर्माण स्थलों पर श्रमिक एक-दूसरे से मिल रहे हैं। लेकिन अगर मरने वालों की तादाद बढ़ती है तो राज्य के लिए सीमित हस्तक्षेप को कायम रखना कठिन हो जाएगा। बढ़ी हुई बीमारी और मौतें आर्थिक अशांति को भड़काएंगी और उनका गहरा आर्थिक प्रभाव पड़ेगा और बाजार में कामकाज जारी रखने के लिए राज्य कठोर से कठोर कार्रवाई करने के लिए मजबूर होगा।

बर्बर अवस्था

यह सबसे अस्पष्ट परिदृश्य है। अगर हम अपने मार्गदर्शक सिद्धांत के तौर पर विनिमय मूल्य पर भरोसा करना जारी रखते हैं और फिर उन लोगों की मदद करने से इनकार करते हैं, जिनके लिए बीमारी या बेरोजगारी के चलते बाजार के रास्ते बंद हो गए हैं, तब ऐसी परिस्थिति में बर्बरता ही भविष्य है। यह एक ऐसी स्थिति का वर्णन करता है जिसे हमने अभी तक नहीं देखा है।

व्यवसाय विफल हो जाते हैं और श्रमिक भूखे रह जाते हैं, क्योंकि बाजार की कठोर वास्तविकताओं से उन्हें बचाने के लिए कोई तंत्र मौजूद नहीं होता है। अस्पतालों को असाधारण साधनों के जरिए मदद मुहैया नहीं होती और इसलिए उनकी व्यवस्था चौपट हो जाती है। लोग मर जाते हैं। बर्बरता अंततः एक ऐसी अस्थिर अवस्था है, जो राजनीतिक या सामाजिक तबाही की एक अवधि के बाद ढांचे के दूसरे हिस्सों को भी बर्बाद कर देती या उन्हें बदल देती है।

क्या ऐसा हो सकता है? चिंता की बात यह है कि या तो यह महामारी के दौरान गलती से हो सकता है या महामारी के चरम पर पहुंचने के बाद इरादतन ऐसा किया जा सकता है। गलती से आशय ऐसी परिस्थिति से है, जब महामारी के सबसे बुरे वक्त के दौरान कोई सरकार बड़े कदम उठाने में विफल हो जाती है। व्यवसायों और घरों को मदद की पेशकश की जा सकती है, लेकिन अगर यह व्यापक स्तर पर फैली बीमारी के कारण बाजार को धराशायी होने से रोकने के लिए पर्याप्त नहीं हुई, तो अराजक हालात पैदा हो जाएंगे। अस्पतालों को अतिरिक्त धन और लोग मुहैया कराए जा सकते हैं, लेकिन अगर यह पर्याप्त न हुआ, तो बड़ी संख्या में बीमार लोगों को लौटा दिया जाएगा।

महामारी के चरम पर पहुंचने के बाद सरकारें हालात को फिर से सामान्य बनाने की दिशा में कदम उठाती हैं। ऐसे में मितव्ययिता के चलते मुश्किल आर्थिक परिस्थितियों के पैदा होने की संभावना होती है। जर्मनी के सामने ऐसा ही संकट उठ खड़ा हुआ है। यह विनाशकारी साबित होगा। खासतौर पर इसलिए कि मितव्ययिता के दौरान महत्वपूर्ण सेवाओं के फंड में कटौती की वजह से इस महामारी से निपटने में देशों की क्षमता प्रभावित हुई है। आर्थिक और सामाजिक विफलता राजनीतिक व आर्थिक अशांति को बढ़ावा देगी, जिससे राज्य भी असफल साबित होगा और राज्य व कल्याणकारी सामुदायिक व्यवस्था, दोनों का पतन होगा।

राज्य-समाजवाद

राज्य-समाजवाद भावी सौदों का वर्णन करता है, जिसे हम एक सांस्कृतिक बदलाव के तौर पर देख सकते हैं, जो अर्थव्यवस्था के दिल में एक अलग तरह

कोरोनावायरस के फलस्वरूप हम दीर्घकालीन बदलावों का सामना कर सकते हैं। घर से काम करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ सकती है

एक संभावना यह है कि हम एक अधिक मानवीय व्यवस्था का निर्माण करें, जो हमें भविष्य की महामारियों और जलवायु परिवर्तन जैसे अन्य आसन्न संकटों का सामना करने के लिए और अधिक लचीला बनाती है

का मूल्य रखता है। यह वह भविष्य है जिसे हम वर्तमान में यूके, स्पेन और डेनमार्क में अपनाए जा रहे उपायों के विस्तार के साथ देख रहे हैं।

यहां कुंजी यह है कि अस्पतालों के राष्ट्रीयकरण और श्रमिकों को भुगतान जैसे उपायों को बाजारों की सुरक्षा के टूल के तौर पर नहीं देखा जाता है, बल्कि यह जीवन की रक्षा करने का एक तरीका है। ऐसे परिदृश्य में राज्य जीवन के लिए आवश्यक अर्थव्यवस्था के उन हिस्सों की रक्षा के लिए कदम उठाता है, जो जीवन के लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए भोजन, ऊर्जा और आश्रय का उत्पादन, ताकि जीवन के बुनियादी प्रावधान अब बाजार के शिकंजे में न हो। राज्य अस्पतालों का राष्ट्रीयकरण करता है और आवास को स्वतंत्र रूप से उपलब्ध कराता है। अंत में यह सभी नागरिकों तक विभिन्न सामानों को मुहैया कराने का साधन प्रदान करता है और इस तरह हम कम श्रमिकों के साथ बुनियादी व अन्य उपभोक्ता वस्तुओं, दोनों का उत्पादन कर पाने में सक्षम हो पाते हैं।

नागरिक अब खुद के और जीवन की बुनियादी सामग्रियों के बीच एक मध्यस्थ के तौर पर नियोक्ताओं पर निर्भर नहीं होते। सभी को सीधे भुगतान किया जाता है और यह उनके द्वारा सृजित विनिमय मूल्य से संबंधित नहीं होता है। बल्कि, इसकी जगह सभी को एक समान भुगतान किया जाता है (इस आधार पर कि हम जीवित हैं, इसलिए जीने के योग्य हैं), या फिर उनके काम की उपयोगिता पर आधारित होता है। सुपरमार्केट के कर्मचारी, डिलीवरी ड्राइवर, वेयरहाउस स्टेकर, नर्स, शिक्षक और डॉक्टर इस व्यवस्था के नए सीईओ होते हैं।

यह संभव है कि राज्य-समाजवाद राज्य-पूंजीवाद के प्रयासों और लंबे समय तक महामारी के प्रभावों के परिणामस्वरूप उभरता है। अगर गहरी मंदी होती है और आपूर्ति श्रृंखलाएं बाधित होती हैं, तो मांग को इस तरह की कीन्सवादी नीतियों के बूते नहीं बचाया जा सकता, जिन्हें हम अभी देख रहे हैं (धन को मुद्रित करना, ऋण प्राप्त करने को आसान बनाना आदि)। राज्य उत्पादन का अधिग्रहण कर सकता है। इस दृष्टिकोण के अपने जोखिम हैं, हमें अधिनायकवाद से बचने के लिए सावधान रहना चाहिए। लेकिन अच्छा बात यह है कि कोविड-19 के अत्यधिक फैल जाने पर यह हमारी सबसे अच्छी उम्मीद हो सकती है। एक मजबूत राज्य अर्थव्यवस्था और समाज के मुख्य कार्यों की रक्षा के लिए संसाधनों को सुव्यवस्थित करने में सक्षम होता है।

पारस्परिक सहयोग

पारस्परिक सहयोग दूसरा भविष्य है, जिसमें हम अपनी अर्थव्यवस्था के मार्गदर्शक सिद्धांत के तौर पर जीवन की सुरक्षा को अपनाते हैं। लेकिन, इस परिदृश्य में राज्य एक परिभाषित भूमिका नहीं निभाता। बल्कि, व्यक्ति और छोटे समूह अपने समुदायों के भीतर लोगों की मदद और देखभाल करना शुरू करते हैं। इस भविष्य के साथ जोखिम यह है कि छोटे समूह, उदाहरण के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की क्षमता को प्रभावी ढंग से बढ़ाने के लिए आवश्यक संसाधनों को तेजी से जुटाने में असमर्थ हैं। लेकिन, पारस्परिक सहायता संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए अधिक प्रभावी रोकथाम करने में सक्षम हो सकती है, सामुदायिक सपोर्ट नेटवर्क का निर्माण करके वह कमजोरों की रक्षा कर सकती है और पुलिस के आइसोलेशन नियमों को लागू कर सकती है। इस भविष्य का सबसे महत्वाकांक्षी रूप नए लोकतांत्रिक ढांचे का सृजन है। समुदायों के समूह सापेक्ष गति के साथ पर्याप्त संसाधन जुटाने में सक्षम हैं। बीमारी को फैलने से रोकने और (अगर उनके पास कौशल है तो) मरीजों का इलाज करने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर योजनाएं बनाने को लेकर लोग एक-दूसरे के साथ आगे आ रहे हैं।

इस तरह का परिदृश्य किसी भी अन्य तरह से उभर सकता है। यह बर्बरता या राज्य-पूंजीवाद से बाहर निकलने का एक संभावी तरीका है और राज्य-समाजवाद का समर्थन कर सकता है। हम जानते हैं कि पश्चिम अफ्रीकी के इबोला प्रकोप से निपटने के लिए सामुदायिक प्रतिक्रियाएं केंद्रित थीं। और हम पहले से ही इस भविष्य की जड़ों को आज देखभाल व सामुदायिक सहायता मुहैया करा रहे समूहों के तौर पर देख रहे हैं। हम इसे राज्य की प्रतिक्रियाओं की विफलता के रूप में देख सकते हैं। या फिर हम इसे सामने आए संकट के लिए एक व्यावहारिक, दयालु सामाजिक प्रतिक्रिया के रूप में भी देख सकते हैं।

आशा और भय

ये परिकल्पनाएं चरम पर पहुंचे परिदृश्य हैं और जिनके एक-दूसरे में मिल जाने की संभावना है। मेरा भय राज्य पूंजीवाद के बर्बरता में बदल जाने को लेकर है। मेरी आशा राज्य-समाजवाद और पारस्परिक सहायता का मिलन है। एक मजबूत, लोकतांत्रिक राज्य, मजबूत स्वास्थ्य प्रणाली के निर्माण के लिए संसाधनों को जुटाता है, बाजार के मालिकों से कमजोर लोगों की रक्षा करने को प्राथमिकता देता है और नागरिकों को निरर्थक काम करने की जगह पारस्परिक सहायता समूह के निर्माण में सक्षम बनाता है।

इन सभी परिदृश्यों में भय के लिए कुछ आधार हैं, तो कुछ आशा के लिए भी। कोविड-19 हमारे मौजूदा सिस्टम में गंभीर कमियों को उजागर कर रहा है। इस पर एक प्रभावी प्रतिक्रिया के लिए क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है। मैंने तर्क दिया है कि इसके लिए सख्ती के साथ बाजारों से दूर जाने और मुनाफे का उपयोग प्राथमिक तौर पर अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। इसके उलट एक संभावना यह है कि हम एक अधिक मानवीय व्यवस्था का निर्माण करें, जो हमें भविष्य की महामारियों और जलवायु परिवर्तन जैसे अन्य आसन्न संकटों का सामना करने के लिए और अधिक लचीला बनाती है।

सामाजिक परिवर्तन कई स्थानों से और कई प्रभावों के साथ आ सकते हैं। हम सभी के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य इस बात की मांग करना है कि उभरते सामाजिक स्वरूपों में ऐसी नैतिकताएं हों, जो देखभाल, जीवन और लोकतंत्र को महत्व देते हैं। संकट के इस समय में केंद्रीय राजनीतिक कार्य उन मूल्यों के इर्द-गिर्द बने रहना और उन्हें (वर्चुअली) संगठित करना है।

(लेखक इंग्लैंड स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ सुरे के सेंटर फॉर द अंडरस्टैंडिंग ऑफ सस्टेनेबल प्रोस्पेरिटी के ईकोलॉजिकल इकोनोमिक्स में रिसर्च फेलो हैं। यह लेख द कन्वरसेशन से विशेष अनुबंध के तहत प्रकाशित)

"महामारी से हमेशा गरीब ही रहे पीड़ित"

जाने-माने लेखक और राजनीतिक विश्लेषक कांचा इलैया शेपहर्ड के दादा 1897 के बुबोनिक प्लेग के शिकार हुए थे। कांचा को प्लेग की कहानियां विरासत में मिलीं। कुंदन पांडे के साथ बातचीत में वह पूर्वजों के संघर्षों और जीवित रहने की रणनीतियों को याद कर रहे हैं। ये संघर्ष और रणनीतियां ठीक वैसी ही हैं जो वर्तमान में कोविड-19 के प्रकोप में देखी जा रही हैं, चाहे वह पलायन हो अथवा सामाजिक दूरी

आप 1897 के प्लेग की यादों के साए में बड़े हुए हैं। अभी कोविड-19 महामारी के चलते लॉकडाउन है। सामाजिक बदलाव के कथाकार के रूप में, आप दोनों घटनाओं को किस रूप में देखते हैं?

जब भी कोई महामारी होती है तो कम प्रतिरक्षा और अन्य कारणों से गरीब सबसे अधिक शिकार होते हैं। 1897 में जब अविभाजित भारत की आबादी 18 से 20 करोड़ थी, तब बुबोनिक प्लेग में 1 करोड़ लोग मारे गए। इनमें अधिकांश गरीब और शहरी झुग्गियों में रहने वाले थे। आंकड़ों के अनुसार, इस महामारी ने 70 प्रतिशत लोगों को प्रभावित किया, 14 प्रतिशत बहुत बीमार हो गए और 6 प्रतिशत लोगों की मृत्यु हो गई। अगर कोविड-19 जन-जन तक पहुंचता है तो सबसे बड़ी समस्याएं भारत, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका, बांग्लादेश, पाकिस्तान और ऐसे अन्य देशों में होंगी। दोनों मामलों में रोग की उत्पत्ति चीन में हुई। 1897 में यह मुंबई और कोलकाता के बंदरगाहों के माध्यम से भारत पहुंचा। इस बार यह हवाई जहाज में अत्यधिक संपन्न व घूमने-फिरने वाले लोगों के साथ यहां पहुंचा है।

अपने परिवार के अनुभवों के आधार पर बताएं कि 1897 में प्लेग का प्रकोप कैसा था?

1897 में मेरे दादा-दादी वारंगल शहर में रहते थे,जो वर्तमान में तेलंगाना राज्य में है। वे चरवाहे थे। प्लेग से सबसे ज्यादा प्रभावित वे क्षेत्र थे जहां मेरे दादा-दादी जैसे गरीब लोग रहते थे। उस समय में हैदराबाद निजाम के अधीन एक रियासत थी जहां स्वास्थ्य की बुनियादी सुविनाएं नहीं थीं। मेरे दादा प्लेग से मर गए। उस वक्त खाने की कमी थी। चरवाहे, मछली पकड़ने वाले समुदाय, पशु अर्थव्यवस्था पर निर्भर दलित और वनों पर आश्रित परिवार भाग गए। मेरी दादी कांचा लिंगम्मा और अपना पति खो चुकी उनकी बड़ी बहन एली ईरामम्मा हरी घास और जल संसाधनों की तलाश में भेड़ों के झुंडों के साथ घने जंगलों में चली गईं। वे उन क्षेत्रों में बस गए जहां नदी अथवा पानी के टैंक थे। मेरे नाना भी उनके साथ थे। उस समय प्लेग ने पूरे देश को चपेट में ले लिया। हालांकि इसे फैलने में लंबा समय लगा क्योंकि तब मानव से मानव संपर्क सीमित था और मनुष्यों की आबादी भी दूर-दूर थी।

बचाव की नई रणनीति कैसे विकसित हुई?

प्रवासन ने रोग से दूरी बनाए रखने में मदद की, लेकिन लोग एक-दूसरे की मदद करने के लिए सामाजिक रूप जुड़े हुए थे। लोगों ने सामुदायिक संगठनों का गठन किया। धीरे-धीरे इसने नई बस्तियों को जन्म दिया। मेरा परिवार और अन्य लोग जो अपने मूल निवास स्थान से बच गए थे, वे मांस और दूध के सहारे जीवित रहे। लोगों ने अपनी भेड़ें और बकरियां मारकर खा लीं। दलित और आदिवासी मुख्य रूप से बीफ और वन भोजन पर जीवित रहे। उस समय सब्जी अर्थव्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। महिलाएं बच्चों और मवेशियों के साथ पेड़ों के नीचे रहती थीं। वे वन भोजन पकाती थीं और जंगलों से एकत्र करती थीं। पुरुष मवेशियों को चराने के लिए जंगल में जाते थे। मछुआरे दूध और मांस के बदले मछलियों की आपूर्ति करते थे। धीरे-धीरे प्रवासी समुदायों ने प्रचुर मात्रा में उपलब्ध भूमि पर खेती शुरू कर दी। इस तरह से उनकी पहुंच खाद्यान्नों और दालों तक हुई। मेरी पीढ़ी के समय तक (कांचा का जन्म 1952 में हुआ) चरवाहा समुदाय छोटे गांवों में बस गया था। मेरा जन्म पापैयापेटा गांव में हुआ था। यह मेरी दादी के परिवार और दोस्तों द्वारा स्थापित किया गया था।

उस समय महामारी से निपटने के लिए स्वास्थ्य सुविधाएं कैसी थीं?

निजाम के शासनकाल में स्वास्थ्य का कोई बुनियादी ढांचा नहीं था। ब्रिटिश पूर्व भारत में भी संगठित चिकित्सा प्रणाली नहीं थी। गरीब लोगों को पतंजलि प्रणाली, आयुर्वेद या होम्योपैथी जैसी पारंपरिक चिकित्सीय उपचार कभी नहीं दिए गए। इन समुदायों के उपचार के लिए पौधे और तरल दवाओं जैसी स्थानीय परंपराएं थीं। अंग्रेजों ने 1897 में महामारी रोग अधिनियम लागू किया ताकि महामारी का संचरण रोका जा सके। इस अधिनियम का अब भी उसी तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। कलेक्टरों को अतिरिक्त अधिकार दिए गए। उन्होंने मेडिकल टीमों को भी तैनात किया। लेकिन औपनिवेशिक काल में ब्राह्मण डॉक्टर बनना पसंद नहीं करते थे क्योंकि डॉक्टरों को सभी जातियों के लोगों स्पर्श करना पड़ता था। अंग्रेजों का आधिकारिक आदेश था कि डॉक्टरों को सभी की सेवा करनी है। इसलिए हमें उपनिवेशवाद का धन्यवाद करना चाहिए जिसने भारत में दवाइयों को जाति के बंधन से मुक्त कर दिया।

क्यूबा में येलो फीवर, अमेरिकी हस्तक्षेप का बहाना

क्यूबा से निकलने वाले जहाज से कुछ यात्री इस बीमारी को अपने साथ ले आए थे। इस बीमारी ने बीस हजार लोगों की जान ले ली और कपास उद्योग 200 मिलियन डॉलर का नुकसान पहुंचाया

प्रणय लाल

अमेरिका और अफ्रीका में येलो फीवर एक खतरनाक बीमारी है। 19वीं और 20वीं सदी की शुरुआत में जब इलाज आसानी से उपलब्ध नहीं थे, तब यह और भी अधिक भयावह था। 1878 में हवाना, क्यूबा से निकलने वाले एक जहाज के कुछ यात्री इस बुखार को अपने साथ ले गए और क्वारंटाइन से बचते हुए संयुक्त राज्य के न्यू ऑरलियन्स में इसे फैला दिया।

यह बुखार पूरी मिसिसिपी घाटी में और वहां से लेकर सेंट लुइस तक फैल गया। इससे बीस हजार लोग मारे गए और कपास उद्योग को लगभग 200 मिलियन अमेरिकी डॉलर का नुकसान हुआ। तब जीवाणु विज्ञान एक बिलकुल नया विषय था और विषाणु विज्ञान (पीत बुखार एक वायरस के कारण होता है) का कोई अस्तित्व नहीं था। जिस प्रकार क्यूबा के साथ संयुक्त राज्य के वाणिज्यिक संबंध आगे बढ़ रहे थे, उसे देखते हुए बुखार को लेकर चिंता भी बढ़ती जा रही थी। संयुक्त राज्य के शहरों, खासकर मैक्सिको की सीमा से लगे शहरों की झोपड़पट्टियों की मैली कुचैली स्थिति स्वास्थ्य अधिकारियों के लिए लगातार चिंता का विषय बनी रहती थी।

अमेरिकियों ने स्पेनिश लोगों पर इस बीमारी को फैलाने का आरोप लगाया। ये लोग जो दक्षिण अमेरिका के कुछ हिस्सों पर दावा करने की कोशिश कर रहे थे। क्यूबा में हवाना संयुक्त राज्य के संदेह का केंद्र बना और और पीत बुखार अमेरिकी साम्राज्यवादी डिजाइनों के लिए एक बहाना। 1878 में संयुक्त राज्य ने स्पेन के साथ क्यूबा के युद्ध में हस्तक्षेप किया और येलो फीवर के खतरों का इस्तेमाल उन्हें प्रेरित करने के लिए किया। क्यूबा लिबरेशन आर्मी के नेता मैक्सिमो गोमेज की टिप्पणी के अनुसार, 1868 में शुरू हुआ युद्ध 10 साल तक चला। युद्ध के अंत में जब क्यूबा लड़ाई में कमजोर पड़ रहा था, तब "अपराजेय जनरल जून, जुलाई और अगस्त" (वो महीने जब गर्मी और गर्मियों की बारिश की वजह से बुखार में बढ़ोतरी होती है) ने स्पेनवासियों को बड़ी संख्या में मार डाला। मौत की यह संख्या संयुक्त राज्य द्वारा दिए गए सभी असलहे और बारूद की तुलना में अधिक थी। क्यूबा लंबे समय तक इस बीमारी चपेट में रहा जिसकी वजह से उनमें कुछ हद तक प्रतिरक्षा विकसित हो गई।

1897 में हवाना में बिगड़ती स्थितियों ने फिर से दक्षिणी संयुक्त राज्य की अर्थव्यवस्था को पंगु बना दिया और दिसंबर 1898 में संयुक्त राज्य की सेना ने क्यूबा को पीत बुखार से बचाने के लिए कार्रवाई की। कब्जा कर चुकी सरकार ने क्यूबा के परिवारों को सड़कों को साफ करने, पुरानी इमारतों को ध्वस्त करने और हवाना बंदरगाह को गिराने के लिए मजबूर किया। चूंकि पीत बुखार काफी हद तक एक शहरी बीमारी है, इसलिए संयुक्त राज्य की सेनाएं

1897 में हवाना में बिगड़ती स्थितियों ने फिर से दक्षिणी संयुक्त राज्य की अर्थव्यवस्था को पंगु बना दिया और दिसंबर 1898 में संयुक्त राज्य की सेना ने क्यूबा को पीत बुखार से बचाने के लिए कार्रवाई की

मेंफिस के जेफरसन स्ट्रीट होम में ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को रेखाचित्र के माध्यम से दर्शाया गया है। ऐसे रेखाचित्रों की श्रृंखला "द ग्रेट येलो फीवर स्कॉर्ज इंसीडेंट्स ऑफ इट्स हॉरर्स इन द मोस्ट फैटल डिस्ट्रिक्ट ऑफ द साउदर्न स्टेटस" पुस्तक में संकलित हैं

हवाना शहर के बाहर शिविरों में ठहरी थीं। प्रारंभिक स्वच्छता-सम्बन्धी उपायों की विफलता ने बुखार के कारणों में नए सिरे से रुचि पैदा कर दी। इस बीच क्यूबा के एक डॉक्टर कार्लोस फिनेले ने एक परिकल्पना दी कि एक मच्छर की प्रजाति एडीस एसपीपी ने बुखार को एक इंसान से दूसरे इंसान में फैलाया। संयुक्त राज्य के एक स्वच्छता कर्मी हेनरी कार्टर ने पाया कि इस बुखार ने मच्छर द्वारा काटे गए व्यक्ति को वास्तव में प्रभावित करने के लिए 10-12 दिनों का समय लिया।

संयुक्त राज्य येलो फीवर कमीशन के प्रयोगों ने फिनेले और कार्टर के निष्कर्षों की पुष्टि की, जिसकी वजह से हवाना में वेक्टर के प्रजनन स्थलों को खत्म कर दिया गया और 1901 आते-आते क्यूबा में कोई पीत बुखार नहीं रह गया था। लेकिन स्वच्छता के तरीकों को अपनाने के लिए की गई जबरदस्ती ने क्यूबाई लोगों और कब्जा करने वालों के बीच पहले से ही असहज रिश्ते को और तनावपूर्ण बना दिया। 1902 में प्लाट संशोधन नामक कानून क्यूबा के संविधान में लाया गया। इस संशोधन के तहत क्यूबा के नागरिक अधिकारियों द्वारा निर्मित स्वच्छता सुविधाओं को अमेरिकियों द्वारा बनाए गए साधनों से बदल दिया गया।

1906 में क्यूबा में पीत बुखार फिर से प्रकट हुआ। संयुक्त राज्य सरकार ने फिर से हस्तक्षेप किया लेकिन वह विफल रहा। बढ़ती मौतों के वजह से अमेरिकियों को 1911 तक मजबूरन द्वीप छोड़ देना पड़ा। उस समय तक क्यूबा के लोगों ने यह जान लिया था कि अपने देश को पीत बुखार से मुक्त रखने के लिए अपने शक्तिशाली पड़ोसियों को दूर रखना जरूरी है। कार्लोस फिनेले जिसे संयुक्त राज्य के साथ मिल जाने की वजह से क्यूबा के लोगों द्वारा शुरू में अनदेखा किया गया था, अब एक राष्ट्रीय नायक बन चुका था, जिसने अमेरिकियों की तुलना में पीत बुखार के विज्ञान को बेहतर तरीके समझा। द्वीप वासियों ने यह भी महसूस किया कि वे सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी मामले में संयुक्त राज्य से किसी भी तरह से कमतर नहीं थे और निवारक चिकित्सा में उन्होंने समानांतर और कभी-कभी शानदार सफलताएं हासिल कीं।

1930 और 1940 के दशक की शुरुआत में संयुक्त राज्य ने अपने निकटवर्ती पड़ोसियों की ओर अपना रुख लगभग जेनोफोबिक रखा। रॉकफेलर और फोर्ड फाउंडेशन नामक संयुक्त राज्य स्थित परोपकारी संगठनों ने पाया कि मध्य और दक्षिण अमेरिका बुखार के लगातार फिर से शुरू होने का खतरा पैदा कर रहे थे। इन संगठनों ने दमनकारी (रोग) स्वच्छता कार्यक्रम चलाए। उदाहरण के तौर पर, रॉकफेलर फाउंडेशन ने मैक्सिको में हुकवर्म उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किया, जबकि वो अच्छी तरह से जानते थे कि मौजूदा तकनीक से इसे बहुत अच्छी तरह से अंजाम नहीं दिया जा सकता।

राज्य के दुश्मनों द्वारा आयातित बीमारी का डर संयुक्त राज्य के लिए कोई नया सिंड्रोम नहीं है। इसने सार्वजनिक स्वास्थ्य को लगातार कूटनीति और अधीनता के उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया है।

"आगे और अधिक संकट हमारा इंतजार कर रहा है"

91 वर्षीय **नोम चोम्स्की** जाने-माने अमेरिकी भाषाविद और राजनीतिक विश्लेषक हैं। कोरोना महामारी की वजह से इस वक्त उन्होंने खुद को अमेरिका के एरिजोना में सेल्फ आइसोलेशन (दुनिया से अलग) में रखा है। इस बीच, उन्होंने डीआईईएम25 टीवी के लिए स्रेको होर्वाट से बात की। चोम्स्की ने बताया कि कोरोनावायरस का स्वास्थ्य संकट बहुत ही गंभीर है और इसके गंभीर परिणाम होंगे, पर अस्थायी होंगे। लेकिन, मानवता के लिए परमाणु युद्ध और ग्लोबल वार्मिंग जैसे दो और गंभीर खतरे हैं। उनका विश्लेषण बताता है कि ये सभी खतरे नवउदारवादी नीतियों के कारण तीव्र हुए हैं। और इस संकट के खात्मे के बाद जो विकल्प मिलेगा, वह अधिक अधिनायकवादी और क्रूर हो सकता है। या फिर मानवीय जरूरतों को पूरा करने वाले एक नए समाज का पुनर्निर्माण भी हो सकता है

यह चौंकाने वाला है कि कोरोनावायरस के इस महत्वपूर्ण क्षण में डोनाल्ड ट्रम्प नेतृत्व कर रहे हैं। कोरोनोवायरस काफी गंभीर है। लेकिन यह याद रखना जरूरी है कि दो और बहुत बड़े खतरे हैं, जो मानव इतिहास में घटित होने वाली किसी भी घटनाओं से कहीं ज्यादा बदतर हैं। एक परमाणु युद्ध का बढ़ता खतरा और दूसरा ग्लोबल वार्मिंग जैसा वैश्विक खतरा। ये दोनों खतरे बढ़ते जा रहे हैं। कोरोनावायरस भयानक है और इसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं, लेकिन हम इससे उबर जाएंगे। जबकि अन्य दो खतरों से उबर पाना नामुमकिन होगा। इनसे सब कुछ तहस-नहस हो जाएगा।

अमेरिका के पास असीम ताकत है। यह एकमात्र ऐसा देश है, जो ईरान और क्यूबा जैसे अन्य देशों पर प्रतिबंध लगाता है, तब बाकी के देश उसका अनुसरण करते हैं। यूरोप भी अमेरिका का अनुसरण करता है। ये देश अमेरिकी प्रतिबंधों से पीड़ित हैं, लेकिन आज के वायरस संकट की सबसे बड़ी विडंबना देखिए कि क्यूबा, यूरोप की मदद कर रहा है। जर्मनी ग्रीस की मदद नहीं कर सकता, लेकिन क्यूबा यूरोपीय देशों की मदद कर सकता है। भूमध्यसागर क्षेत्र में हजारों प्रवासियों और शरणार्थियों की मौतों के मद्देनजर इस समय पश्चिम की सभ्यता का संकट विनाशकारी है।

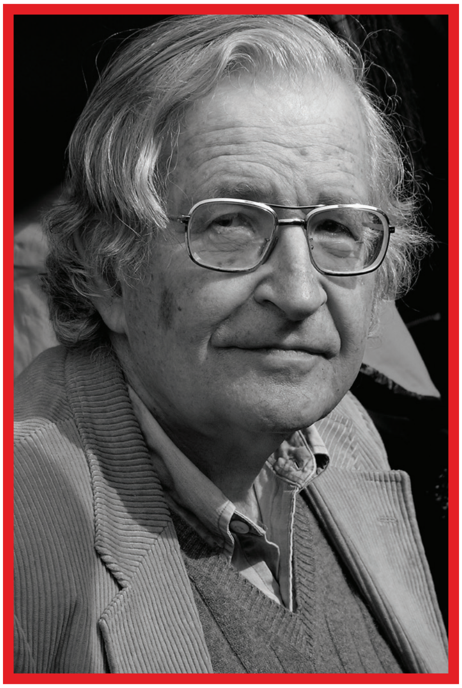

युद्ध के वक्त की जाने वाली बयानबाजी का आज कुछ महत्व है। अगर हम इस संकट से निपटना चाहते हैं, तो हमें युद्ध के समय की जाने वाली लामबंदी की तरफ देखना होगा, उदाहरण के लिए द्वितीय विश्व युद्ध के लिए अमेरिका की वित्तीय लामबंदी (वित्त जुटाने की विभिन्न योजनाएं)। द्वितीय विश्व युद्ध ने देश को कर्ज में डाल दिया था और अमेरिकी विनिर्माण को चौपट कर दिया था। लेकिन, वित्तीय लामबन्दी ने आगे विकास को आगे बढ़ाया। इस अल्पकालिक संकट को दूर करने के लिए हमें उसी मानसिकता की आवश्यकता है और अमीर देश ऐसा कर सकते हैं। एक सभ्य दुनिया में, अमीर देश, दूसरे देशों का गला घोंटने के बजाय सहायता देते हैं। कोरोनावायरस संकट लोगों को यह सोचने के लिए मजबूर कर सकता है कि हम किस तरह की दुनिया चाहते हैं।

इस संकट की उत्पत्ति बाजार की विफलता और नव-आर्थिक नीतियों का भी नतीजा है, जिसने गहरी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया है और तीव्र किया है। यह लंबे समय से पता था कि सार्स महामारी कुछ बदलाव के साथ कोरोनावायरस के रूप में आ सकती है। अमीर देश संभावित कोरोनावायरस के लिए टीका बनाने का काम कर सकते थे और कुछ संशोधनों के साथ आज ये हमारे पास उपलब्ध होता। बड़ी दवा कंपनियों की निरंकुशता जगजाहिर है। उन पर लगाम लगा पाना पाना सरकार के लिए कठिन है। ऐसे में लोगों को विनाश से बचाने के लिए एक वैक्सीन (टीका) खोजने की तुलना में नई बॉडी क्रीम बनाना अधिक लाभदायक है। पोलियो का खतरा सरकारी

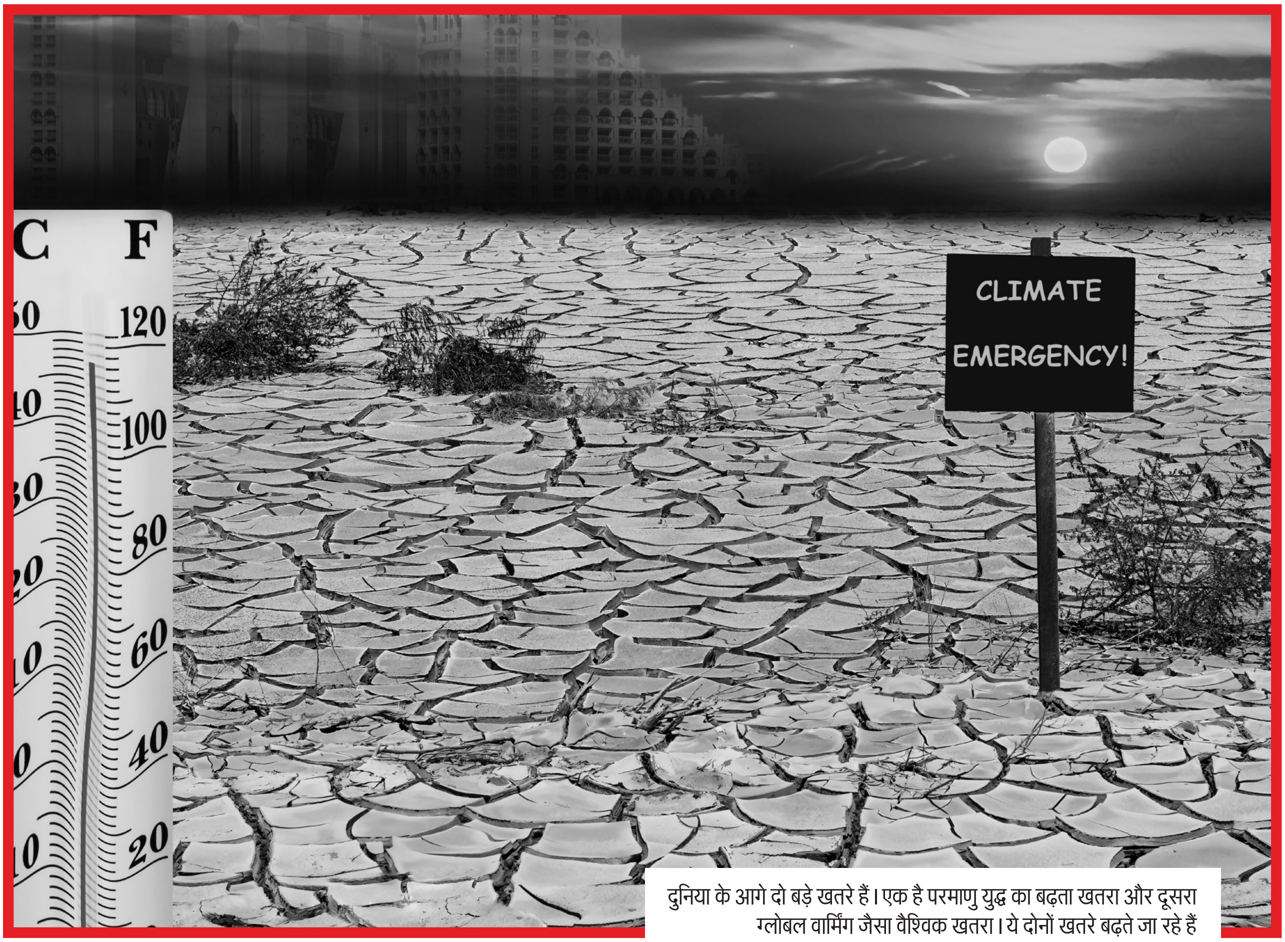

दुनिया के आगे दो बड़े खतरे हैं। एक है परमाणु युद्ध का बढ़ता खतरा और दूसरा ग्लोबल वार्मिंग जैसा वैश्विक खतरा। ये दोनों खतरे बढ़ते जा रहे हैं

संस्थान द्वारा बनाए गए साल्क टीके से खत्म हो गया। इसका कोई पेटेंट नहीं था। यह काम इस समय किया जा सकता था, लेकिन नवउदारवादी आफत ने इस काम को होने नहीं दिया।

हमने ध्यान नहीं दिया

अक्टूबर 2019 में ही अमेरिका को कोरोना जैसी संभावित महामारी की आशंका थी। हमने इस पर ध्यान नहीं दिया। 31 दिसंबर को चीन ने विश्व स्वास्थ्य संगठन को निमोनिया के बारे में सूचित किया और एक हफ्ते बाद चीनी वैज्ञानिकों ने इसे कोरोनावायरस के रूप में पहचाना। फिर इसकी जानकारी दुनिया को दी गई। इस इलाके के देशों जैसे, चीन, दक्षिण कोरिया, ताइवान ने कुछ-कुछ काम करना शुरू कर दिया और ऐसा लगता है कि संकट को बहुत अधिक बढ़ने से रोक लिया। यूरोप में भी कुछ हद तक यही हुआ। जर्मनी के पास एक विश्वसनीय अस्पताल प्रणाली है और वह दूसरों की मदद किए बिना अपने हित में काम करने में सक्षम था। अन्य देशों ने इसे अनदेखा कर दिया। सबसे खराब रवैया रहा ब्रिटेन और अमेरिका का।

जब हम किसी तरह इस संकट से उबर जाएंगे, तब हमारे पास जो विकल्प मौजूद होगा वह अधिक अधिनायकवादी व क्रूर राज्यों की स्थापना के रूप में देखा जा सकता है या फिर पहले के मुकाबले अधिक मानवीय समाज का पुनर्निर्माण भी संभव है। एक ऐसा समाज जो निजी लाभ के बजाय मानवीय आवश्यकताओं को वरीयता दे। इस बात की संभावना है कि लोग संगठित होंगे, एक बहुत बेहतर दुनिया बनाने के लिए काम करेंगे। लेकिन वे भारी-भरकम समस्याओं का सामना तब भी करेंगे, जैसे हम आज परमाणु युद्ध की आशंका का सामना कर रहे हैं। पर्यावरणीय तबाही की समस्याएं भी होंगी, जिसकी अंतिम सीमा छूने के बाद शायद ही हम कभी उबर पाएं। इसलिए, जरूरी है कि इन समस्याओं को लेकर हम निर्णायक रूप से कार्य करें। इसलिए यह मानव इतिहास का एक महत्वपूर्ण क्षण है। न केवल कोरोनावायरस की वजह से, जो दुनिया की खामियों के बारे में जागरुकता ला रहा है, बल्कि पूरे सामाजिक-आर्थिक प्रणाली की गहरी त्रुटियों के बारे में भी हमें इस वक्त पता चल रहा है। अगर हमें जीवन जीने लायक भविष्य चाहिए तो मौजूदा हालात को बदलना ही होगा। कोरोना संकट चेतावनी संकेत हो सकता है और आज इससे निपटने या इसके विस्फोट को रोकने के लिए एक सबक हो सकता है। लेकिन हमें इसकी जड़ों के बारे में भी सोचना है, जो हमें आगे और अधिक बदतर हाल में ले जा सकते हैं।

आज 2 बिलियन से अधिक लोग क्वारंटाइन (संगरोध) में है। सामाजिक अलगाव का एक रूप वर्षों से मौजूद है और बहुत ही हानिकारक है। आज हम वास्तविक सामाजिक अलगाव की स्थिति में हैं। किसी भी तरह, फिर से सामाजिक बंधनों के निर्माण के जरिए इससे बाहर निकलना होगा, जो जरूरतमंदों की मदद कर सके। इसके लिए उनसे संपर्क करना, संगठन का विकास, विस्तारित विश्लेषण जैसे कार्य करने होंगे। उन लोगों को कार्यशील और सक्रिय बनाने से पहले, भविष्य के लिए योजनाएं बनाना, लोगों को इंटरनेट युग में एक साथ लाना, उनके साथ शामिल होना, परामर्श करना, उन समस्याओं के जवाब जानने के लिए विचार-विमर्श करना, जिसका वे सामना करते हैं, और उन पर काम करना आवश्यक है। यह आमने-सामने का संचार नहीं है, जो मनुष्य के लिए आवश्यक है। लेकिन इसे कुछ समय के लिए आप रोक सकते हैं। अंत में कहा जा सकता है कि अन्य तरीकों की तलाश करें और उसके साथ आगे बढ़ें। उन गतिविधियों का विस्तार और उन्हें गहरा करें। ये संभव है। यह आसान नहीं है। इंसानों ने अतीत में भी कई समस्याओं का सामना किया है।

(सौजन्यः प्रेसेंजा)

स्वच्छ जल का संकट

दुनिया की एक बड़ी आबादी के लिए साफ एवं सुरक्षित पानी की अनुपलब्धता, कोविड-19 संक्रमण प्रसार रोकने के प्रयासों को विफल कर सकता है

सुष्मिता सेनगुप्ता और सुरेश रोहिल्ला

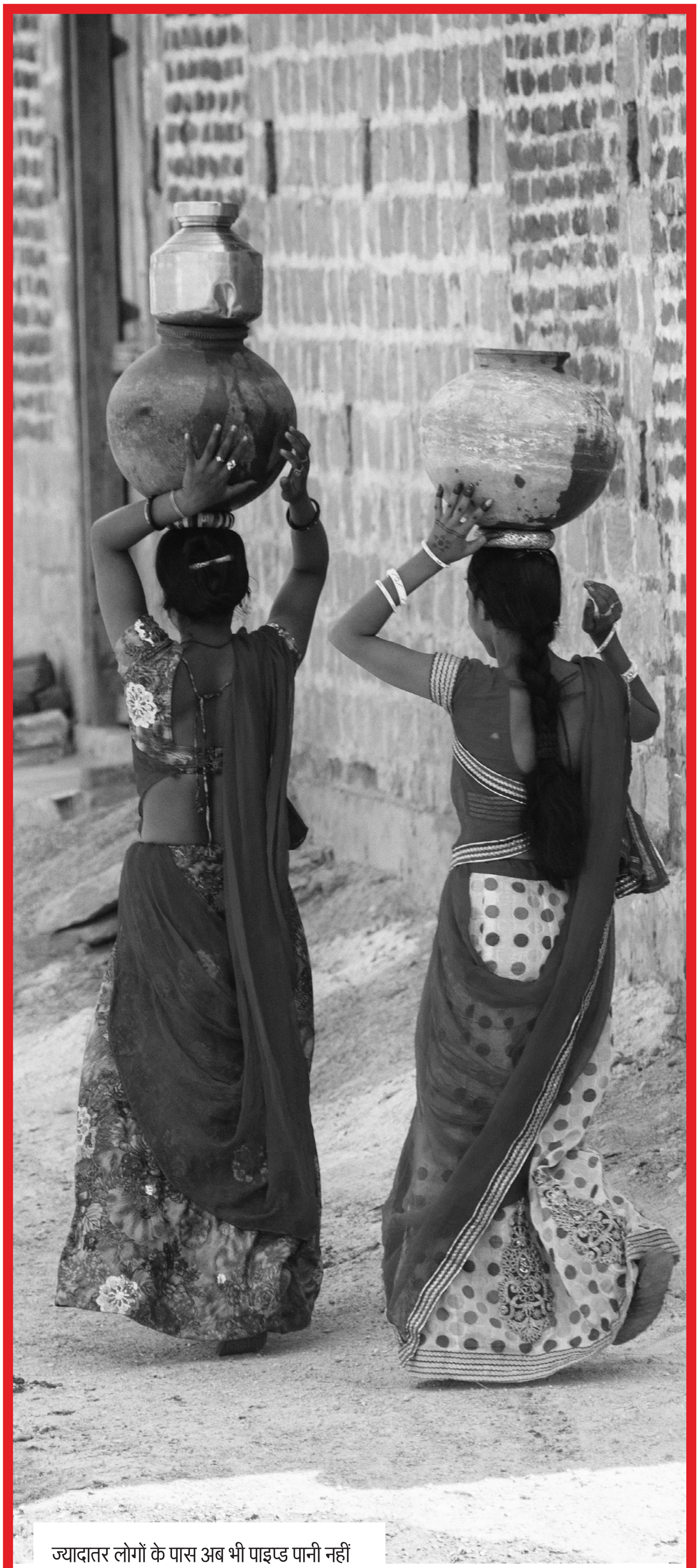
ज्यादातर लोगों के पास अब भी पाइप्ड पानी नहीं पहुंचा है। उन्हें पानी के लिए लंबी दूरी की यात्रा करनी होती है

तीन महीने की छोटी अवधि में एक सूक्ष्म वायरस ने पूरी मानवता को अपने पंजे में जकड़ लिया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिस साबुन-पानी से हाथ धोने को जानलेवा कोविड-19 के खिलाफ सबसे कारगर हथियार बताया जा रहा है, वह दुनिया के कई हिस्सों के लिए एक बहुत ही दुष्कर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने नोवेल कोरोनावायरस से छुटकारा पाने के लिए कम से कम 20 सेकंड तक ठीक से हाथ धोने की सलाह दी है। लेकिन एक अनुमानित गणना से पता चलता है कि इस काम के लिए जितना पानी चाहिए, उतना पानी खर्च कर पाना दुनिया के कई हिस्सों के लोगों के लिए मुमकिन ही नहीं है।

एक उदाहरण देखते हैं। यदि कोई व्यक्ति हाथ धोने में 30 से 40 सेकंड खर्च करता है, तो इसमें 4 लीटर तक पानी खर्च होता है, यदि नल को खुला छोड़ देते हैं। अगर इस दौरान नल बंद रखते हैं तब भी दो लीटर पानी खर्च होता है। कोविड-19 प्रसार रोकने के लिए डब्ल्यूएचओ नियमित अंतराल पर हाथ धोने की सलाह देता है। इस तरह, यदि कोई व्यक्ति सामान्य दिन के औसतन पांच बार के मुकाबले अभी 10 बार हाथ साफ करता है, तो एक दिन में 20 से 40 लीटर पानी का उपयोग होगा। इसका मतलब है कि पांच सदस्यों वाले परिवार को केवल हाथ धोने के लिए रोजाना 100 से 200 लीटर पानी की आवश्यकता होगी। यूनाइटेड किंगडम के यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंग्लिया के स्कूल ऑफ मेडिसिन, हेल्थ पॉलिसी एंड प्रैक्टिस के पॉल आर हंटर के अनुसार, एक व्यक्ति को पीने, खाना पकाने और व्यक्तिगत स्वच्छता के लिए प्रतिदिन 7.5 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। पानी की इस मात्रा की उपलब्धता बेघर लोगों और शहरी गरीबों के लिए लगभग असंभव है। उनमें से ज्यादातर के पास अभी भी पाइप्ड पानी नहीं पहुंचा है। उन्हें पानी जमा

विश्वव्यापी संकट

नागरिकों को पानी की आपूर्ति के मामले में दस देशों का प्रदर्शन बेहद खराब है। इन देशों ने पानी और साफ-सफाई पर बहुत कम राशि खर्च की है

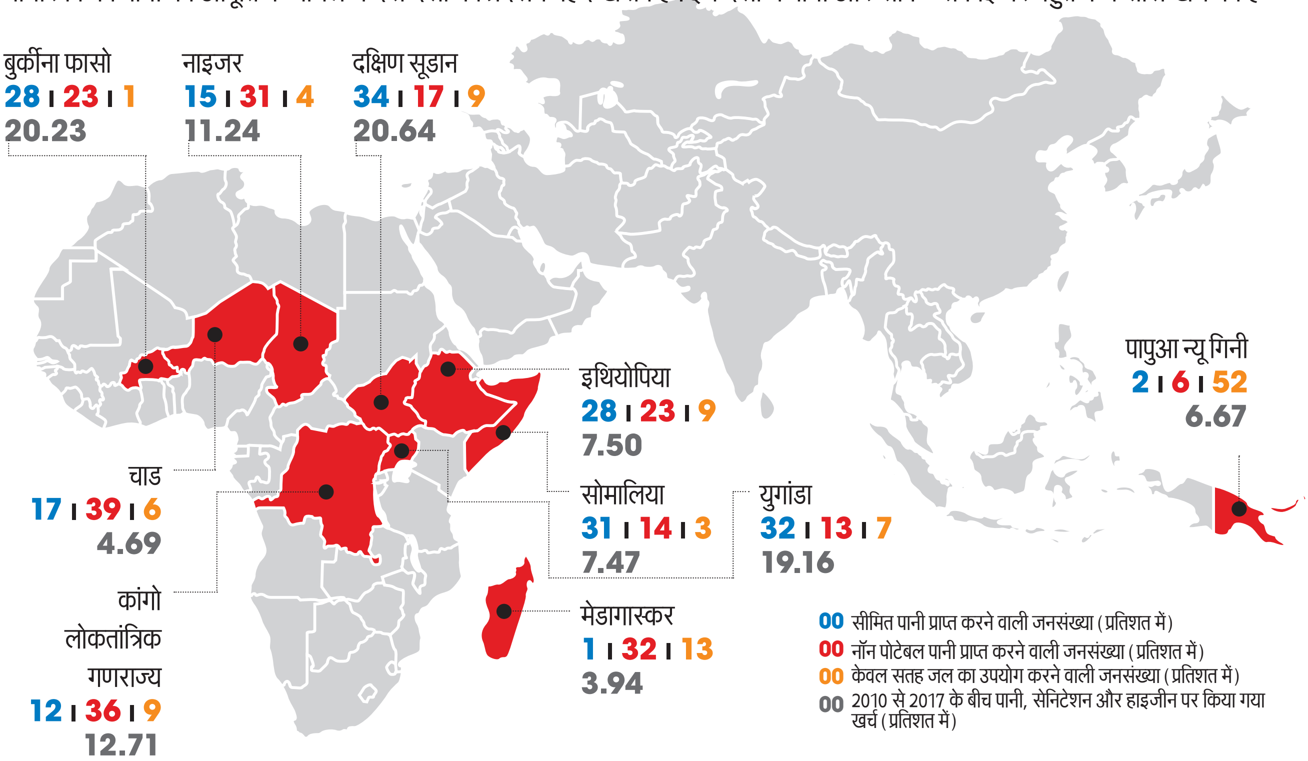

स्रोत: वाटरएड, ऑन द फ्रंटलाइन : द स्टेट ऑफ द वल्ड्‌र्स वाटर 2020

करने के लिए लंबी दूरी की यात्रा करनी होती है और साबुन इस्तेमाल के लिए भी निरंतर प्रयास और खर्च किए जाने की आवश्यकता होती है।

असुरक्षित जल उपयोग की व्यथा

ज्यादा पानी के उपयोग का अर्थ है ज्यादा अपशिष्ट जल। यदि ऊपर बताए तरीके से हाथ धोते हैं, तो पानी की मांग 20 से 25 फीसदी बढ़ जाएगी। यह स्वास्थ्य जोखिम भी बढ़ाता है। उदाहरण के लिए, भारत में 65 प्रतिशत अपशिष्ट जल का ट्रीटमेंट (उपचार) नहीं किया जाता है और वे विभिन्न जल निकायों के साथ मिल जाते हैं। डब्ल्यूएचओ और यूनिसेफ की 2019 की संयुक्त निगरानी कार्यक्रम (जेएमपी) रिपोर्ट एक डरावनी वास्तविकता को सामने लाती है। दुनियाभर के 10 में से 4 घरों में न तो हाथ धोने के लिए पानी है और न ही साबुन। 10 में से 5 स्कूलों में छात्रों के लिए पानी और साबुन नहीं है और 10 में से 4 स्वास्थ्य केन्द्रों में उपयोग के लिए साबुन और पानी नहीं है। सेनिटाइजर की बात करना तो बहुत दूर की कौड़ी है।

कोलकाता स्थित ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हाइजीन एंड पब्लिक हेल्थ की डायरेक्टर-प्रोफेसर मधुमिता डोबे कहती हैं, "स्वच्छ पानी एक महामारी के खिलाफ लड़ाई के लिए आवश्यक है।" बदलते जलवायु और बीमारी के प्रकोप से बचने के लिए स्वच्छ, सस्ती और सुलभ जल और सुरक्षित शौचालय पहली रक्षा पंक्ति का निर्माण करते हैं। गैर लाभकारी संस्था वाटर एड ने अपनी रिपोर्ट "ऑन द फ्रंटलाइनः द स्टेट ऑफ द वर्ल्डस वाटर 2020" में कहा है, "16 करोड़ भारतीय और दुनिया के कई हिस्सों के कुल 200 करोड़ लोग ऐसे हैं, जिनकी स्वच्छ पानी तक पहुंच नहीं है।"

दोषपूर्ण शौचालय प्रौद्योगिकियों और मल कीचड़ का कुप्रबंधन मिट्टी और भूजल प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। 2012 में दिल्ली स्थित थिंकटैंक सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट द्वारा 71 भारतीय शहरों में किए गए शोध से पता चलता है कि ये शहर पूरी तरह से सीवेज सिस्टम से नहीं जुड़े हैं। इसलिए सीवर सीधे जल निकायों में फेंक दिया जाता है, जो उन्हें प्रदूषण की ओर ले जाता है। जेएमपी रिपोर्ट में कहा गया है कि अफ्रीका के सब-सहारा इलाकों में लोग झीलों, नालों और नदियों से पानी लाने के लिए लंबी दूरी तय करते हैं, जो पहले से ही दूषित हैं, क्योंकि उनमें मिलने वाले अपशिष्ट जल को उपचारित नहीं किया जाता। यह क्षेत्र पहले से ही खुले में शौच के लिए जाना जाता है और 13.82 करोड़ लोगों के पास साफ एवं सुरक्षित पानी की उपलब्धता नहीं है। दुनिया भर में खुले में शौच करने वालों की संख्या सबसे अधिक नाइजीरिया में है। नेशनल ब्यूरो ऑफ स्टैटिस्टिक्स द्वारा प्रकाशित, 2016-17 का मल्टीपल इंडीकेटर क्लस्टर सर्वे बताता है कि यहां 6.9 करोड़ लोग ऐसे हैं, जिनकी पहुंच साफ पानी तक नहीं है।

जर्नल ट्रॉपिकल मेडिसिन एंड इंटरनेशनल हेल्थ की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि ये बेहद परेशान करने वाली बात है कि 180 करोड़ लोगों में से ज्यादातर निम्न और मध्यम आय वाले देशों में रहते हैं, जो मल से दूषित होने वाले भूजल का उपभोग करते हैं। इससे लोगों को डायरिया और अन्य जल जनित बीमारियों का खतरा रहता है। भारत में 60 फीसदी मौतें डायरिया से होती हैं। सेंट्रल ब्यूरो ऑफ इंटेलिजेंस की 2019 की नेशनल हेल्थ प्रोफाइल

महामारी ने दुनिया को ये सीखने का अवसर दिया है कि कैसे जल निकायों की रक्षा कर, वर्षा जल संरक्षण से भूजल रिचार्ज किया जा सकता है

से पता चलता है कि 2017 में 1,362 लोग और 2018 में 1,450 लोग इस बीमारी मरे। अब यह डर भी है कि भूजल प्रदूषण, किन्हीं तरीके से कोविड-19 प्रसार से जुड़ा हो सकता है।

कोविड-19 और जल प्रदूषण का संबंध

चीन के सन यात-सेन यूनिवर्सिटी अस्पताल के शोधकर्ताओं ने कोविड-19 मरीजों पर बीमारी और क्वारंटाइन अवधि के दौरान लगातार नजर रखी। शोधकर्ताओं ने 5 सप्ताह तक उन पर नजर रखी, यहां तक कि तब भी, जब उनका टेस्ट निगेटिव आ गया था। उन्हें डर है कि संभावित मल या मौखिक संचरण छात्रावास, शयनगृह, ट्रेन, बस और क्रूज जहाज में जोखिम बढ़ा सकते हैं। हालांकि अब तक इस तरह का कोई प्रसार साबित नहीं हुआ है फिर भी जांच में इस बात पर जोर दिया गया है कि साफ-सफाई और स्वच्छता बनाए रखने के लिए पर्याप्त और सुरक्षित पानी महत्वपूर्ण है। ये रिसर्च अप्रैल 2020 में *लैंसेट गैस्ट्रोएंटरोलॉजी एंड हेपाटोलॉजी* में प्रकाशित की गई थी।

दिल्ली विश्वविद्यालय के भूगर्भशास्त्र विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर शशांक शेखर कहते हैं, "विश्व स्तर पर जब पानी की पर्याप्त आपूर्ति नहीं होती, तब एक बड़ी आबादी भूजल पर निर्भर करती है।" 2012 के यूनेस्को के एक अध्ययन से पता चलता है कि वैश्विक आबादी का 50 प्रतिशत पीने के लिए भूजल का उपयोग करता है। शेखर कहते हैं कि शहरी क्षेत्रों में लोग पानी की कमी के दौरान बोतलबंद पानी की ओर रुख करते हैं। इसका स्त्रोत भी मुख्य रूप से भूजल ही है। फिर भी देशों ने पानी, सेनिटेशन और हाइजीन (डब्ल्यूएएसएच) को लेकर थोड़ी गंभीरता दिखाई है। वाटर एड की रिपोर्ट बताती है कि जिन देशों में बुनियादी जलापूर्ति सुविधा नहीं है, वे ज्यादातर अफ्रीका में हैं। लेकिन उन्होंने 2010 से 2017 के बीच अपने जलवायु वित्त कोष का केवल 3.94 से 20.64 प्रतिशत पैसा ही डब्ल्यूएएसएच पर खर्च किया था (देखें: *विश्वव्यापी संकट, पेज 57*)। वाटर एड की रिपोर्ट के मुताबिक, इससे पता चलता है कि देशों ने जलवायु परिवर्तन में सुधार लाने के महत्व को मान्यता नहीं दी है।

हालांकि, निराशा के बीच अच्छी खबर यह है कि सभी को साफ व सुरक्षित पानी उपलब्ध कराना असंभव नहीं है। इस महामारी ने दुनिया को ये सीखने का अवसर दिया है कि कैसे जलवायु परिवर्तन प्रभावों से निपटा जा सकता है। जल निकायों की रक्षा कर, वर्षा जल संरक्षण से भूजल रिचार्ज किया जा सकता है। उत्सर्जन और अपशिष्ट जल प्रबंधन के लिए सुरक्षित तकनीकें अपना कर भूजल के साथ-साथ सतह की भी रक्षा की जा सकती हैं। भारत में, केंद्र सरकार के जल शक्ति अभियान का उद्देश्य, जल संरक्षण की दिशा में काम करना है। केंद्रीय जल मंत्री गजेंद्र सिंह शेखावत का दावा है कि भूजल रिचार्ज करने और जल निकायों की रक्षा और नवीकरण के लिए परियोजनाएं शुरू की गई हैं।

“संकट के समय में अहम है पानी की भूमिका”

पानी को सुरक्षित और स्वच्छ बनाने के लिए यह वैश्विक कोशिशों को तेज करने का सही समय हो सकता है

धेसिजेन नायडू

हम एक अभूतपूर्व वैश्विक महामारी से जूझ रहे हैं। शायद यह उस वायरस का ही एक प्रकार है, जिसे हमने 2002-2004 के बीच सार्स महामारी के दौरान सामूहिक प्रयासों से रोक दिया था। कोविड-19 ने पूरी दुनिया को तूफान में धकेल दिया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सुरक्षा और स्वास्थ्य मोर्चे पर इसका गंभीर प्रभाव पड़ा है। व्यक्तिगत और सामूहिक सुरक्षा के लिए हमारी चिंताएं काफी अधिक बढ़ गई हैं। हमारी सरकारें युद्ध स्तर पर रणनीतियां बना रही हैं। संक्रमण रोकने के लिए लॉकडाउन और आइसोलेशन जैसे कदम उठाए जा रहे हैं, ताकि हम अपने सीमित स्वास्थ्य व्यवस्था प्रणाली से पीड़ितों की संख्या को नियंत्रित कर सकें।

पानी संक्रमण की रोकथाम के साथ-साथ संक्रमित और बीमार लोगों के उपचार के लिए भी महत्वपूर्ण है। नियमित रूप से अच्छे से हाथ धोना, वायरस से बचाव और इसे फैलने से रोकने में सबसे बेहतर उपायों में से एक है। कई देशों में बचाव प्रक्रिया के लिए हाथ धोने का अभियान सबसे ऊपर आया है। इसने अनिवार्य रूप से वही किया है, जो आमतौर पर संकट के समय में होता है। इसने पानी की सुरक्षा और स्वच्छता को आइना दिखाया है। एक बार फिर दुनिया खासकर दुनिया के दक्षिण में इसकी जरूरत महसूस हो रही है। आपातकालीन उपायों के लिए बजट प्राथमिकता का उपयोग करते हुए, टैंकर सेवाओं, जल संचयन और भंडारण टैंकों के रूप में पानी तक पहुंच स्थापित करना एक प्रमुख उद्देश्य बन गया है। हालांकि यह अल्पकालिक उपाय है। इसी तरह मलिन बस्तियों में स्वच्छता बनाए रखना और आबादी को सुरक्षित रखना भी सरकार की ओर से कोविड-19 से लड़ने के लिए बनाए गए प्लान में महत्वपूर्ण चुनौती है। यह अल्पकालिक खाद्य सुरक्षा और आर्थिक सुरक्षा उपायों के साथ मिलकर हमें एक व्यक्ति व राष्ट्र के रूप में अच्छा आकार देगा, खासकर इस संकट के दौरान व संकट के बाद। विकास गति का धीमा होना, इस महामारी से जुड़े कई जोखिमों में से एक है। इसमें सतत विकास लक्ष्य भी शामिल है। अधिक संभावना है कि एसडीजी-6, पानी और स्वच्छता के लिए रखे लक्ष्य में आगे देरी होगी। यह वैश्विक क्षतिपूर्ति में लगने वाले समय पर निर्भर होगा। इसमें लंबा समय लग सकता है। आपातकालीन कार्रवाई की इस हड़बड़ाहट में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हमारे पास इसके उलट करने का भी अवसर है। हम वास्तव में मध्यम अवधि में एसडीजी को लेकर अपने प्रयासों में तेजी ला सकते हैं और लंबे समय में दीर्घकालिक विकास और कम कार्बन अर्थव्यवस्था के मार्ग पर दृढ़ता से बढ़ सकते हैं। यह वह पल है जब एक तरफ दुनिया के कई देशों में असुरक्षित या गंदा पानी व खराब सफाई कोविड-19 के जोखिम के प्रमुख कारक हैं, वहीं दूसरी तरफ इस पर काबू पाना और आरोग्य प्राप्ति की रणनीति बनाना भी प्रमुख है। देश सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक राजनीतिक सावधानी और निजी क्षेत्र में अधिक ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। यह उत्प्रेरक कार्रवाई में शामिल होने का सही समय है, जिससे मौजूदा व्यवस्था से छलांग लगाई जा सके और सहगामी, होशियार तरीके से, पर्यावरण के अनुकूल अपशिष्ट और खराब पानी के ट्रीटमेंट के साथ सार्वभौमिक रूप से पानी और स्वच्छता पर काम हो सके। यह उर्वरक, ऊर्जा, महंगे रसायनों, वसा और प्रोटीन के उत्पादन के लिए अपशिष्ट और खराब जल के लिए लाभ के लिए औद्योगीकरण द्वारा पूरक होना चाहिए। ये कार्य आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय रूप से परिवर्तनकारी होंगे।

इसे वास्तविक बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं, जिन पर ध्यान देने की जरूरत है। सबसे पहले, हमें इस क्षेत्र में वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के विशाल भंडार को मूर्त रूप देने की जरूरत है जिससे उत्पाद और सेवाएं जमीन पर उतर सकें। उत्पाद और व्यवसाय के विकास के लिए हमें पर्याप्त समर्थन की जरूरत होगी। इसके साथ ही हमें प्राचीन विनियामक नियमों और संचालन प्रक्रियाओं का भी कायापलट करना होगा। दूसरा, हमें बड़े पैमाने पर कार्यान्वयन, टिकाऊ संचालन और रखरखाव के लिए नए आर्थिक मॉडल की जरूरत है। तीसरा, हमें विज्ञान और समाज, सरकारों और व्यापार, स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय के बीच साझेदारी को बढ़ाने की भी जरूरत है। कोविड -19 ने वैश्विक एकजुटता के लिए आशा की नई किरण पेश की है। इस बात पर ध्यान देना है कि भले ही हम जरूरत के हिसाब से अनजाने दोस्त हैं, लेकिन हमें काम में दोस्त बनने की आवश्यकता है।

(लेखक दक्षिण अफ्रीकी सरकार के जल अनुसंधान आयोग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं)

निजता की निगरानी!

अपने नागरिकों की निगरानी एक बुरी नजीर है और हो सकता है कि यह इस स्वास्थ्य संकट के खत्म होने के बाद भी जारी रहे

अक्षित संगोलमा

कोविड-19 के मरीजों के नाम जारी करने से लेकर, मोबाइल ऐप के माध्यम से लोगों को उनकी निजी जानकारी साझा करने तक, केंद्र और राज्य सरकारें इस स्वास्थ्य संकट के समय खुलेआम लोगों की निजता और मानवीय मर्यादा का उल्लंघन कर रही हैं। दरअसल, सरकारें मोबाइल निगरानी और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग से चेहरे की पहचान का एक पुरातन कानून का दोहन कर रही है जो टेलीविजन के आविष्कार से पहले वजूद में आया था। यह कानून है महामारी अधिनियम (एपिडेमिक एक्ट) 1897, जो पिछले 123 वर्ष से बिना किसी बड़ा बदलाव के चल रहा है। *इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल एथिक्स* में स्वास्थ्य सलाहकार पीएस राकेश द्वारा वर्ष 2016 में प्रकाशित एक शोधपत्र में पाया गया कि यह कानून सरकारों को लोगों की स्वायतता, गोपनीयता और स्वतंत्रता पर परिस्थिति को बिना स्पष्ट तौर पर परिभाषित करते हुए लगाम लगाने की इजाजत देता है। यह कानून किसी नैतिक और मानव अधिकारों पर तो कुछ नहीं कहता, साथ ही, अधिकारियों को भी किसी मुकदमे या कानूनी कार्रवाई से सुरक्षा देता है। 1897 का यह कानून, 2005 के राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन कानून के साथ मिलकर कोविड-19 से लड़ने के कड़े कदमों को उठाने के लिए कानूनी नींव प्रदान करता है।

डिजिटल निगरानी के अलावा सामाजिक नियंत्रण स्थापित करने के लिए राज्य सरकारें पुलिस के द्वारा इस्तेमाल में लाए दाने वाली तकनीकों का इस्तेमाल अपने नागरिकों के ऊपर नजर रखने के लिए कर रही हैं। प्रशासन हर वे तरीके इस्तेमाल करने के लिए उत्सुक है जिससे वायरस के प्रसार को रोका जा सके, लेकिन जनता के ऊपर बिना किसी मजबूत कानूनी ढांचे के निगरानी की वजह से सार्वजनिक सुरक्षा और व्यक्तिगत गोपनीयता के बीच अनिश्चित संतुलन बनने के खतरे की तरफ इशारा करता है। उदाहरण के लिए केंद्र सरकार द्वारा प्रचारित आरोग्य सेतु मोबाइल एप्लीकेशन को देखें तो इसमें भी निजता की चिंताएं शामिल हैं, जैसे ऐप पर दी गई जानकारी को कैसे उपयोग या साझा किया जाएगा।

इसी तरह, राज्य सरकारें ऐप और वेबसाइट का बिना निजता सुरक्षा उपायों के जारी कर रही हैं और जिसका उपयोग बड़ी संख्या में लोगों के गंभीर स्वास्थ्य और निजी जानकारी इकट्ठा करने में हो रहा है। तमिलनाडु

नया खतरा

केंद्र सरकार से लेकर राज्य सरकारें, अंधाधुंध तरीके से कोविड-19 की निगरानी वाले ऐप जारी कर रही हैं

आरोग्यसेतु

डेवलपर : नेशनल इंफॉर्मेटिक्स सेंटर
डाउनलोड्स : एक करोड़ से अधिक
अनुमति चाहिए : ब्लूटूथ, जीपीएस, संपर्क और स्टोरेज
जानकारी चाहिए : निजी जानकारी जैसे नाम, उम्र, लिंग, स्थान, व्यवसाय और यात्रा का इतिहास के साथ स्वास्थ्य संबंधी जानकारी

गोपनीयता की समस्या

उपयोगकर्ता को उपयोग और गोपनीयता नीति की शर्तों तक पहुंचने के लिए सभी विवरणों को पंजीकृत और प्रस्तुत करना होगा। गोपनीयता नीति कई बार मैं शब्द का उपयोग करती है। इस बात पर अस्पष्टता रहती है कि बाद में डेटा का उपयोग कैसे किया जा सकता है। उपयोगकर्ता का डेटा लीक होने या अनधिकृत उद्देश्य के लिए उपयोग किए जाने के मामले में सरकार उत्तरदायी नहीं है। उपयोगकर्ता के डेटा का दुरुपयोग नहीं होगा, इस पर गोपनीयता नीति कुछ नहीं कहती।

टेस्ट योरसेल्फ

डेवलपर : इनोवैक्सर आईएनसी
उपयोगकर्ता : 50,000
जानकारी चाहिए : अगर उपयोगकर्ता देना चाहे तो निजी जानकारी जिसमें इंटरनेट उपयोग का इतिहास शामिल है, आईपी एड्रेस की सहायता से सामान्य भू-भाग की जानकारी और सोशल मीडिया की जानकारी।

गोपनीयता की समस्या

यह वेबसाइट जो खुद के माध्यम से कोविड-19 के संक्रमण का मूल्यांकन करने का दावा करती है, बहुत सारी स्वास्थ्य संबंधी इकट्ठा करती है जिससे उपयोगकर्ता को कोई लाभ नहीं मिलता। जानकारों ने आगाह किया है कि ऐसी गैर जरूरी जानकारियां इकट्ठा करने के बजाए सरकार को उपयोगकर्ता को सीधे किसी चिकित्सक से दूर से ही संपर्क करने की सुविधा देनी चाहिए थी।

तमिलनाडु क्वारंटाइन मॉनिटर

डेवलपर : पिक्सोन एआई सॉल्यूशन्स प्राइवेट लिमिटेड
डाउनलोड्स : 100,000
अनुमति चाहिए : लाइव निगरानी के लिए जीपीएस
जानकारी चाहिए : आवाजाही की जानकारी

गोपनीयता की समस्या

ऐप में गोपनीयता नीति या उपयोग की शर्तें नहीं हैं और इस बात की जानकारी नहीं देती है कि डेटा का उपयोग कैसे किया जाएगा, जो भारत में सामान्य डेटा सुरक्षा विनियमन के तहत अनिवार्य है।

महाराष्ट्र महाकवच

डेवलपर : कई सरकारी और निजी संस्थाएं
डाउनलोड्स : 10,000
अनुमति चाहिए : जीपीएस लोकेशन
जानकारी चाहिए : निजी जानकारी, स्थान की जानकारी, तस्वीरें

गोपनीयता की समस्या

ऐप में कृत्रिम बुद्धिमता का उपयोग करने के बावजूद सामान्य गोपनीयता नीति है

(स्रोत : दिविज जोशी, मोज़िला में प्रौद्योगिकी नीति विशेषज्ञ और मीडिया रिपोर्ट)

अपने क्वारंटाइन ऐप से पुलिस के माध्यम से लोगों की निगरानी कर रही है। बिना गोपनीयता नीति और उपयोग की शर्तों के साथ ऐप को जारी कर दिया। मानव अधिकारों के लिए लड़ने वाली एक गैर लाभकारी संगठन एक्सेस नाउ की रिपोर्ट चेताती है कि स्थान की निगरानी बिना किसी सुरक्षा उपाय के रखने से वे जानकारियां भी साझा हो सकती हैं जिनका जिनका कोरोनावायरस के संग लड़ाई में कोई काम नहीं है और ऐसे पूरा देश निगरानी की जद में आ जाता है।

यह स्थिति वैश्विक स्तर पर भी समान रूप से गंभीर है क्योंकि कई देश अपने कानूनों में बदलाव कर निरंकुश होकर बिना जनता की सहमति के उन पर नजर रखने का अधिकार पा रहे हैं। प्राइवेसी इंटरनेशनल के एडवोकेसी डायरेक्टर एडिन ओमानोविक कहते हैं, "निगरानी का जो दौर हम लोग देख रहे हैं, वह वाकई अभूतपूर्व है। यह 9/11 के उस समय से भी आगे निकल गया है जब से विश्व में सरकारें जनता पर निगरानी रखने लगी हैं। कानून, ताकत और तकनीकों का उपयोग विश्वभर में मानव की आजादी पर एक गंभीर और लंबे समय तक चलने वाला खतरा पैदा कर रहा है।" यह संस्था 100 दूसरे नागरिक संगठनों के साथ मिलकर वैश्विक स्तर पर सरकारों से कोविड-19 के समय उठाए गए आक्रामक कदमों से मानव अधिकारों को सुरक्षित रखने की सिफारिश कर रही है। वह आगे कहते हैं कि यह जाहिर है कि असाधारण संकट के लिए असाधारण कदमों की जरूरत होती है, लेकिन ऐसे वक्त में अद्वितीय बचाव की भी जरूरत होती है।

सरकारें न केवल लापरवाही से प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रही हैं, बल्कि लोग सवाल पूछने से भी डरते हैं। दिल्ली स्थित सेंटर फॉर इंटरनेट एंड सोसाइटी की नीति अधिकारी मीरा स्वामीनाथन कहती हैं, "नागरिक अभी अपने परिवारों की चिकित्सीय जानकारी सार्वजनिक डेटाबेस और मोबाइल ऐप पर अंधाधुंध रूप से साझा कर रहे हैं, जो उन्होंने सामान्य परिस्थितियों में कभी नहीं किया होगा।"

साथिया वेंकटेशन 23 मार्च को न्यूयॉर्क से हैदराबाद लौटीं और तब से अब तक सेल्फ क्वारंटाइन में हैं। वह उसके बाद से ही लगातार उत्पीड़न और डर के माहौल में रह रही हैं। वह कहती हैं, "अब तो हद ही हो गई है। पहले एयरपोर्ट के अधिकारियों ने मेरी कलाई पर सेल्फ-क्वारंटाइन का ठप्पा लगाया। तीन दिन के बाद नगर निगम के लोग आकर मेरे घर के आगे क्वारंटाइन का एक नोटिस चिपका गए। उन्होंने कहा कि वह उनका परीक्षण करने बीच-बीच में आएंगे। हालांकि, उसके बाद से कोई भी उनकी तरफ से नहीं आया। इस दौरान, वह नोटिस मेरे सोसाइटी के व्हाट्सऐप ग्रुप में हलचल मचाने लगा। मुझे पता है कि आपातकालीन जरूरत पड़ने पर मेरी मदद को अब कोई नहीं आने वाला।" वेंकटेशन ने एक और चिंताजनक बात कही, "सरकार के विभागों के बीच जानकारियां साझा नहीं हो रही हैं। मैंने एयरपोर्ट पर अपनी सारी जानकारी भरी थी। कुछ दिन बाद मुझे स्थानीय पुलिस का फोन आया कि उन्हें मेरा पता चाहिए। उनका कहना था कि एयरपोर्ट से उन्हें सिर्फ मेरा फोन नंबर मिला।"

कई देश निगरानी और लोगों की जानकारी इकट्ठा करने के तरीके अपना रहे हैं लेकिन पुराने अनुभव कहते हैं कि ये जानकारियां किसी काम नहीं आतीं। वर्ष 2014 में अफ्रीका में इबोला के प्रसार पर हुए शोध में योगदान देने वाली सियन मार्टिन मेकडोनाल्ड लिखती हैं, "यह धारणा है कि लोगों की जानकारियां इकट्ठा कर उसका विश्लेषण कर स्वास्थ्य संबंधी कार्यों को गति और बल मिलेगी और मोबाइल नेटवर्क के माध्यम से इकट्ठा जानकारी से स्वास्थ्य का ढांचा ठीक किया जा सकता है।" मार्च 2016 के शोधपत्र में वह कहती है कि जानकारों ने सुझाव दिया था कि लोकेशन की जानकारी हासिल कर लोगों के संपर्क की जानकारी इकट्ठा की जा सकती है। इस

गहन निगरानी

यूरोपीय संघ और कम से कम 23 देश नागरिकों पर नजर रख रहे हैं, जो कोविड संकट के दौरान गैर-सहमति से सरकार के डिजिटल निगरानी में अचानक वृद्धि को उजागर करते हैं। यहां कुछ कदम हैं जो चिंताएं बढ़ाते हैं

ऑस्ट्रिया

सबसे बड़ी दूरसंचार कंपनी ए-1, **स्वेच्छा से सभी मोबाइल फोन उपयोगकर्ताओं के प्रोफाइल के साथ आवाजाही की जानकारी सरकार को प्रदान कर रही है।** कंपनी ने अपने ग्राहकों को बिना बताए या उनकी सहमति के बिना सूचना साझा करने की शुरुआत की।

ऑस्ट्रेलिया

एडिलेड राज्य में पुलिस **कोविड रोगियों और उनके आवाजाही पर नजर रखने के लिए आपराधिक जांच के लिए उपयोग किए जाने वाले एक निगरानी वाले तंत्र पर भरोसा** कर रही है। पुलिस को किसी व्यक्ति की निगरानी के लिए सिर्फ उसका फोन नंबर चाहिए और इसके बाद सारी जानकारी स्वास्थ्य विभाग के साथ साझा की जा रही है।

बुल्गारिया

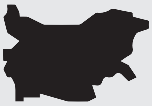

दूरसंचार से ग्राहक डेटा की मांग करने का अधिकार आंतरिक मंत्रालय को देने के लिए इलेक्ट्रॉनिक संचार अधिनियम में संशोधन किया गया है। संशोधन का मतलब है कि **मंत्रालय को निगरानी करने के लिए अदालत के आदेश की आवश्यकता नहीं है और संकट खत्म होने के बाद भी यह विशेषाधिकार जारी रहेगा।**

चीन

अली पे और वीचैट जैसे ऐप ऐसे व्यक्तियों को चिन्हित कर रहे हैं जिनमें संक्रमण का जोखिम अधिक है और उन्हें इसके बाद क्वारंटाइन में भेज दिया जाता है या भीड़भाड़ से अलग रख दिया जाता है। लोगों को कहीं आने-जाने के लिए इन ऐप के माध्यम से ग्रीन क्लियरेंस प्राप्त करना जरूरी होता है। कंपनियां ऐसे सॉफ्टवेयर भी विकसित कर रही हैं जो कैमरे के माध्यम से बिना संपर्क में आए तापमान का पता लगा सके। कुछ शहर संक्रमित पड़ोसियों की सूचना देने पर इनाम भी दे रहे हैं।

कोलंबिया

एक पुराने ऐप का नाम बदलकर इसे कोरोनऐप के नाम से वायरस की जानकारी हासिल करने के लिए जारी किया गया है। इस ऐप को भारी मात्रा में निजी जानकारी चाहिए जिसमें जातीयता की जानकारी भी शामिल है। इस बात की पारदर्शिता भी नहीं है कि इन जानकारियां का कौन कितना इस्तेमाल कर सकेगा।

यूरोपीय संघ

दूरसंचार कंपनियां और प्रशासन एक ऐसी व्यवस्था बनाने जा रही है जिसमें लोग अपने स्थान की जानकारी साझा करेंगे। अब तक इस व्यवस्था में कुछ पारदर्शिता थी जिससे पता रहता था कि कितनी जानकारी साझा की जा रही है और कितने समय तक यह कानूनन चलेगा। सरकारों के अलावा यूरोपीय कमिशन ने दूरसंचार कंपनियों से वायरस के फैलाव का पता लगाने के लिए और हॉटस्पॉट का पता लगाने के लिए जानकारियां मांगी हैं।

इजराइल

घरेलू सुरक्षा एजेंसी शिन बेट ने कोविड-19 प्रकोप पर नजर रखने के लिए **आतंकवादियों के लिए इस्तेमाल की जाने वाली अपनी सेलुलर जियोट्रैकिंग तकनीक को फिर से तैयार किया है।**

केन्या

एमसफारी ऐप की मदद से संपर्क का पता लगाने के लिए इस ऐप को एक निजी कंपनी ने बनाया है। इसका इस्तेमाल सार्वजनिक परिवहन में लगी बस, टैक्सी और दूसरे परिवहन व्यवस्था में यात्रियों की निगरानी के लिए किया जा रहा है। चालकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे इस ऐप को डाउनलोड करके सभी यात्रियों को इस पर पंजीकृत करेंगे। **सरकार उन सभी यात्रियों पर निगरानी रखकर उन्हें 14 दिन के क्वारंटाइन में रखेगी।**

दक्षिण कोरिया

यहां की सरकार उन लोगों की जानकारी इकट्ठी कर ऑनलाइन डाल रही है जो या तो संक्रमित हैं या इसकी आशंका है। यहां मौजूदा डाटाबेस को नए डेटाबेस से मिलाकर सीसीटीवी फुटेज, क्रेडिट कार्ड और लोकेशन के इतिहास की निगरानी की जा रही है। यह जानकारियां ऑनलाइन जारी की जा रही है जिसमें लोग कब काम से वापस निकले, सबवे में उन्होंने मास्क पहना या नहीं, वे किस स्थान पर बार-बार गए और किस स्थान पर उनकी जांच की गई आदि शामिल हैं। अब सरकार ने निजी जानकारी जारी करना बंद किया है क्योंकि भीड़ ने ऐसे लोगों को परेशान करना शुरू कर दिया था।

ताइवान

प्रशासन यहां एक्टिव मोबाइल नेटवर्क की निगरानी कर क्वारंटाइन को सुनिश्चित कर इसके संपर्क में आने वाले लोगों की पहचान कर रहा है। अगर किसी का मोबाइल नेटवर्क घर के बाहर एक्टिव होता है तो प्रशासन सतर्क हो जाता है।

ट्यूनीशिया

इनोवा रोबोटिक्स ने पीगार्ड रोबोट का संचालन शुरू करने के लिए आंतरिक मंत्रालय के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। ये रोबोट इंफ्रारेड कैमरों के एक सेट से लैस होंगे और लोगों को घर छोड़ने से रोकेंगे। इन रोबोटों को कहां तैनात किया जाएगा, वे कौन सी जानकारी जुटाएंगे, इसकी कोई जानकारी नहीं है।

संयुक्त राष्ट्र

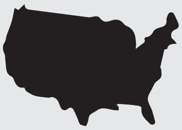

यहां शोधकर्ता फेसबुक के डेटा का इस्तेमाल सामाजिक दूरी का आकलन करने के लिए कर रहे हैं। जिन उपयोगकर्ताओं ने फेसबुक पर अपना लोकेशन साझा की है, उनके डेटा के इस्तेमाल से एक तरह का नक्सा खींचा जा रहा है। इस काम में गोपनीयता और जानकारियों की रक्षा प्रभावित होती है क्योंकि उपयोगकर्ता ने सिर्फ फेसबुक को यह जानकारी साझा करने की अनुमति दी होती है। गूगल की जैव प्रौद्योगिकी कंपनी वेरिली ने कोविड-19 की स्क्रीनिंग वेबसाइट लॉन्च की है। स्क्रीनिंग के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए, उपयोगकर्ताओं के पास गूगल खाता होना चाहिए और गूगल के साथ जानकारी साझा करने के लिए सहमत होना चाहिए। वेबसाइट कैलिफोर्निया के गवर्नर कार्यालय और अन्य संघीय अधिकारी के सहयोग से काम कर रही है।

स्रोत: एक्सेस नाउ और प्राइवेसी इंटरनेशनल

प्रक्रिया में संक्रमण के फैलाव पर नजर रखने के लिए लोगों की आवाजाही की निगरानी होती है जिससे इसका पूर्वानुमान आसानी से लगाया जा सकता है। हालांकि, असल में इस घटना के बाद से मानवता के लिए काम करने वाली संस्थाओं ने पाया कि डिजिटल माध्यमों के जरिए संपर्कों की निगरानी लीबिया, जो इस संक्रमण का केंद्र था, में सामान्य बात हो गई। सूचना प्रणाली के विभिन्न हिस्सों- सरकार, अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों और निजी कंपनियों के बीच समन्वय की अनुपस्थिति के कारण इबोला प्रतिक्रिया के डिजिटलीकरण ने मानवीय प्रतिक्रिया को और अधिक कठिन बना दिया। इसमें शामिल महत्वपूर्ण कानूनी, वित्तीय और व्यावहारिक जोखिमों को हल नहीं किया गया।" कुछ इसी तरह का अनुभव कोविड-19 के संक्रमण के समय भी सामने आ रहा है जिसमें निगरानी का स्तर इबोला से कहीं ज्यादा है। दक्षिण कोरिया में जब निगरानी अगले स्तर तक पहुंची तो लोग अपनी जांच कराने से बचने लगे। इस देश में लोगों की निगरानी जियो लोकेशन के साथ सीसीटीवी फुटेज और क्रेडिट कार्ड के रिकॉर्ड के माध्यम से की जा रही है। जनवरी तक यहां संक्रमित लोगों की जानकारी अपलोड होती रही जिसमें उन्होंने मास्क पहना था या नहीं, या वह कौन सी जगह घूमने गए, जैसी जानकारियां शामिल रहती थीं। लोग भीड़ के हमले के डर से अपनी जांच करवाने से बचने लगे और प्रशासन को सारी जानकारी ऑनलाइन साझा करने के अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना पड़ा।

एक्सेस नाउ की रिपोर्ट कहती है, "एक महामारी व्यापक और अनावश्यक डेटा एकत्र करने का कोई बहाना नहीं है। स्वास्थ्य डेटा तक पहुंच उन लोगों तक सीमित होगी जिन्हें उपचार, अनुसंधान करने और अन्यथा संकट का समाधान करने के लिए जानकारी की आवश्यकता होती है। जानकारी को एक अलग डेटाबेस में सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जाना चाहिए।" यह रिपोर्ट आगे कहती है कि जानकारियों को संकट का समय खत्म होने के बाद मिटा देना चाहिए। निगरानी के मुद्दे पर रिपोर्ट गोपनीयता की सुरक्षा और सटीकता में सुधार करने के लिए मोबाइल उपकरणों के उपयोग के बजाय विस्तृत इन-पर्सन संपर्क ट्रेसिंग की सिफारिश करती है। जियो लोकेशन ट्रैकिंग के मामले में, डेटा को बिना नाम के होना चाहिए। रिपोर्ट में निजी कंपनियों द्वारा डेटा के दुरुपयोग के खिलाफ सख्त सुरक्षा उपायों की भी मांग की गई है।

रिपोर्ट के अनुसार, "सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट से निपटने के लिए एप्लिकेशन बनाते समय, निजी कंपनियों को अपने उत्पादों के उपयोग से प्राप्त डेटा से पैसा कमाने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। इसके अलावा, डेटा के बाद में होने वाले उपयोग या आगे की प्रक्रिया पर स्पष्ट सीमाएं होनी चाहिए।" भारत में अधिकांश राज्य सरकार के ऐप निजी कंपनियों द्वारा विकसित किए गए हैं और उनमें से कई बिना गोपनीयता नीति के हैं। कंपनियां संयुक्त राज्य में भी अग्रणी भूमिका निभा रही हैं।

निजता का हनन बड़ा खतरा है जिसे कोविड-19 अचानक से बढ़ा सकता है। कई देशों ने अपने कानून में मनमाने तरीके से बदलाव कर निजता हनन के अधिकार पा लिए हैं और यह स्वास्थ्य संकट के खत्म होने के बाद भी जारी रहेगा। लेखक युवाल नोआह हरारी ने फाइनेंशियल टाइम्स में प्रकाशित लेख के जरिए चेताया कि यह दौर न केवल निगरानी के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले तरीकों को सामान्य बना देगा बल्कि उन देशों में भी यह लागू हो जाएगा जो पहले इस निगरानी का खारिज कर चुके हैं। इससे सरकार द्वारा की जाने वाली हमारी निगरानी ओवर द स्किन से अंडर द स्किन हो जाएगी। यानी सरकार पता चल जाएगा कि हमारे जेहन में क्या चल रहा है। वह कहते हैं कि जब आप स्मार्टफोन के स्क्रीन को उंगली से टच करते थे तो सरकार ये जानना चाहती थी कि आप किस जगह क्लिक कर रहे हैं, लेकिन अब स्क्रीन छूते हैं तो सरकार ये भी जानना चाहती है कि आपकी उंगली का तापमान क्या है और आपकी त्वचा के भीतर का रक्तचाप कितना है।

भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण
AIRPORTS AUTHORITY OF INDIA

समावेशी एवं सतत विकास के लिए प्रतिबद्ध कदम

पर्यावरण के प्रति सजग एवं संवेदनशील सार्वजनिक क्षेत्र का उद्यम होने के नाते भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण (भाविप्रा), पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 के तहत अपने हवाई अड्डों पर समावेशी और सतत विकास (Inclusive and sustainable development) के लिए प्रतिबद्ध है। इस संदर्भ मे भाविप्रा ने कार्बन उत्सर्जन, ध्वनि प्रदूषण आदि को कम करने की दिशा में अनेक प्रभावी कदम उठाए हैं।

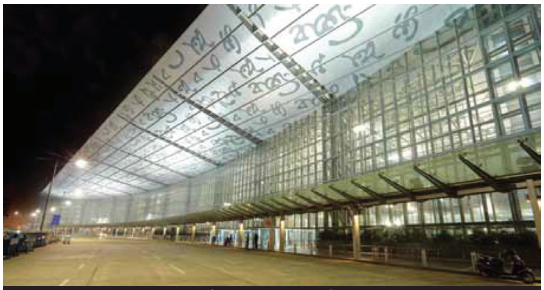

कोलकाता एयरपोर्ट

ठोस कचरा प्रबंधन

हवाई अड्डों पर की जाने वाली विभिन्न गतिविधियाँ काफी मात्रा में कचरे का उत्पादन करती हैं। इस कारण उत्पन्न होने वाले कचरे के परिणामस्वरूप इसके प्रबंधन का मुद्दा बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। भाविप्रा ने उत्पादित कचरे के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए कई महत्वपूर्ण उपाय किए हैं। चरण -1 में यह योजना छह प्रमुख हवाई अड्डों अर्थात् कोलकाता, कोयम्बटूर, त्रिवेंद्रम, वाराणसी, भुवनेश्वर और अहमदाबाद पर लागू की गई है और द्वितीय चरण में 34 महत्वपूर्ण हवाई अड्डों को चुना गया है। इन महत्वपूर्ण प्रयासों से न केवल कचरे से निजात मिल रही है बल्कि हम वेस्ट टू वेल्थ यानी कचरे से सम्पन्नता की ओर टिकाऊ कदम बढ़ा रहे हैं।

एकल प्लास्टिक उपयोग पर प्रतिबंध

कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हुए, भाविप्रा ने देश भर में अपने हवाई अड्डों पर "एकल-उपयोग" प्लास्टिक वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया है जिसका आकलन क्वालिटी काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा किया जाता है। एकल उपयोग की प्लास्टिक वस्तुओं जैसे स्ट्रॉ, प्लास्टिक कटलरी, प्लास्टिक प्लेट आदि पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया गया है। अभी तक 85 हवाई अड्डों को एकल-उपयोग प्लास्टिक मुक्त कर दिया है।

कार्बन तटस्थ एवं पर्यावरणीय दृष्टि से सतत विकास

वैश्विक नागरिक उड्डयन में कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का 4-5% हिस्सा है और ये उत्सर्जन निरंतर बढ़ रहा है। इस मुद्दे से निपटने के लिए भाविप्रा ने हवाई अड्डों को कार्बन तटस्थ सतत स्थिर(कार्बन न्यूट्रल सस्टेन) बनाने के उद्देश्य से अपने चार हवाई अड्डों, जैसे कि कोलकाता, भुवनेश्वर, त्रिवेंद्रम और वाराणसी हवाई अड्डों पर एयरपोर्ट काउंसिल इंटरनेशनल-एयरपोर्ट कार्बन प्रत्यायन (एसीआई-एसीए) कार्यक्रम भी शुरू किया है। इन सभी हवाई अड्डों ने निर्धारित आवश्यकता को पूरा किया और ACI-ACA प्रोग्राम के लेवल-1-मैपिंग में प्रवेश कर लिया है। अगले चरण के रूप में अब भाविप्रा इन हवाई अड्डों पर ग्रीनहाउस गैस (GHG) उत्सर्जन पर ध्यान केंद्रित कर रहा है।

मौन हवाई अड्डे

उड़ानों की संख्या में वृद्धि के साथ, हवाई अड्डों पर ध्वनि प्रदूषण भी बढ़ रहा है, जो यात्रियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। मानव स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण हानिकारक प्रभाव के प्रति संवेदनशील होने के नाते, भाविप्रा लगातार ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय करता है। भाविप्रा GRIHA(Green Rating for Integrated Habitat Assessment) मानदंडों के अनुरूप प्रभावी शोर प्रबंधन कार्यक्रमों को लागू कर रहा है। ध्वनि प्रबंधन को प्रमुख हवाई अड्डों पर लागू किया गया है। आपातकालीन स्थितियों में घोषणाएं इसकी परिधि से परे हैं।

इन सतत और महत्वपूर्ण प्रयासों द्वारा आज भाविप्रा स्वच्छ एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरुक भारत की परिकल्पना को साकार करने की दिशा में निरंतर बढ़ रहा है।

अगरतला
अहमदाबाद
अमृतसर
बागडोगरा
बेलगाम
भोपाल
भुवनेश्वर
भुज
कालीकट
चंडीगढ़
चेन्नई
कोयम्बटूर
देहरादून
डिबरूगढ़
दीमापुर, गया
गोरखपुर
गोवा
गुवाहाटी
इंफाल
इंदौर
जबलपुर
जामनगर
जयपुर
जम्मू
जोधपुर
जोरहाट
कांगड़ा-गग्गल
खजुराहो
कोलकाता
लेह
लखनऊ
मदुरै
मंगलौर
पटना
पोर्ट ब्लेयर
प्रयागराज
पुणे
राजमुंदरी
राजकोट
रायपुर
रांची
श्रीनगर
सिलचर
सूरत
तूतीकोरिन
तिरुपति
त्रिवेंद्रम
उदयपुर
वडोदरा
वाराणसी
विजयवाड़ा
विशाखापत्तनम
अगाती
आदमपुर
आगरा
भाटिन्डा
भावनगर
बीकानेर
दीव
ग्वालियर
हुबली
जैसलमेर
जलगांव
झारसुगुडा
कुडप्पा
कांडला
कानपुर
किशनगढ़
कोल्हापुर
कुल्लू
लीलाबारी
लुधियाना
मैसूर
पाक्योंग
पंतनगर
पठानकोट
पोरबंदर
पांडिचेरी
सलेम
शिलांग
शिमला
तेजपुर

भविप्रा-प्रचालन विभाग

@AirportsAutorityOfIndiaOfficial @AAI_Official @aaiofficial http://www.aai.aero

फोटो : रॉयटर्स

अमेरिका स्थिति फार्मा कंपनी आर्कटरस थेरापेटिक्स में टीका बनाने के प्रयास जारी हैं। दुनियाभर में 20 मार्च तक 42 टीके प्रीक्लीनिकल अवस्था में थे

टीका कितनी दूर

कोविड–19 का तोड़ निकालने के लिए दुनियाभर में फार्मा कंपनियां टीके की खोज में जुटी हैं

विभा वार्ष्णेय

दुनिया की अधिकांश आबादी कोरोनावायरस (कोविड-19) महामारी और इसके प्रसार को रोकने के लिए लगे सार्वजनिक प्रतिबंधों से प्रभावित है। लेकिन इस महामारी ने कई कंपनियों को दवाइयों, टीके और डायग्नोस्टिक्स का परीक्षण करने और बनाने के लिए प्रोत्साहित किया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, मार्च 2020 तक सार्स-सीओवी-2 के 42 टीके प्रीक्लिनिकल चरण में थे और दो टीके क्लीनिकल ट्रायल्स के प्रथम चरण में पहुंच चुके थे। इसी तरह, अंतरराष्ट्रीय गैर लाभकारी संगठन फाउंडेशन फॉर इनोवेटिव न्यू डायग्नोस्टिक्स के अनुसार, 38 में से कुल 36 इम्मयूनोएसेज पर परीक्षण चल रहे हैं। नए उपचारों का समर्थन करने के लिए यूनाइटेड स्टेट्स फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा चलाए गए “कोरोनोवायरस उपचार त्वरण कार्यक्रम” के डेटा से पता चला कि 10 चिकित्सीय एजेंटों पर सक्रिय परीक्षण चालू थे और अन्य 15 चिकित्सीय एजेंट योजना के चरण में थे। इन प्रयासों का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन है। वॉल स्ट्रीट पहले से ही इन उत्पादों को बनाने में लगी बायोटेक कंपनियों पर नजर रखे हुए है। नैसडैक के अनुसार, कैलिफोर्निया स्थित एक कंपनी डायनावैक्स टेक्नोलॉजीज कॉर्प, जो कम खुराक पर टीकों को प्रभावी बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला सहायक उपकरण बनाती है, इस उद्यम में निवेश करेगी। यह कंपनी क्वींसलैंड विश्वविद्यालय के साथ काम कर रही है और ओस्लो स्थित गैर-लाभकारी निधि, कोएलिशन फॉर एपिडेमिक प्रीपेयर्डनेस इनोवेशन्स (सीईपीआई) ने इस प्रोजेक्ट को फंड किया है। सीईपीआई ने कोविड-19 टीके की खोज में 29.2 मिलियन डॉलर के आसपास का निवेश किया है। यह संगठन इस टीके के कम से कम तीन खोजकर्ताओं को फंड करने का लक्ष्य रखता है। वैश्विक इस्तेमाल के लिए इस टीके को विकसित कर पाने के लिए 2 बिलियन डॉलर का निवेश अनुमानित है। वर्तमान में दवाइयों, टीकों और डायग्नोस्टिक्स पर अधिकांश शोध छोटे बायोटेक कंपनियों और विश्वविद्यालयों द्वारा किए जा रहे हैं, जो अपने नतीजों को द बिग फोर- ग्लैक्सोस्मिथक्लाइन, सनोफी, मर्क अथवा फाइजर को बेचेंगे। वैक्सीन बाजार का 85 प्रतिशत तक का हिस्सा इन चार कंपनियों के नियंत्रण में है। इन छोटी कंपनियों में से कई टीकों को विकसित करने के लिए नई तकनीकों का उपयोग कर रही हैं। उदाहरण के लिए, बोस्टन स्थित मॉडर्न नामक कंपनी संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वास्थ्य विभाग के तहत आने वाले नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एलर्जी एंड इंफेक्शियस डिजीज (एनआईएआईडी) के साथ मिलकर एक राइबोन्यूक्लिक एसिड आधारित वैक्सीन पर काम कर रही है जो वायरस पर स्पाइक प्रोटीन के लिए कोड करता है। कंपनी पहले ही वैक्सीन की खुराक को फेज वन सेफ्टी ट्रायल के लिए एनआईएआईडी वैक्सीन अनुसंधान केंद्र भेज चुकी है। ट्रायल के अप्रैल में शुरू होने की संभावना है। हालांकि टीके के जल्द बनकर तैयार हो जाने की संभावना नहीं है। एनआईएआईडी के निदेशक एंथोनी फाउची ने हाल ही में अमेरिकी सीनेटरों को बताया कि टीका बनाने में कम से कम डेढ़ साल का समय लगेगा।

इसके बाद, यह देखने की आवश्यकता होगी कि क्या ये टीके पर्याप्त मात्रा में निर्मित किए जा सकते हैं और क्या वे सस्ती कीमत पर उपलब्ध होंगे। वैक्सीन संयोजक जीएवीआई के एक प्रवक्ता ने *डाउन टू अर्थ* को बताया कि संगठन ने निम्न-आय वाले देशों में स्वास्थ्य प्रणालियों की तैयारियों को मजबूत करने में मदद करने के लिए कदम उठाए हैं। इसके तहत जीएवीआई के समर्थन के लिए योग्यता रखने वाले देश उन्हें दिए गए अनुदान का 10 प्रतिशत तक का हिस्सा सार्स-सीओवी-2 द्वारा उत्पन्न खतरे से निबटने में लगा सकेंगे। जीएवीआई 2000

में बनाया गया एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है जिसका उद्देश्य नए और कम इस्तेमाल में लाए जा रहे टीकों को दुनिया के सबसे गरीब देशों में रहने वाले बच्चों तक पहुंचाना है। संगठन के अनुसार, "जीएवीआई आने वाले दिनों में इस महामारी की निगरानी जारी रखेगा ताकि यह समझा जा सके कि कैसे सबसे कमजोर लोगों को सस्ते टीके देने में गठबंधन की विशेषज्ञता का लाभ उठाया जाए।"

वायरस के खिलाफ बीसीजी वैक्सीन की प्रभावकारिता का परीक्षण करने के लिए दुनियाभर में कम से कम चार क्लीनिकल ट्रायल किए जा रहे हैं। देखने में आया है कि यह वैक्सीन किसी व्यक्ति में उपस्थित उसकी जन्मजात प्रतिरक्षा को मजबूत करता है। जब किसी व्यक्ति पर किसी कीटाणु द्वारा हमला किया जाता है, तो शरीर की जन्मजात प्रतिरक्षा प्रणाली हरकत में आ जाती है। मोनोसाइट्स, जो एक प्रकार की सफेद रक्त कोशिका हैं, संक्रमित ऊतक में प्रवेश कर मैक्रोफेज में परिवर्तित हो जाती हैं और रक्षा की पहली पंक्ति का काम करती है।

नीदरलैंड के रैडबड विश्वविद्यालय के एक शोधकर्ता मिहाई नेतिया ने दिखाया है कि जन्मजात प्रतिरक्षा प्रणाली में एक तरह की स्मृति होती है। प्रतिरक्षा सेल में स्थित आनुवंशिक सामग्री किसी संक्रमण के बाद कई महीनों तक हाई अलर्ट की स्थिति में रहती है और नए संक्रमण से सुरक्षा प्रदान कर सकती है। इसके अलावा, सीवियर एक्यूट रेसपिरेट्री सिंड्रोम (सार्स) और मिडल ईस्ट रेसपिरेट्री सिंड्रोम (एमईआरएस) के खिलाफ इस्तेमाल में लाए जाने वाले मौजूदा प्रयोगात्मक टीकों के भी काम करने की संभावना है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने हाल ही में ChAdOx1 nCoV-19 वैक्सीन का परीक्षण मनुष्यों पर करने की अनुमति प्राप्त की है। यह वैक्सीन एक एडेनोवायरस वैक्सीन वेक्टर और कोविड-19 स्पाइक प्रोटीन पर आधारित है और इसी समूह द्वारा एमईआरएस वैक्सीन पर किए गए काम का एक विस्तार है। इसी तरह, मैरीलैंड स्थित नोवावैक्स इंडस्ट्रीज कॉर्प सार्स और एमईआरएस के खिलाफ टीकों पर काम कर रही है और उम्मीद है कि जल्द ही पशु परीक्षण पूरा कर लेगी। यही नहीं 2020 के वसंत के अंत तक मानव परीक्षणों के पहले चरण की शुरुआत भी हो जाएगी।

सार्स-सीओवी-2 के खिलाफ मौजूदा दवाओं का भी तेजी से परीक्षण किया जा रहा है। एंटीमलेरिअल दवा क्लोरोक्विन का उपयोग एंटीबायोटिक एजिथ्रोमाइसिन के साथ संयोजन में उनके सुरक्षात्मक प्रभाव के लिए किया जा रहा है। एक शोध-आधारित बायोफार्मास्युटिकल कंपनी गिलीड साइंसेज ने एक अन्य दवा, रेमडेसिविर, इबोला वायरस के खिलाफ 10 साल पहले विकसित और पेटेंट की थी। हाल के एक अध्ययन से पता चला है कि यह दवा एमईआरएस कोरोनोवायरस के खिलाफ उपयोगी है जिससे कोविड-19 पर भी इसका असर दिखने की संभावना बनती है। गिलीड चीन सरकार के सहयोग से चीन में इसी दवा का क्लीनिकल परीक्षण कर रही है। इन परीक्षणों के शुरुआती परिणाम अप्रैल 2020 में आने की उम्मीद है। जिन अन्य दवाओं के साथ प्रयोग किए जा रहे हैं वे हैं एंटीवायरल लोपिनाविर और रीटॉनाविर (एचआईवी/ एड्स के रोगियों के लिए कालेट्रा के रूप में बेचा जाता है) और ओसेल्टामिविर जैसी इन्फ्लुएंजा दवाएं। हाल ही के एक अध्ययन से पता चला है कि कैमोस्टेट मेसिलेट, जो जापान में पैनक्रीयाटाइटीस के लिए अनुमोदित एक दवा है, कोशिकाओं को सार्स-सीओवी-2 संक्रमण से रोकती है। यह एक अन्य ऑफ-लेबल दवा विकल्प हो सकता है।

इन दवाइयों में से अधिकांश पेटेंटमुक्त हैं और उनके उत्पादन की क्षमता भी हमारे पास है। यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ फ्लोरिडा के डिपार्टमेंट ऑफ मॉलिक्यूलर मेडिसिन के अंतर्गत आने वाले फ्लोरिडा सेंटर ऑफ एक्सीलेंस फॉर ड्रग डिस्कवरी एंड इनोवेशन में कार्यरत प्रोफेसर जेम्स लेही कहते हैं कि चूंकि इन यौगिकों के लिए पदार्थ की संरचना काफी लंबे समय से सार्वजनिक है, अतः किसी भी नए प्रयोग के लिए की गई मांग आसानी से पेटेंट की प्रक्रिया को बाइपास कर सकती है।

लेही का मानना है कि इन जीवनघातक दवाओं के उद्योग को भी बाजार ठीक उसी तरह प्रभावित करेगा जैसे उसका प्रभाव जीवनशैली जनित बीमारियों जैसे ईडी अथवा सराइअसिस पर पड़ता है। उन्होंने आगे कहा, "एक अनुमोदित उपचार योजना लागू होने के बाद, कई संगठन दवाओं का निर्माण शुरू कर देंगे। पुराने लोगों के लिए यह प्रक्रिया सरल होगी। नए वालों के लिए, मुझे उम्मीद है कि भारत जैसे देश सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए पेटेंट अमान्य करने की अनुमति देंगे।"

प्रस्तावित दवाओं और टीकों को ठीक से जांचने की आवश्यकता है। कुछ समय पहले एक प्रायोगिक सार्स वैक्सीन से जानवरों में बीमारी के लक्षण घटने के बजाय बढ़ गए थे। हालांकि बाद में इस समस्या को खत्म करने के लिए इसे संशोधित किया गया था, लेकिन यह वही वैक्सीन थी जिसे सार्स-सीओवी -2 के लिए फिर से तैयार किया गया है। अतः सख्त सुरक्षा परीक्षणों की आवश्यकता है। स्कूल ऑफ बेसिक मेडिकल साइंसेज, फुडन यूनिवर्सिटी, शंघाई में वायरोलॉजी के प्रोफेसर शिबा जियांग के अनुसार, सुरक्षा जोखिमों को पूरी तरह से समझे बिना टीकों और दवाओं का परीक्षण मौजूदा महामारी के खिलाफ हमारी लड़ाई को बाधित कर सकता है। वह लिखते हैं, "वायरस की रोकथाम के लिए सरकार द्वारा उठाए गए क्वारंटाइन जैसे कदमों का समर्थन जनता तभी करती है जब सरकार के स्वास्थ्य संबंधी परामर्श पर उसका भरोसा हो। ऐसे जोखिम वाले टीकों के इस्तेमाल में हड़बड़ी से इस भरोसे पर बुरा असर पड़ेगा और उससे बेहतर टीकों के विकास की प्रक्रिया बाधित होगी। हालांकि अभी हड़बड़ी करने की सच में आवश्यकता है लेकिन हमें फिर भी "दो बार नापो और एक बार काटो" के सिद्धांत पर भरोसा रखना चाहिए।

उपचार

किसी भी बीमारी के टीके को विकसित होने में समय लगता है लेकिन यह जरूरी नहीं कि हमेशा मनवांछित फल मिले

स्पैनिश फ्लू
(एच1एन1)
फैलाव का वर्ष
1918
टीका कब बना
1942

एशियन फ्लू
(एच5एन1)
फैलाव का वर्ष
1957
टीका कब बना
2007

एड्स
फैलाव का वर्ष
1981
टीका कब बना
अभी तक नहीं बन पाया है

स्वाइन फ्लू
(एच1एन1)
फैलाव का वर्ष
2009
टीका कब बना
2009

पश्चिम अफ्रीकी इबोला
फैलाव का वर्ष
2014
टीका कब बना
2019

जीका
फैलाव का वर्ष
2015
टीका कब बना
अभी तक नहीं बन पाया है

स्रोत: विश्व स्वास्थ्य संगठन; यूएस फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन; सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन, यूएस

डब्ल्यूएचओ: साख पर सवाल

संयुक्त राष्ट्र संघ की यह स्वास्थ्य एजेंसी महामारी से जूझने के तरीके को लेकर काफी आलोचनाओं का सामना कर रही है। कई देश उस पर चीन केंद्रित होने का आरोप लगा रहे हैं

बनजोत कौर

हर देश अपने तरीके से कोविड-19 से लड़ रहा है, लेकिन उनकी सफलता का पैमाना अलग-अलग है। दक्षिण कोरिया ने भले इस पर काफी हद तक काबू पा लिया, लेकिन इटली जैसे देशों में उच्च मृत्यु दर देखी जा रही है। कोई भी देश यह नहीं कह पा रहा है कि यह महामारी कब खत्म होगी। नोवेल कोरोनावायरस बीमारी पर चीन की संदिग्ध भूमिका पर जिस तरह विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने लीपापोती की, उससे एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि आखिर उसने ऐसा क्यों किया?

अपने बर्ताव से डब्ल्यूएचओ ने अपनी छवि को धूमिल किया है। संगठन के महानिदेशक टेड्रोस घेबरियेसस ने महामारी के 100 दिन प्रेस कॉन्फ्रेंस में एक अकल्पनीय बात कही। मूलरूप से इथियोपिया के रहने वाले घेबरियेसस ने कहा कि काला होने के नाते उन्हें पिछले तीन महीने से नस्लीय हमलों का सामना करना पड़ रहा है। उन्होंने दावा किया कि उन्हें जान से मारने की धमकियां भी मिल रही हैं। घेबरियेसस मुख्य रूप से अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के उस आरोप का जवाब दे रहे थे जिसमें उन्होंने डब्ल्यूएचओ पर चीन केंद्रित होने के आरोप लगाए थे। टोक्यो ने भी डब्ल्यूएचओ पर चीन के आगे घुटने टेकने का आरोप लगाया।

टेड्रोस घेबरियेसस ने महामारी के 100 दिन प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा कि काला होने के नाते उन्हें पिछले तीन महीने से नस्लीय हमलों का सामना करना पड़ रहा है

अमेरिका के फंड रोकने से न केवल कोरोनावायरस के खिलाफ चल रही वैश्विक लड़ाई कमजोर होगी बल्कि इसका असर डब्ल्यूएचओ के दूसरे कार्यक्रमों जैसे, खसरा, पोलियो, मलेरिया और इबोला आदि पर भी पड़ सकता है

जापान के उप प्रधानमंत्री तारो आसो ने यहां तक कह दिया कि डब्ल्यूएचओ का नाम बदलकर चीन स्वास्थ्य संगठन रख दिया जाना चाहिए। ऐसे कई अध्ययन हैं जो बताते हैं कि चीन से निश्चित रूप से इस मामले में लीपापोती की है। डब्ल्यूएचओ ने इससे न केवल आंखें मूंद ली हैं बल्कि लगातार बीजिंग की प्रशंसा भी करता रहा है। चीन से लौटकर मीडिया ब्रीफिंग में घेबरियेसस ने कहा, "चीन उम्मीद से अधिक काम कर रहा है... मैं इस विषय में चीनी नेतृत्व की जानकारी से प्रभावित हूं... चीनी पूरी दुनिया की रक्षा रहा है... हमें चीन का आभार व्यक्त करना चाहिए... आदि। लीपापोती के बारे में उन्होंने एक शब्द नहीं कहा।

डब्ल्यूएचओ हमेशा स्वास्थ्य कर्मियों को नायक कहकर सम्मानित करता है लेकिन उसने चीनी विसिलब्लोवर ली वेलियांग का जिक्र तक नहीं किया। उन्होंने ही अज्ञान निमोनिया जैसी बीमारी की चेतावनी दी थी और वह भी दुनिया में चीन की घोषणा से बहुत पहले। वेलियांग को इसके लिए जेल भी जाना पड़ा। हालांकि बाद में उन्हें छोड़ दिया गया लेकिन कोविड-19 की चपेट में आकर उनकी मृत्यु हो गई।

डब्ल्यूएचओ ने 23 जनवरी को कोविड-19 के प्रसार को देखते हुए वैश्विक स्वास्थ्य आपातकाल घोषित करने के लिए एक बैठक बुलाई। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से उसने यह घोषणा नहीं की और घेबरियेसस के चीन से लौटने का इंतजार किया। उस वक्त तक कोविड-19 कई गुणा बढ़ चुका था और वायरस 18 देशों में पहुंच चुका था। डब्ल्यूएचओ ने मध्य जनवरी तक मानव से मानव ट्रांसमिशन से इनकार किया। जबकि अध्ययन बताते हैं कि ऐसा ट्रांसमिशन दिसंबर में ही शुरू हो गया था। वह फरवरी के अंत तक विभिन्न देशों द्वारा चीन में यात्रा और व्यापार पर लगाए गए प्रतिबंधों को गलत ठहराता रहा। जब तमाम देशों ने अपने नागरिकों को संक्रमण के केंद्र वुहान से बाहर निकालना शुरू किया, तो डब्ल्यूएचओ ने इस कदम का पक्ष नहीं लिया। अब दुनियाभर के विभिन्न देश डब्ल्यूएचओ को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं और उन्होंने इसकी बात सुननी भी बंद कर दी है। परेशान होकर डब्ल्यूएचओ ने कहा है कि वह अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य नियम बनाएगा और अपनी उपेक्षा करने वाले देशों से जवाब मांगेगा।

कोविड-19 को महामारी घोषित करने की राह भी उतार-चढ़ाव भरी थी। डब्ल्यूएचओ के अधिकारियों ने दुनियाभर के स्वास्थ्य विशेषज्ञों की चेतावनी के बावजूद फरवरी के मध्य तक इसे मानने से इनकार किया। वह पूरी बहस को कंटेनमेंट और मिटिगेशन के बीच उलझाता रहा। कंटेनमेंट ऐसा चरण होता है, जब वायरस अथवा ट्रांसमिशन की चेन को नियंत्रित किया जा सकता है। मिटिगेशन वह चरण होता है जब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि वायरस को अब नियंत्रित नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में केवल इसके प्रभाव को कम से कम करने के उपाय किए जाते हैं।

डब्ल्यूएचओ लगातार कह रहा है कि कोविड -19 को महामारी घोषित करना तब तक निरर्थक था, जब तक उसका कंटेनमेंट संभव था। लेकिन जब यह घोषणा करनी पड़ी तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने देशों को सलाह दी कि वे कंटेनमेंट और मिटिगेशन के चक्कर में न पड़ें। माना जा रहा है कि डब्ल्यूएचओ ने चीन के दबाव में महामारी घोषित करने में देरी की।

घेबरियेसस ने लॉकडाउन की घोषणा करने से पहले पर्याप्त सामाजिक उपाय नहीं करने पर भारत की आलोचना की। जबकि दूसरी तरफ डब्ल्यूएचओ के दक्षिण एशिया के अधिकारी भारत के उपायों की प्रशंसा कर रहे थे। जल्द ही डब्ल्यूएचओ प्रमुख ने भी अपना रुख बदला और गरीबों के लिए 1.74 लाख करोड़ रुपए के बेलआउट पैकेज की घोषणा के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सराहना की। संयोग देखिए कि पैकेज की घोषणा घेबरियेसस द्वारा भारत की ओलाचना से पहले की जा चुकी थी।

डब्ल्यूएचओ की मास्क के मुद्दे पर भी आलोचना हुई। वह लंबे समय तक यही कहता रहा कि स्वस्थ व्यक्तियों को मास्क पहनने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन जब यूनाइटेड स्टेट्स सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन ने सलाह दी कि सभी लोगों को मास्क पहनना चाहिए तो डब्ल्यूएचओ ने कहा कि वह ऐसा करने वाले देशों का समर्थन करता है। हालांकि अगले ही दिन डब्ल्यूएचओ ने ताजा दिशानिर्देश जारी अपने पूर्ववर्ती व्यवहार के विपरीत आचरण किया।

घेबरियेसस को 8 अप्रैल को कहना पड़ा, "हमसे गलतियां हो सकती हैं। आखिर हम लोग भी इंसान हैं, फरिश्ते नहीं।" उनका कहना था कि महामारी के खत्म होने के बाद हम हालात की समीक्षा करेंगे ताकि भविष्य के लिए सबक ले सकें। आखिरकार, समीक्षा डब्ल्यूएचओ को बेहतर बनाने में मदद कर सकती है। लेकिन उन लाखों लोगों का क्या जो इस महामारी से संक्रमित होकर जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहे हैं?

जोर का झटका

डब्ल्यूएचओ को तगड़ा झटका देते हुए अमेरिका ने महामारी के मध्य में ही उसकी फंडिंग रोक दी। अमेरिका उसे सबसे अधिक आर्थिक समर्थन देता है। पिछले बजट में अमेरिका ने 400 मिलियन डॉलर डब्ल्यूएचओ को दिए थे। इससे कुछ दिन पहले ही अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने डब्ल्यूएचओ पर चीन केंद्रित होने का आरोप लगाया था।

अमेरिका के आरोप के बाद ट्रेडोस घेबरियेसस ने कहा कि सभी देशों को वायरस के राजनीतिकरण से बचना चाहिए। शायद उन्हें भी उम्मीद नहीं थी कि अमेरिका उसकी फंडिंग रोक देगा। हालांकि ट्रंप के इस आदेश की दुनियाभर में आलोचना हो रही है। लेकिन यह तथ्य है कि अमेरिका के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है। डब्ल्यूएचओ यह कह सकता है कि अमेरिका द्वारा लगाए गए आरोप निराधार हैं और उसके पास तैयारी के लिए पर्याप्त समय था। इस घटना पर प्रतिक्रिया देते हुए डब्ल्यूएचओ यह भी कह सकता है कि वह अमेरिका के ऐसी सख्त कार्रवाई के असर का मूल्यांकन कर रहा है। लेकिन यह भी तथ्य है कि जितना नुकसान होना था, वह हो चुका। अमेरिका के फंड रोकने से न केवल कोरोनावायरस के खिलाफ चल रही वैश्विक लड़ाई कमजोर होगी बल्कि इसका असर डब्ल्यूएचओ के दूसरे कार्यक्रमों जैसे, खसरा, पोलियो, मलेरिया और इबोला आदि पर भी पड़ सकता है।

नई शुरुआत का समय

कोविड–19 संकट के खत्म होते ही अर्थव्यवस्थाएं ठीक हो जाएंगी। संभावना है कि उत्सर्जन में भी उछाल आएगा

तरुण गोपालकृष्णन

इस बात पर ध्यान दिए बगैर कि कोविड-19 का संकट क्या रूप लेगा, भविष्य के टिप्पणीकार इस पर हमारी प्रतिक्रिया को वैश्विक जलवायु आपातकाल के साथ जोड़ेंगे। अगर हम इस महामारी पर सही प्रतिक्रिया देने में असफल रहते हैं तो वे जलवायु परिवर्तन पर एक पूर्वज के तौर पर हमारी ग्रह-व्यापी विफलताओं का हवाला देंगे और इसे एक वैश्विक संकट से निपटने के लिए एक साथ काम करने में हमारी असमर्थता के संकेतक के रूप में देखेंगे। अगर हम सही प्रतिक्रिया दे पाए, तो वे इस महामारी को कार्बन शमन के लंबे समय से वांछित लाभ से जोड़ देंगे, क्योंकि कोविड-19 के साथ निपटने के लिए सामाजिक दूरी बनानी होगी और नतीजतन आर्थिक गतिविधियों का काफी नुकसान होगा, जिससे उत्सर्जन में कमी आएगी।

इसके बाद भी कम से कम वैश्विक स्तर पर, ये कड़ियां काफी कमजोर हैं, हालांकि चीन की इस संकट पर प्रतिक्रिया की वजह से फरवरी से मध्य मार्च के बीच कार्बन उत्सर्जन में 18 प्रतिशत की कमी आई, लेकिन कोविड-19 और वैश्विक उत्सर्जन में कमी के बीच की कड़ी की मजबूती के प्रमाण अब भी मिश्रित ही हैं। पहली बात, विश्व मौसम विज्ञान संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, कई प्रमुख अवलोकन स्थलों पर फरवरी 2020 में उत्सर्जन स्तर फरवरी 2019 की तुलना में अधिक थे। ऐसा शायद इसलिए था क्योंकि दुनियाभर के उद्योगों ने अभी तक उत्पादन बंद नहीं किया था। दूसरा, वर्तमान में जीडीपी, स्टॉक की कीमतों और नौकरी के नुकसान जैसे सामान्य संकेतकों के संदर्भ में आर्थिक प्रभाव का अनुमान लगाया जा रहा है।

फोटो : रॉयटर्स

कोरोनावायरस की महामारी की वजह से लागू हुए लॉकडाउन ने हवा की गुणवत्ता में सुधार किया है लेकिन यह स्थायी नहीं है

एक या दो साल में जहां वैश्विक अर्थव्यवस्था में मामूली वृद्धि हुई, वहीं वैश्विक वार्षिक उत्सर्जन स्थिर रहा। यह प्रवृत्ति भ्रमित करने वाली साबित हुई। एक दशक के दौरान विनाशकारी परिणामों के साथ उत्सर्जन में अप्रत्याशित रूप से बढ़ोतरी हुई

प्रत्यक्ष है कि नवीकरण उद्योग ही केवल प्रोत्साहन के लिए सरकार की तरफ नहीं देख रहा। इसके परिणामस्वरूप, एक स्वच्छ प्रोत्साहन पैकेज का आह्वान हुआ है और उम्मीद है कि प्रोत्साहन के मौजूदा स्तर से ग्रीन हाउस न्यू डील (संयुक्त राज्य की कांग्रेस द्वारा 2019 में लिया गया एक संकल्प, जिसके तहत ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने और स्वच्छ ऊर्जा उद्योगों में नौकरियां देने का वादा किया गया है) जैसे जलवायु प्रस्ताव अधिक रुचिकर लगेंगे। दोनों संकटों को जोड़ने वाला तर्क यहां मजबूत स्थिति में है। यह इस बात को स्पष्ट तौर पर रखता है कि किसी भी आर्थिक निर्णय को चल रहे जलवायु संकट के प्रति सचेत होना चाहिए। उदाहरण के लिए, इस बात पर बहस करना मुश्किल है कि एयरलाइन उद्योग को नीचे जाने देना चाहिए। और फिर एयरलाइंस भी अपने उत्सर्जन डेटा के बारे में विशिष्ट रूप से अपारदर्शी और प्रादेशिक हैं, जबकि यह जिम्मेदार जलवायु नीति के लिए एक बुनियादी शर्त है। इस उद्योग के लिए प्रोत्साहन पैकेज को एयरलाइंस के उत्सर्जन डेटा से जोड़ा जाना चाहिए।

दुनियाभर से आ रहे शुरुआती संकेत उत्साहजनक नहीं हैं। 27 मार्च को 2 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर के रिकवरी पैकेज के लिए सहमति देने वाली संयुक्त राज्य सरकार जीवाश्म ईंधन उत्पादकों को पर्यावरण नियमों और ऑटो उद्योग को कम प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों का उत्पादन करने के लिए आवश्यक नियमों में ढील दे रही है। उड्डयन उद्योग को बिना किसी सम्बन्ध के सहायता मिलने की संभावना है। कीमतों में मौजूदा गिरावट के बावजूद, तेल कंपनियों को मदद की संभावना है। वहीं पवन और सौर उद्योगों पर टैक्स क्रेडिट नहीं बढ़ाया गया है। यूरोप में कोयला ऊर्जा पर निर्भर देश, खासकर पोलैंड और चेक गणराज्य अब उन लक्ष्यों को शिथिल करने पर जोर दे रहे हैं, जो पिछले साल के अंत में यूरोपीय संघ की ग्रीन डील में तय किए गए थे। जिसका मकसद 2050 तक यूरोप को कार्बन न्यूट्रल करने का था। यूरोपीय नवीकरण उद्योग अधिक संगठित है, वह यूरोपीय संघ के महामारी रिकवरी पैकेज में पर्यावरण को भी प्रोत्साहित करने के लिए दबाव बना रहा है। यहां संकेत अधिक आशाजनक हैं। यूरोपीय परिषद ने संकेत दिया है कि वह अपने जारी ऊर्जा संक्रमण को छोड़े बिना ग्रीन रिकवरी के लिए योजना बना रही है। जापान और ऑस्ट्रेलिया ने प्रोत्साहन पैकेजों की घोषणा की है, जिनमें कोयले पर उनकी निर्भरता को कम करने के लिए कुछ नहीं है।

टार सैंड ऑयल के एक बड़े निर्यातक देश कनाडा ने अपने नागरिकों को प्रत्यक्ष सहायता और व्यवसायों को बनाए रखने के लिए कुछ उपायों की घोषणा की है, लेकिन वह अभी व्यापार-केंद्रित बड़े प्रोत्साहनों के बारे में सोच रहा है। सऊदी अरब गिरती मांग और कीमतों के दौरान तेल उत्पादन में तेजी ला रहा है और आर्थिक और भू राजनीतिक उद्देश्य वाले प्राइस वॉर को तेज कर रहा है। संभावना है कि तेल भंडारों को मुद्रीकृत करने के सीमित मौकों का भय दर्शाते हुए अन्य तेल उत्पादक देश भी सऊदी अरब का अनुसरण करेंगे, लेकिन इससे आगे वैश्विक ऊर्जा प्रणालियों में तेल का दबदबा खत्म हो सकता है। चीन ने स्वाभाविक रूप से अब तक का सबसे बड़ा आर्थिक प्रभाव महसूस किया है। बिजली की मांग में काफी नुकसान हुआ है और इसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। लेकिन चीन अब भी कोयला बिजली संयंत्रों का निर्माण कर रहा है और वर्तमान में उसकी अप्रयुक्त क्षमता भी बहुत ज्यादा है, जिसका उपयोग वह संभवतः जरूरत पड़ने पर समायोजन के लिए करेगा। दूसरी तरफ उसके नवीकरणीय ऊर्जा में भी निवेश करने के सबूत मौजूद हैं जिसमें मार्च में सोलर पैनल मैन्युफैक्चरिंग प्लांट के लिए की गई 2.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर की घोषणा भी शामिल है। इसमें दुनियाभर में सोलर पैनल की आधी मांग को पूरा करने की क्षमता है। चीन बस बिजली का भूखा है और इसे पूरा करने के लिए उसकी दिशा नवीकरणीय उद्योग के लिए एक बड़ा बदलाव लाने वाला कारक है। ठीक यही बात भारत के साथ भी है, जो सभी ऊर्जा उत्पादकों की सहायता करने की कोशिश कर रहा है। कोविड-19 से पहले जो कोयला परियोजनाएं सफलतापूर्वक लाभ नहीं अर्जित कर रही थीं, वह अब किसी भी प्रोत्साहन पैकेज का हिस्सा नहीं होनी चाहिए। सरकार के एजेंडे में काफी महत्वपूर्ण होने के बाद भी वितरण कंपनियों ने महामारी से पहले नवीकरण परियोजनाओं पर ढुलमुल रवैये के साथ काम शुरू किया था। अब चीन से आयात पर रोक के चलते वे बढ़ती लागत का सामना कर रही हैं। पहले से ही जारी संकट के ऊपर एक और संकट बिना सहायता के उन्हें बर्बाद कर सकता है।

उत्सर्जन में फिर से उछाल

कोविड-19 प्रोत्साहन पर बहस सार्वजनिक स्मृति में आखिरी बड़े प्रोत्साहन के जलवायु प्रभावों को देखते हुए और भी अधिक महत्व रखती है। इसको लेकर बहुत आशावादी नजरिया था कि 2008-09 के वित्तीय संकट ने आर्थिक विकास और उत्सर्जन के संबंधों को तोड़ दिया था। एक या दो साल के दौरान जहां वैश्विक अर्थव्यवस्था में मामूली वृद्धि हुई, वहीं वैश्विक वार्षिक उत्सर्जन स्थिर रहा। यह प्रवृत्ति भ्रमित करने वाली साबित हुई। एक दशक के दौरान विनाशकारी परिणामों के साथ उत्सर्जन में अप्रत्याशित रूप से बढ़ोतरी हुई। इस संकट के बाद सबसे अधिक संभावना जिस दुष्परिणाम की दिखती है, वह है विकास की भूख, जिसमें दीर्घकालीन परिणामों पर सबसे कम ध्यान दिया जाएगा। द्विपक्षीय सहयोग, जो वर्तमान में विकसित और विकासशील देशों के मध्य जलवायु वित्तीयन के लिए सबसे पसंदीदा मार्ग है, को कोविड-19 संकट से मुकाबला करने के लिए बढ़ाने की जरूरत है। महामारी और जलवायु परिवर्तन की इन समान रूप से महत्वपूर्ण प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिए एक ही संग्रह से काम लेना होगा, जो घटता जा रहा है। ऑस्ट्रेलिया पहले ही कह चुका है कि वह इंडो-पैसिफिक के लिए अपने सहायता बजट को नहीं बढ़ाएगा, बल्कि उसे कोविड-19 के लिए दिया जाएगा। अन्य सहयोग-प्रदाता भी संभवतः उसी का अनुसरण करेंगे।

जलवायु इक्विटी और न्याय के लिए दशकों तक तर्क दिए गए हैं। स्वास्थ्य संकटों के प्रबंधन ने अक्सर विकासशील दुनिया पर ध्यान केंद्रित किया है। कोविड-19 संकट ने अभूतपूर्व तरीकों से विशेषाधिकार प्राप्त और कमजोर लोगों के बीच के अंतर को जटिल कर दिया है। अब जबकि हम संकट के चौथे महीने की तरफ बढ़ रहे हैं, तब विकासशील देशों खासकर दक्षिण एशिया और अफ्रीका पर उसका प्रभाव काफी स्पष्ट होने की संभावना है। जनसांख्यिकीय, भौगोलिक और अच्छी तकदीर का परिणाम काम चलाने लायक प्रभाव के तौर पर आता है, तो भी वह बुनियादी तथ्यों को नहीं बदलेगा। जलवायु नीति की तरह ही सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी हम एक सामान्य, लेकिन भेदभावपूर्ण संवेदनशीलता और सामान्य, लेकिन भेदभावपूर्ण जिम्मेदारियां साझा करते हैं।

रॉयटर्स

स्वास्थ्य के जानकार प्रबंधित हर्ड इम्युनिटी पर बहस कर रहे हैं जिसमें लोगों को तभी क्वारंटाइन किया जाता है जिन्हें खतरा हो। अन्य लोग काम कर सकते हैं

इस रात की सुबह कब?

अधिकांश देशों ने कोविड-19 से लड़ने के लिए फ्लैटनिंग द कर्व मॉडल यानी ऐसी जुगत लगाई कि मामले धीरे-धीरे लंबे समय तक आएं, लेकिन इसका अंत होता नहीं दिख रहा है

विभा वार्ष्णेय

हर देश अपने तरीके से कोविड- 19 से लड़ रहा है, लेकिन उनकी सफलता का पैमाना अलग-अलग है। दक्षिण कोरिया ने भले इस पर काफी हद तक काबू पा लिया, लेकिन इटली जैसे देशों में उच्च मृत्यु दर देखी जा रही है। कोई भी देश यह नहीं कह पा रहा है कि यह महामारी कब खत्म होगी। अधिकांश देश "फ्लैटनिंग द कर्व" (लंबे समय तक नए केस आने से रोकना) की कोशिश कर रहे हैं और सामाजिक दूरी जैसे तरीकों का उपयोग करके मामलों की संख्या कम कर रहे हैं। यह स्वास्थ्य प्रणाली को अत्यधिक बोझ से बचाने में मदद करती है, लेकिन लंबे समय में केसेज को फैलाता भी है।

एक और तरीका है, "हर्ड इम्यूनिटी" (सामूहिक प्रतिरक्षा) को बढ़ाना। इसमें वायरस को अपने प्राकृतिक तरीके से फैलने दिया जाता है, ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग संक्रमित होकर (और वे यदि बच जाते हैं) वायरस के खिलाफ एक प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर लें। लेकिन, ये तरीका भयावह है और इसे खारिज कर दिया गया है। ये ज्यादातर तब अपनाया जाता है जब बीमारी से बचाव के लिए कोई टीका होता है। लेकिन, कोविड-19 का टीका न होने के कारण, यह समस्या न केवल स्वास्थ्य प्रणाली पर बोझ डाल सकती है, बल्कि मृत्यु दर भी बढ़ा सकती है। एक और तरीका है "प्रबंधित हर्ड इम्यूनिटी" जिसमें केवल जोखिम वाले लोग ही क्वारंटाइन किए जाते हैं। यरुशलम के हिब्रू विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने मार्च 2020 में एक गणितीय मॉडल विकसित

भारत के लिए यह बहुत आवश्यक है कि फ्लैटनिंग द कर्व के लिए उपायों को अच्छी तरह से लागू किया जाए, क्योंकि रोग के बेकाबू प्रसार से निपटने के लिए स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी ढांचा तैयार नहीं है

किया है, ताकि देशों को यह तय करने में मदद मिल सके कि क्या उनका स्वास्थ्य बुनियादी ढांचा मामलों में अचानक वृद्धि का भार उठा सकता है।

कर्व को फ्लैट करने के लिए, पहले मामले की सूचना आने से पूर्व ही भारत ने कार्रवाई की। यात्रा सुरक्षा को लेकर पहली सलाह 17 जनवरी को जारी की गई थी और चीन से आने वाले यात्रियों को भारत आगमन पर स्क्रीनिंग से गुजरना पड़ा। कार्रवाई के बावजूद 30 जनवरी को भारत में एक मामला दर्ज किया गया था। देश में 22 मार्च को स्वैच्छिक कर्फ्यू लागू किया गया और फिर 14 अप्रैल तक राष्ट्रीय तालाबंदी कर दी गई। बाद में इसे बढ़ाकर 3 मई कर दिया गया। ये प्रयास यह सुनिश्चित करने के लिए हैं कि आर जीरो (मूल प्रजनन संख्या) को 1 से नीचे रखा जाए और नए संक्रमण की घटनाओं में कमी आए। जब यह 1 से अधिक हो जाता है, तो संक्रमण के मामले बढ़ जाते हैं। फिर ये संक्रमण तब तक बढ़ते हैं जब तक कि महामारी नहीं आ जाती और अंततः हर्ड इम्युनिटी के कारण इसमें गिरावट आने लगती है। 26 मार्च को भारत का आर जीरो 1.81 था।

स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ, इंपीरियल कॉलेज लंदन, यूके के रिसर्च असोसिएट स्वप्निल मिश्रा कहते हैं, "महामारी कब खत्म होगी इसका कोई वास्तविक अनुमान नहीं है। लेकिन हम विभिन्न हस्तक्षेपों के साथ महामारी के उन्नत चरण वाले देशों के लिए फ्लैट कर्व का संकेत देख रहे हैं। हम यह नहीं कह सकते हैं कि कौन सा हस्तक्षेप अधिक प्रभावी है, लेकिन एक साथ किए गए हस्तक्षेपों का प्रभाव पड़ रहा है।" मिश्रा 30 मार्च को यूके के एमआरसी सेंटर फॉर ग्लोबल इंफेक्शियस डिजिज एनालिसिस द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के प्रमुख लेखक हैं। मिश्रा कहते हैं कि उपायों को बढ़ाना होगा क्योंकि आर जीरो 1 से ऊपर है। हालांकि मिश्रा ने यह नहीं बताया कि "अधिक" उपाय क्या हो सकते हैं, लेकिन यूके के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं द्वारा प्रस्तावित एक मॉडल दो विकल्प सुझाता है, जिसका उपयोग भारत इस महामारी को समाप्त करने के लिए कर सकता है। पहले विकल्प में 21 दिन, फिर 28 दिन और फिर 18 दिन के लॉकडाउन होते हैं। प्रत्येक लॉकडाउन के बाद पांच दिन की छूट होती है। 24 मार्च से शुरू लॉकडाउन को 10 जून तक जारी रखना होगा। दूसरे विकल्प में 49 दिनों तक लगातार लॉकडाउन करना है (13 मई तक, अगर इसे 24 मार्च से शुरू समझें)। इस मॉडल की भविष्यवाणी के मुताबिक, यदि महामारी को बिना कुछ करे यूं ही बढ़ने दिया जाए तो भी हर्ड इम्यूनिटी के कारण यह अगस्त के अंत तक खत्म हो जाएगा।

यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज, यूके में गणित के प्रोफेसर रोनोंजय अधिकारी कहते हैं, "अगर हम केवल सामाजिक दूरी से महामारी को नियंत्रित करते हैं, तो हमें महामारी खत्म करने के लिए टीका मिलने तक इंतजार करना होगा, जो कम से कम एक वर्ष का समय होगा। यानी, सामान्य स्थिति तक वापस आने के लिए हमें कम से कम एक साल इंतजार करना होगा।" इस अध्ययन की अभी समीक्षा की जानी है। लेकिन मौजूदा लॉकडाउन समाप्त होने वाला है और ऐसे में यह मॉडल सरकार के काम आ सकते हैं। रोनोंजय अधिकारी कहते हैं कि हमारे पास कई लॉकडाउन प्रोटोकॉल हैं जो कुछ हद तक संक्रमण स्तर को कम कर सकते हैं। लेकिन वह कहते हैं कि इन लॉकडाउन की व्यवहार्यता का पता गणितीय रूप से नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि इसमें आर्थिक, चिकित्सा, सामाजिक और नैतिक कारकों को भी देखना होगा।

यह पूछे जाने पर कि क्या भारत महामारी को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त प्रयास कर रहा है, मिश्रा ने कहा कि यह जवाब देना मुश्किल है क्योंकि विश्वसनीय डेटा दुर्लभ है और सरकारी हस्तक्षेपों का आमतौर पर अच्छी तरह से पालन नहीं किया जाता। मिश्रा कहते हैं, "अगर भारत में सामुदायिक संक्रमण शुरू हो गया है (जैसे मुंबई में धारावी और दिल्ली में निजामुद्दीन से आई खबरें बता रही हैं) तो हमें फ्लैट कर्व रखने के लिए कुछ समय तक हस्तक्षेप जारी रखने की जरूरत है।"

वैसे इन मॉडल्स में भी कुछ खामियां पाई गई हैं। रिप्रिंट सर्वर में 6 अप्रैल को प्रकाशित एक नए अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि मौजूदा मॉडल में दोष है। इंग्लैंड स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंजिलया में प्रोफेसर एलिस्टर ग्रांट ने जब एक नया मॉडल विकसित किया, तब उसकी तुलना वुहान में कोविड-19 के प्रकाशित मॉडल से की गई। यह आइसोलेशन और सामाजिक दूरी जैसे उपायों से पहले हुआ। माना जाता है कि पहले के मॉडलों ने चरम संक्रमण दर को कमतर आंका। साथ ही महामारी के चरम पर पहुंचने के बाद यह कितने समय पर बनी रहेगी, यह गणना भी बढ़ा चढ़ाकर की गई।

भारत के लिए यह आवश्यक है कि कर्व को फ्लैट करने के लिए उपायों को अच्छी तरह से लागू किया जाए, क्योंकि रोग के बेकाबू प्रसार से निपटने के लिए स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी ढांचा तैयार नहीं है। बोस्टन के हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ, लंदन के इंपीरियल कॉलेज ने 2009 में एच1एन1 महामारी के वक्त अर्जेंटीना, जापान, मैक्सिको, यूके और अमेरिका के लोगों के व्यवहार का अध्ययन किया था। अध्ययन के नतीजे बताते हैं कि करीब 73 प्रतिशत ब्रिटिश लोगों ने खांसते या छींकते वक्त अपने मुंह को टिश्यू से नहीं ढंका और 47 प्रतिशत ने अपने हाथ नहीं धोए और न ही सेनिटाइजर का इस्तेमाल किया।

प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग द्वारा 1 अप्रैल, 2020 को प्रकाशित भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारियों के बीच किए सर्वेक्षण स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे में तीव्र कमी का संकेत देते हैं। जवाब देने वाले 266 अधिकारियों में से 71 फीसदी ने कहा कि कोविड-19 मरीजों के लिए अति आवश्यक वेंटिलेटर उनके संबंधित क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं थे। महामारी से निपटने में परीक्षण किट और व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण (पीपीई) की कमी तो प्रमुख समस्या है ही। रोनोंजय अधिकारी बताते हैं कि परीक्षण में सुधार करने से सरकार को बेहतर नीतिगत निर्णय लेने में मदद मिल सकती है। उदाहरण के लिए, अधिक परीक्षण का मतलब है कि हमारे पास संक्रमण के प्रसार को लेकर एक बेहतर विचार होगा। यह गणितीय मॉडलिंग में सुधार कर सकता है जो बेहतर नीतिगत निर्णय लेने में मदद कर सकता है।

19वीं सदी में महिला मिशनरी ने खोले आधुनिक चिकित्सा के द्वार

प्रिसिला विंटर महिला मिशनरी थीं जिनकी कोशिशों से 1874 में दिल्ली के चांदनी चौक में पहली डिस्पेंसरी खुली जो महिला चिकित्सा मिशन के नाम से जानी गई

कौशिक दासगुप्ता

1860 के दशक में एक दुबली पतली युवा यूरोपीय महिला दिल्ली में खासतौर पर यमुना के महिला घाटों पर दवाओं के बॉक्स के साथ मौजूद रहती थी। उनका नाम प्रिसिला विंटर था। वह एक एंग्लिकन मिशनरी थी और उनके पास चिकित्सा में कोई प्रशिक्षण नहीं था। 19वीं शताब्दी में यूरोपीय उपनिवेशों में प्रिसिला जैसे मिशनरी काफी आम थे। मिशन के परिदृश्य में अच्छे योग्य डॉक्टरों और नर्सों की मौजूदगी के प्रचलन में आने से पहले तक, ऐसे ही कई आम मिशनरियों ने अपने इलाकों के आसपास के समुदायों में बीमारियों के लक्षणों को दूर करने की कोशिशें कीं।

प्रिसिला विंटर यूनियन सोसायटी फॉर द प्रोपेगेशन ऑफ गॉस्पेल (यूएसपीजी) में शामिल होने के लिए 1858 में दिल्ली पहुंची थीं। उनकी प्रमुख जिम्मेदारी शहर की महिलाओं के बीच ईसा मसीह के संदेश का प्रचार करना था। लेकिन, यूएसपीजी के दिल्ली मिशन की ओर से निकलने वाले त्रैमासिक सूचना-पत्र दिल्ली मिशन न्यूज के एक नोट के मुताबिक, “जैसे ही विंटर को यह काम मिला, उनकी तेज नजरों ने भारत में चिकित्सा के क्षेत्र में महिलाओं की जरूरत के महत्व को भांप लिया।” विंटर खुद लिखती हैं, “भारत में महिलाओं को पीड़ा से कोई राहत नहीं मिल रही है। पुरुष उनके हाथों में जो दवाएं थमाते हैं, उनके उपाय बहुत कठिन होते हैं।” इसलिए उन्होंने सभी वर्गों की हिंदू महिलाओं के लिए सरल उपचार वाली दवाएं बांटनी शुरू कर दीं, जिनकी आत्मा को परदे के बंधन से सिर्फ तभी कुछ देर के लिए राहत मिलती थी, जब वे संकल्प लेने के लिए नदी में जाती थीं। शहर में आए दिन हैजा और इंफ्लुएंजा की महामारियां फैली रहती थीं। इस मिशनरी के दिए गए इलाज से प्रभावित होकर महिलाएं दूसरों से भी उनकी सिफारिश करती थीं। धीरे-धीरे काम का विस्तार हुआ। इंग्लैंड में अपनी छुट्टियां बिताने के दौरान विंटर ने दिल्ली में एक डिस्पेंसरी स्थापित करने की अपनी योजना के लिए सहायती मांगी। इस योजना के लिए धन और प्रचार की व्यवस्था करने के लिए “व्हाइट लेडीज असोसिएशन” के नाम से समर्थकों की एक संस्था का गठन किया गया। 1874 में दीवारों से घिरे शहर में चांदनी चौक में एक घर किराए पर लिया गया और एक महिला कार्यकर्ता डिस्पेंसरी का प्रबंधन करने, नर्सों को प्रशिक्षण देने और बीमार महिलाओं को उनके घर जाकर देखने के काम में जुट गई। पंजाब सरकार ने दवाओं के लिए 410 रुपए प्रति वर्ष के दान की घोषणा की तो दिल्ली नगर पालिका ने प्रशिक्षण हासिल कर रहीं महिला नर्सों को हर महीने 75 रुपए की स्कॉलरशिप दी। चांदनी चौक पर शुरू हुई यह छोटी-सी डिस्पेंसरी आगे चलकर दिल्ली महिला चिकित्सा मिशन के तौर पर जानी गई। लोगों को सहायता के लिए प्रेरित करना मुश्किल नहीं था। लंबे समय तक मिशनरियों के विरोध की खबरों के आदी रहे उनके यूरोपीय समर्थकों के लिए, भारतीयों के ओर से चिकित्सा सेवाएं मुहैया करा रहे मिशनरियों का स्वागत एकदम विपरीत बात थी। बीमारियों के भयानक बोझ तले दबे लोगों के देश में पश्चिमी जगत से दवाओं का उपहार लेकर जा रहे बहादुर मिशनरी डॉक्टरों की कल्पना ने इंग्लैंड में आमजन को उद्वेलित कर दिया। घरेलू समर्थन के बावजूद दिल्ली चिकित्सा मिशन को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रारंभिक वर्षों के दौरान चिकित्सा देखभाल प्रदान करने के लिए कई तात्कालिक तरीकों को अपनाया गया था। चिकित्सा सेवाएं मुहैया कराने वाले शुरुआती मिशनरियों को बिना किसी खास कौशल के इस मिशन में उतार दिया गया। बहुत से लोगों को विंटर की दवाओं के बक्से से ज्यादा भरोसा अपने अनुभव पर था। 1879 में अस्पताल में थोड़े से प्रशिक्षण के बाद एक दाई ने डिस्पेंसरी को ज्वाइन कर लिया।

हालांकि, ये मिशनरी कब तक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल कर सकते थे? 19वीं सदी के दौरान स्वदेशी उपचार के प्रति पश्चिमी दृष्टिकोण धीरे-धीरे सख्त होने लगा। इतिहासकार रोजमेरी फिट्जगेराल्ड के अनुसार, “मिशनरियों के गलत काम को पश्चिमी चिकित्सा का आधिपत्य स्थापित करने की व्यापक साम्राज्यवादी

1885 में दिल्ली की महिलाओं और बच्चों के लिए पहला अस्पताल सेंट स्टीफेंस हॉस्पिटल खोला गया। अपनी स्वच्छता और अनुशासन के साथ ही यह अस्पताल महिलाओं के लिए शिक्षा के रूप में माना जाता था

प्रिसिला विंटर 1858 में दिल्ली पहुंची थीं। उन्हें बहुत जल्द एहसास हो गया कि यहां की महिलाओं को चिकित्सीय मदद की सख्त जरूरत है

महत्वाकांक्षाओं से समझौता करने के तौर पर भी माना जाता है।" 1883 में कलकत्ता मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल सीआर फ्रांसिस ने मिशनरियों को याद दिलाया कि चिकित्सा सेवाओं में लगे मिशनरियों को अपने पेशेवर कौशल के जरिए मूल निवासियों को प्रभावित करना चाहिए था। मिशनरियों ने उपनिवेशों में मृत्यु और बीमारी के पैमाने की ओर संकेत करके इस तरह की आलोचनाओं को रोकने की कोशिश की। उदाहरण के लिए दिल्ली मिशन के प्रमुख जीए लेफ्रॉय ने कहा कि मिशनरी महिलाएं पुरातन यूनानी हकीमों और नाइयों की तुलना में बीमारियों से निपटने के लिए कहीं अधिक तैयार थीं। लेकिन बहुत ही जल्द मिशनरी आशंकित हो गए कि अगर उनके चिकित्सा कर्मचारी अपने अपरिपक्व तौर-तरीकों को अपनाए रहे, तो वे अब तक अर्जित की गई सद्भावना खो देंगे। बल्कि, एक मिशनरी ने स्वीकार किया, "चूंकि मैं उन्हें हर बीमारी के लिए दवा नहीं दे सकता था, इससे महिलाओं को गुस्सा आता था और वे यह मानती थीं कि मैं उन्हें सलाह नहीं दूंगी।" दिल्ली मिशन ने यह भी महसूस किया कि डिस्पेंसरी और अस्पताल में देखभाल के लिए रोगियों को उनके घर से निकालकर चिकित्सकीय और ईसायत के मतानुसार काफी कुछ हासिल किया जा सकता है। लेकिन, भारतीय घरेलू वातावरण ने मिशनरियों को ऐसा कोई आदर्श माहौल नहीं प्रदान किया, जिसमें वे शरीर और आत्मा दोनों को छू लेने वाली दोहरी देखभाल की व्यवस्था लागू कर पाते। मिशन के दृष्टिकोण के मुताबिक, भारतीय घरों में अव्यवस्था व अशांति भरे माहौल और गंदगी ने इलाज की गुणवत्ता को प्रभावित किया। इसका मतलब डॉक्टर के निर्देशों का पालन न करने से भी था, क्योंकि परिवार के सदस्य और स्वदेशी चिकित्सक लगातार हस्तक्षेप कर रहे थे।

1885 में दिल्ली की महिलाओं और बच्चों के लिए पहला अस्पताल सेंट स्टीफेंस हॉस्पिटल खोला गया। अपनी स्वच्छता और अनुशासन के साथ ही यह अस्पताल महिलाओं के लिए शिक्षा के रूप में माना जाता था। रोगियों को शास्त्रों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और वास्तविक उपचार से पहले धार्मिक सिद्धांत के मुताबिक निष्पक्ष प्रशासन को सुनिश्चित करने की व्यवस्था की गई थी। हालांकि, पहली योग्य डॉक्टर जेनी मुलर ने 1891 में ही सेंट स्टीफंस हॉस्पिटल को ज्वाइन कर लिया था और 1906 में अस्पताल के वर्तमान स्थल तीस हजारी में एक बड़े आधार की नींव रखी गई थी। लेफरोय ने सोचा कि यह दिल्ली मेडिकल मिशन को मजबूती प्रदान करेगा। लेकिन हर कोई उतना आश्वस्त नहीं था। मुलर वास्तव में आशंकित थीं कि प्रशिक्षित कर्मियों की कमी अस्पताल को उसके उद्देश्यों के साथ न्याय करने से रोक सकती है। उन्होंने कहा, "मुझे यकीन है कि हम इतनी उदारता से दान किए गए धन को बर्बाद कर रहे हैं।"

लाहौर प्रांत, जिसका हिस्सा दिल्ली मिशन था, इन्हीं चिंताओं में डूबा हुआ था। 1893 में महिला चिकित्सा मिशनरियों के सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि भारत में महिलाओं के लिए महिला अस्पताल से जुड़े एक मेडिकल स्कूल की आवश्यकता है। आगे के वर्षों में द नॉर्थ इंडिया स्कूल ऑफ मेडिसिन फॉर क्रिश्चियन वूमेन खोला गया, जिसमें चार कर्मचारी और चार स्टूडेंट्स थीं। सेंट स्टीफंस अस्पताल ने भी एलिस विल्किंसन के मातहत नर्सों के लिए एक प्रशिक्षण स्कूल शुरू किया, जो पहली प्रशिक्षित ब्रिटिश नर्स थीं और 1908 में अस्पताल को ज्वाइन किया था। विल्किंसन अस्पताल की नर्सिंग अधीक्षक बन गईं और उन्हें न केवल सेंट स्टीफंस में, बल्कि बाकी भारत में भी नर्सिंग के मानकों को बढ़ाने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने ट्रेंड नर्स असोसिएशन ऑफ इंडिया की स्थापना की और 1948 तक इसकी सचिव के रूप में काम किया। 1913 में पहले योग्य सर्जन हेलेन फ्रैंकलिन ने अस्पताल को ज्वाइन किया। मिशनरियों को कई रियायतें देनी पड़ीं। अस्पताल में रसोइया हमेशा एक ब्राह्मण था। उन्हें उन रिश्तेदारों का मोह भी सहना पड़ता था, जिन्हें देखते हुए वे अपने वार्ड से गायब हो जाते थे। इस सबके साथ व्यावसायिकता ने मिशनरी चिकित्सा कार्य बड़े पैमाने पर स्वीकृति दिलाने में अहम भूमिका निभाई। अतीत में सभी तरह के स्वदेशी उपचार आजमाने के बाद अक्सर मिशनरियों के पास परामर्श के लिए पहुंचते थे। 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक वे यह रिपोर्ट करने में सक्षम थे कि बीमारी की अवस्था में हताश होकर रोगियों का एक बड़ा हिस्सा उनसे परामर्श करने को तैयार था।

फोटो: विकास चौधरी

कोयंबटूर के वलायर गांव में स्वास्थ्यकर्मी वाहन को वायरस से मुक्त करने की कोशिश में जुटे हैं। यह स्थान तमिलनाडु और केरल के बीच प्रमुख प्रवेश द्वार है

गुमनाम योद्धा

कोरोनावायरस के खिलाफ लड़ाई में भारत के 1.5 करोड़ सामुदायिक कार्यकर्ता अपने जीवन को दांव पर लगाकर बेहतरी के लिए जुटे हैं

के शाजी, मेघा प्रकाश, पुरुषोत्तम ठाकुर, विवेक मिश्रा, अजीत पांडा, शगुन कपिल

नोवेल कोरोनावायरस ने पूरे देश को एक जगह ठहरा दिया है। इस खतरनाक वायरस के खिलाफ बड़ी तादाद में लोग एकजुट हुए, जिसने एक उम्मीद जगाई कि भारत बहुत कम दुर्घटनाओं और नुकसान के साथ इस युद्ध को जीत सकता है। जैसे ही देश में कोरोनावायरस के मामले बढ़ने शुरू हुए, राज्य सरकारों ने बचाव के लिए 1.5 करोड़ से ज्यादा सामुदायिक स्वास्थ्य सुविधाएं, स्वास्थ्य कर्मी और पंचायत प्रतिनिधियों को पहली कतार का योद्धा बनाकर तैनात कर दिया ताकि स्वास्थ्य सुविधाओं का ढांचा चरमरा न जाए। अगर इन्हें एक साथ मिलाया जाए तो यह इटली की एक-छठवीं आबादी होगी, जिसे इस महामारी की सबसे ज्यादा चोट लगी है।

कोविड-19 के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए इन श्रम शक्तियों की अहमियत से सरकार बखूबी वाकिफ है। इनमें खासतौर से सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता और आशा कार्यकर्ता शामिल हैं, जो सीधा समुदाय और सार्वजनिक स्वास्थ्य केंद्र के बीच की अहम कड़ी के तौर पर जुड़ी हैं। कर्नाटक सरकार ने जब 10,000 आशा कार्यकर्ताओं को उनके 15 महीने का बकाया वेतन चुकाने

फोटो: एस के मोहन

केरल के कुन्नूर में महिलाओं के इस समूह ने लोगों को भूख से बचाने के लिए गरीबी उन्मूलन मिशन कुडुंबश्री के तहत सामुदायिक रसोई शुरू की है

के लिए अचानक हामी भरी तो इसने हमें अचरज में नहीं डाला। यह आशा कार्यकर्ता जनवरी से बंगलुरु की सड़कों पर अनिश्चितकालीन धरना दे रहीं थीं। सेवाएं बंद करने से पहले इन्हें विषाणु के संबंध में जागरुकता फैलाने का दबाव बनाया जा रहा था, साथ ही संभावित कोरोना पॉजिटिव के आंकड़े और सूचनाएं भी जुटाने को कहा गया था। कर्नाटक में संयुक्त आशा वर्कर्स एसोसिएशन की सचिव डी नागलक्ष्मी ने कहा कि हमारी रिपोर्ट के आधार पर ही आज राज्य में महामारी से लड़ाई लड़ी जा रही है। यहां तक कि समूचे देश में आशा कार्यकर्ता बिना किसी छुट्टी के अतिरिक्त श्रम कर रही हैं। जबकि 2018 में प्रधानमंत्री ने आशा कार्यकर्ताओं के पारिश्रमिक को 60 फीसद बढ़ाने का वादा किया था, जो अब तक अधूरा है।

इसी तरह 19 मार्च को भारत के लॉकडाउन में प्रवेश करने के कुछ दिन पहले तमिलनाडु मुख्यमंत्री एडप्पादी के पलानीस्वामी ने सफाई कर्मियों की लंबे समय से चली आ रही मांग को मान लिया। थूइमाई पनियालारगल या सफाई कर्मचारियों को फिर से संगठित कर उन्हें सम्मानित किया गया। अब, कोरोनावायरस के खिलाफ राज्य की लड़ाई में सबसे आगे शहरी और ग्रामीण नागरिक निकायों द्वारा नियोजित 60,000 से अधिक स्वच्छता कर्मचारी ही हैं। वहीं चेन्नई नगर निगम ने उन्हें निगरानी के लिए लगाया है। प्रत्येक दिन, कचरे को इकट्ठा करने के अलावा, ये पैदल सैनिक घर-घर जाकर परिवारों में लक्षणों की पहचान के लिए सर्वेक्षण करते हैं। इसके बाद निगम के चिकित्सा अधिकारी डेटा का विश्लेषण करके अगले हस्तक्षेप की योजना बनाते हैं। सबसे ज्यादा भयभीत करने वाला है कि बिना बचाव उपायों के ही यह श्रम शक्ति बड़े पैमाने पर संचालित हो रही है। मास्क, सेनिटाइजर, दस्तानों और विशेष प्रशिक्षण के बिना ही संभावित संक्रमित व्यक्तियों के बीच इनका काम जारी है। कोयंबटूर की मानवाधिकार कार्यकर्ता एस बाला मुरूगन ने कहा कि पूरे तमिलनाडु में 2,00,000 सफाई कर्मचारी काम कर रहे हैं, इनमें ज्यादातर के पास बुनियादी बचाव के सामान जैसे दस्ताने, मास्क और ओवरकोट नहीं हैं। लॉकडाउन लागू होने के तुरंत बाद, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने कोरोनावायरस संक्रमण से बचाव के लिए सबसे आगे रहने वाले स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए एक मार्गदर्शिका जारी की। इसमें कहा गया कि भारत में पोषण देखभाल के लिए आशा, एएनएम (सहायक नर्स दाई, एक गांव-स्तर महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता) और एडब्ल्यूएम (आंगनवाड़ी कार्यकर्ता) स्वास्थ्य के तीन आधार हैं। केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान और पंचायती राज ने पंचायतों को संकट से लड़ने में मदद करने के लिए एक ई-लर्निंग पोर्टल, ग्राम स्वराज भी लांच किया लेकिन बहुत कम लोग इनसे लाभान्वित हुए। *डाउन टू अर्थ* ने ऐसे ही सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं से मुलाकात की जो मुंह पर कपड़ा लपेटे और बैग में एक साबुन रखकर निर्भीकता से कोरोनावायरस के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे हैं।

अग्नि रेखा पर खड़े पहरेदार

देश में पूरी तरह से लॉकडाउन लागू होने से पहले ही तमिलनाडु में अंतर राज्य

वाहनों और श्रमिकों का मूवमेंट प्रतिबंधित था, आशा कार्यकर्ता सीमाओं पर पहरेदारी कर रही थी। वहीं पुलिस यह सुनिश्चित कर रही थी कि सिर्फ वही वाहन चेक पोस्ट पार करे जो जरूरी सामान ढो रहे हैं। आशा कार्यकर्ता हर संदिग्ध यात्रियों की स्क्रीनिंग कर रहीं थीं और पूरे वाहनों पर रसायन का छिड़काव किया जा रहा था। तमिलनाडु में स्वास्थ्य सेवाओं के उपनिदेशक जी रमेश कुमार ने कहा कि पांच सदस्यीय टीमें विभिन्न और प्रमुख चेकपोट्स पर मौजूद रहीं। एक टीम में एक हेल्थ इंस्पेक्टर और चार आशा कार्यकताएं शामिल हैं। यह जांच टीम तमिलनाडु-केरल सीमा के साथ ही वालायर, नाडुप्पुनी, अनिकट्टी, मुथलामडा और मीनाक्षीपुरम में काम कर रही हैं।

केरल सीमा के पास तमिलनाडु के थेनकासी में ड्यूटी कर रहीं के मलारविझी ने कहा कि लॉकडाउन की घोषणा जिस दिन से हुई तब से स्थितियां काफी सजग करने वाली हो गईं। प्रतिदिन हम केरल से निकलने वाली सब्जियों से लदे ट्रकों को स्कैन कर रहे हैं, कम से कम 25 बसें 1,000 पलायन करने वाले श्रमिकों के साथ वापस आई हैं। अब जाकर कुछ हलचल थमी है और हम पहले से काफी सुरक्षित महसूस कर रहे हैं। फिर भी उन्होंने बचाव के लिए विशेष कपड़े पहन रखे हैं। मलारविझी उन कुछ भाग्यशालियों में एक हैं जो कोरोनावायरस के विरुद्ध लड़ाई लड़ रही हैं।

बेंगलुरू के बाह्य क्षेत्र में स्थित कनकपुरा में आशा कार्यकर्ता प्रभावती को कोरोनावायरस के भय के साथ ही हैजा (कॉलरा) के प्रसार से भी लड़ना पड़ रहा है। उनके क्षेत्र में मार्च के पहले दो हफ्तों में 80 गैस्ट्रोइंट्रोटाइटिस के मामले आए, इनमें कुल 17 मामलों में हैजा की पुष्टि हुई। पूरे दिन वह कोरोनावायरस के संदिग्धों की जांच और घरों में क्वारंटाइन होने वालों की जानकारी के लिए दौड़ती हैं और जरूरतमंद घरों को खाने का सामान और दवाइयां भी पहुंचा रही हैं। प्रभावती इतने पर नहीं रुकती हैं बल्कि उन्हें उन क्षेत्रों में भी लोगों को खाना-पानी इत्यादि की स्वच्छता संबंधी जागरुकता के लिए जाना पड़ता है जहां हैजा के मामले पता चल रहे हैं। वह कहती हैं कि कोरोनावायरस से जुड़े भ्रामक तथ्यों और अफवाहों को खत्म करने में उन्हें काफी परेशानी का सामना करना पड़ रहा है, आम लोगों में एक तरह का मानसिक भय है और वे उन लोगों के साथ विभेद कर रहे हैं जो किसी खास स्थानों से लौटे हैं। खासतौर से हज से लौटे लोगों को यह विभेद झेलना पड़ रहा है।

हालांकि, केरल में सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं ने मिसाल पेश की है, जहां जल्दी शुरू हुई जांच और मरीजों की पहचान ने कोरोनावायरस संक्रमण से जुड़े मामलों को बढ़ने से रोका है, वहीं देश में सबसे ज्यादा रोगियों की रिकवरी भी इसी राज्य में हुई है। केरल के स्वास्थ्य मंत्री केके शैलजा ने *डाउन टू अर्थ* से कहा कि जनवरी में ही जब पहला मामला सामने आया था, हमारे विभागों ने जमीनी स्तर पर प्राथमिकता के साथ नेटवर्किंग को मजबूती देने का काम शुरू कर दिया था। हमने आशा, आंगनवाड़ी और कुडुंबश्री कार्यकर्ता, जूनियर हेल्थ इंस्पेक्टर, जूनियर पब्लिक हेल्थ नर्स, वार्ड मेंबर्स और आवासीय कॉलोनियों के संगठनों के बीच सामंजस्य को सुनिश्चित किया।

केरल में गरीबी उन्मूलन मिशन के लिए महिला सशक्तिकरण का काम करने वाली महिलाएं कुडुंबश्री हैं। आशा और कुडुंबश्री कार्यकर्ताओं ने एयरपोर्ट पर स्क्रीनिंग सुविधाओं की खामियों को अच्छी तरह से दूर किया। उन्होंने उनका पीछा किया जो स्क्रीनिंग सुविधाओं से बचकर जा रहे थे। वे उनकी पहचान कर सूची भी बना रही थीं जो कोरोना संक्रमण के संपर्क में आए थे। स्वास्थ्य मंत्री केके शैलजा ने कहा कि हमने कोरोनावायरस से संक्रमित लोगों के लिए एक रूट मैप भी बनाया था। इसके अलावा 6,000 डॉक्टर और 9,000 नर्स, केरल पब्लिक हेल्थ सिस्मट के 15,000 स्वास्थ्य कार्यकर्ता जिसमें आशा कार्यकर्ता, कुडुंबश्री कार्यकर्ता, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, अस्पताल विकास समिति के सदस्य, निजी कार्यकर्ता और अन्य स्वास्थ्य कार्यकर्ता शामिल थे।

आखिरी व्यक्ति तक पहुंच

ऐसे क्षेत्र जहां स्वास्थ्य सुविधाएं और कल्याण के फायदों तक लोगों की पहुंच मुश्किल हो, साथ ही जहां सड़कें बेहद खराब हों, दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र हों और बुनियादी संरचनाओं का पूरी तरह अभाव हो, वहां सामुदायिक स्वास्थ्य कर्मियों की सेवा विशेष अहमियत वाली हो जाती है। ऐसा ही एक क्षेत्र है उड़ीसा के पश्चिमी भाग में बसा नौपाडा। उड़ीसा का यह जिला लोगों के पलायन को लेकर कुख्यात है। अनाधिकारिक अनुमान प्रदर्शित करते हैं कि 2018 में करीब 1,28,000 लोग वित्तीय संसाधनों और काम के अवसरों के अभाव में पलायन करके राज्य से बाहर गए। जिले के ही मुंडोसिल गांव में आशा कार्यकर्ता कमला टांडी कोरोनावायरस से लड़ने वाली एक योद्दा हैं। जब उन्हें कोरोनावायरस के विभिन्न राज्यों में फैलने का पता चला तो वे कुछ पल के लिए सिहर गईं। हाल ही में उन्होंने सुना था कि जनवरी में ही 15 युवक मुंबई से गांव लौटे हैं। टांडी को डर हुआ कि कहीं इन लोगों में कोरोना विषाणु प्रसार की बीमारी तो नहीं! वह आशा कार्यकर्ता सुभाषिनी पन के साथ युवाओं के घर गई। जिनमें 13 युवक मुंडोसिल गांव के थे जबकि दो पास के ही छोटे से गांव चचराभाटा के थे।

टांडी ने याद कर कहा कि उन्होंने सभी के नाम और उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा और उसे दर्ज किया था, एक लड़के में सर्दी और जुकाम के लक्षण थे और सभी को घर के भीतर ही रहने की सलाह दी गई थी। इसके बाद उनका अगला कदम गांव के सरपंच और खरियर ब्लॉक स्थित सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र को सूचित करना था। हालांकि युवाओं ने दी गई सलाहों पर अमल नहीं किया। टांडी मंडोसिल गांव में करीब 30 वर्षों से काम करती हैं, उन्होंने बताया कि हमने कई बार युवाओं को अलग-अलग रहने को कहा लेकिन उनके अभिभावकों ने उनके हमारे साथ बदसलूकी की और कहा कि उनके बच्चों का स्वास्थ्य एकदम ठीक है। हमने इसे दिल पर नहीं लिया। सीएचसी के डॉक्टर्स ने हमें प्रशिक्षण दिया है कि ऐसी स्थितियों में हमें कैसे शांत रहना चाहिए।

पास के ही बादी गांव में आशा कार्यकर्ता जानकी साहू भी कोविड-19 से लड़ाई लड़ रही हैं। उन्होंने बताया कि लॉकडाउन के दरमियान कुछ मजदूर गांव लौटे थे और डॉक्टर्स ने हमें उन पर कड़ी निगरानी रखने को कहा था। हालांकि युवाओं ने खुद ही अपने आप को आइसोलेट कर रखा था। जानकी ने बताया कि गांव के लोग खुद ही कोरोनावायरस के खिलाफ बचाव में कड़ाई से नियमों का

केरल में सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं ने मिसाल पेश की है, जहां जल्दी शुरू हुई जांच और मरीजों की पहचान ने संक्रमण से जुड़े मामलों को बढ़ने से रोका है, वहीं देश में सबसे ज्यादा रोगियों की रिकवरी भी इसी राज्य में हुई है

फोटो: पुरुषोत्तम ठाकुर

छत्तीसगढ़ के आदिवासी बहुल जिले धमतरी में मितानिन जागरुकता फैलाने के साथ स्वास्थ्य की दूसरी जरूरतों का भी पूरा खयाल रख रही हैं

पालन कर रहे हैं। यहां तक कि कुछ लोगों में सोशल डिस्टेंसिंग, साबुन से हाथ धोना और नहाने जैसी आदतें बन गई हैं। जानकी ने बताया कि गांव में दिखाई दे रहा यह बदलाव टीवी पर दिखाए जा रहे प्रचार और हमारे मोटिवेशन का नतीजा है। हालांकि, वह कहती हैं कि इस बीमारी के खिलाफ कुछ मानसिक परेशानियां भी दिखाई दे रही हैं। लोगों ने गांव के तालाबों और नहरों में नहाना बंद कर दिया है क्योंकि उन्हें भय है कि इससे उन्हें भी कोरोनावायरस हो जाएगा।

इन सावधानियों के साथ मध्य प्रदेश के पन्ना जिला प्रशासन ने आशा कार्यकर्ताओं को चौकन्ना बने रहने के लिए कहा था। भूख, गरीबी और हालिया सूखे के कारण बहुत से परिवारों ने जिले से दूसरे शहरों को पलायन किया था। फैक्ट्रियों के बंद होने से वे वापस गांवों को लौट आए। जारहोबा गांव में आशा कार्यकर्ता रेखा शिवरेतो ने कहा कि उन्होंने गांव में दिन में दो बार दौरा करके रीयल टाइम आंकड़े जुटाए। परिवार के सभी सदस्यों को मास्क न होने अथवा सेनिटाइजर्स की अनुपस्थिति में चेहरे पर मोटा तौलिया बांधने और हाथों को साबुन से लगातार धुलने की सलाह भी दी।

वहीं, छत्तीसगढ़ में आदिवासी बहुल धमतरी जिले में सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता और मितानिनों ने खुद और समुदाय की सुरक्षा के लिए बेहतरीन तरीका खोजा। कुमहाडा गांव में बतौर मितानिन काम करने वाली उर्मिला मकराम एक सफेद कपड़े का खुद से तैयार मास्क पहन रही हैं। वह बताती हैं कि मैं इसे रोजाना काम से घर वापस आकर धोती हूं और दोबारा इस्तेमाल करती हूं। उन्होंने लोगों के बीच उचित दूरी बनाकर सफलतापूर्वक सामाजिक जुटान भी करवाई। गांव की ही निवासी भारती मकराम बताती हैं कि उनकी मां का देहांत एक सड़क दुर्घटना में हो गया था इसलिए अप्रैल के पहले हफ्ते में पूरा परिवार नहावन की परंपरा को निभाता है। जब मितानिन उर्मिला कमराम को यह पता चला तो उन्होंने भारती से कहा कि वो कम से कम रिश्तेदार को ही इस काम-काज के लिए बुलाएं। साथ ही बुजुर्गों को गले लगाने और छूने जैसे अभ्यास न करें। यह हिदायत भी दी गई कि सभी रिश्तेदार उसी दिन वापस लौट जाएं। भारती ने दी गई सलाहों पर अमल किया हालांकि उर्मिला ने पास की पांच अन्य मितानिनों को लोगों के बीच उचित दूरी बनाए रखकर परंपरा निभाने में मदद के लिए बुलाया। उर्मिला बताती हैं कि वह इस परंपरा को पूरा कराने के लिए पूरे दिन गांव के उस तालाब के पास रही जहां नहावन होना था। रायपुर में राज्य स्वास्थ्य संसाधन केंद्र के प्रबीर चटर्जी ने बताया कि छत्तीसगढ़ में कुल 70,000 मितानिन हैं, लॉकडाउन के दौरान मितानिन ही गांव के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में खाना परोसने का काम करती हैं।

भूखे को भोजन

मध्य प्रदेश के पन्ना जिले के करौंदी गांव में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता आशा सिंह

कहती हैं कि तालाबंदी के बाद उन्हें लोगों को नियमित अंतराल पर हाथ धोने और सामाजिक दूरी बनाए रखने के बारे में शिक्षित करने के लिए कहा गया है। हालांकि यह ऐसी जगह पर काफी कठिन काम है जहां पानी की उपलब्धता कम है और लोग जलावन लकड़ी इकट्ठा करने के साथ ही वन उपज पर निर्भर हैं। खाने के पैकेट ने इनकी कठिनाइयों को कम किया है।

लॉकडाउन के बाद से आंगनवाड़ी केंद्र पूरी तरह बंद हैं और बच्चों को पोषणयुक्त आहार दिया जा रहा है। दूध पिलाने वाली मांओं के दरवाजे तक सूखा राशन पहुंचाया जा रहा है। हालांकि केरल ने यह सुनिश्चित किया है कि आंगनवाड़ी का कोई भी लाभार्थी भोजन बिना न रह जाए। यहां तक कि कोरोनावायरस के समय कोई भूखा न रह जाए। सरकार ने हर गरीब के घर तक मुफ्त में खाद्य पहुंचाने का आदेश दिया है।

केरल में कुदुम्बश्री कार्यकर्ताओं की मदद से स्थानीय प्रशासन के द्वारा सामुदायिक किचन की भी शुरुआत की गई है। इस रसोई का मुख्य मकसद ऐसे श्रमिकों को सस्ते में पका हुआ भोजन देना है जो राज्य में इधर-उधर भटक रहे हैं। सामुदायिक रसोई से कोई भी महज 20 रुपए में खाना खरीद कर खा सकता है। साथ ही सामुदायिक रसोई से 5 रुपए अतिरिक्त खर्च करके होम डिलीवरी का भी ऑर्डर दिया जा सकता है। केरल के वित्त मंत्री टीएम थॉमस इसाक ने कहा कि लॉकडाउन के दौरान सरकार के साथ कुदुम्बश्री भूख के खिलाफ बेहतर लड़ाई लड़ रही हैं।

विकेंद्रीकृत व्यवस्था

महामारी से लड़ने के लिए उत्तराखंड में सबसे बेहतरीन विकेंद्रीकृत शासन का प्रयास देखा जा सकता है। यह राज्य अपने मजबूत स्थानीय निकायों के लिए जाना जाता है, यहां ढूंढा ब्लॉक के धनेती गांव में ग्राम प्रधान हर्ष बहुगुणा जी-जान से काम कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि लॉकडाउन की घोषणा के तुरंत बाद ही सरकार ने हमें घर लौटने वाले सभी परिवारों की स्क्रीनिंग करने व संदिग्ध लोगों को एकांत में भेजने के लिए कहा था। वह बताते हैं कि उस वक्त मास्क, दस्ताने और सेनिटाइजर के लिए कोई प्रावधान नहीं किया गया था। हमने जो दर्जी खाली बैठे थे, उन्हें जुटाया और उनके जरिए कुछ ही दिनों के भीतर 600 से 700 मास्क तैयार कर दिए। इन मास्क को आशा और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के जरिए घर को वापस लौट के आए श्रमिकों के बीच बांटा गया। बहुगुणा ने उद्यान विभाग से कुछ सब्जियों जैसे टमाटर शिमला मिर्च और आलू के बीज भी हासिल किए गए हैं और वह गांव के युवाओं को उसकी बुआई के लिए बांट रहे हैं ताकि यदि लॉकडाउन बढ़े भी तो सब्जियों की कमी न पड़े और इन सब्जियों को बेचकर कमाई भी की जा सके। उत्तरकाशी जिले के भटवाड़ी ब्लॉक की प्रमुख विनीता रावत ने उनके परिवार के स्वामित्व वाले होटल को क्वारंटाइन सेंटर में बदलने की पेशकश की है। गांव प्रमुख के अलावा महिलाओं के स्वयं सहायता समूह भी मदद कर रहे हैं।

देहरादून के साहसपुर ब्लॉक में शक्ति स्वयंसेवा समूह के संस्थापक गीता

फोटो: हर्षवर्धन बहुगुणा

उत्तराखंड के देहरादून में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता तीन महीने के लिए सूखे राशन के पैकेट तैयार कर रही हैं ताकि जरूरतमंदों तक इन्हें पहुंचाया जा सके

मौर्या सरकार के पोषण अभियान के तहत ब्लॉक के 43 आंगनवाड़ी केंद्रों से घर-घर राशन पहुंचाने का अभियान चला रही हैं। लॉकडाउन के बाद सरकार ने आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं से कहा है कि वह लाभार्थियों को अग्रिम 3 महीने का राशन मुहैया कराएं। गीता मौर्या बताती हैं कि घर-घर राशन पहुंचाने वाले कार्यकर्ताओं की सुरक्षा के लिए कोई प्रावधान नहीं किया गया है। हमने 3,000 डबल और ट्रिपल लेयर वाले मास्क तैयार किए हैं जिन्हें हम आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के जरिए घर-घर राशन पैकेट के साथ बांट रहे हैं। इसके अलावा हमारे क्षेत्र में मजदूरों को भी यह मास्क दिया जा रहा है। सभावाला में समतल करने वाले मजदूरों को चावल बांटने के लिए स्वयं सहायता समूह अब राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के परामर्श में है। कोरोनावायरस ने पहाड़ी राज्यों को भी अपने शिकंजे में ले लिया। वहीं मास्क दस्ताने और सेनिटाइजर्स की भी मांग वहां काफी ज्यादा बढ़ गई। गीता मौर्या ने बताया कि कुछ दिन पहले दूसरे जिलों से मास्क बनाने वाले कपड़े इलास्टिक और धागों की मांग की गई थी। यह दिल को सुकून देने वाला था कि ब्लॉक विकास अधिकारी खुद अपने वाहन से यह सारा सामान लेने आए थे। इस वक्त वे दूसरे गांव की महिलाओं को मास्क बनाने की वर्चुअल ट्रेनिंग दे रही हैं।

जीवन-मृत्यु का खेल

कोरोना संक्रमण के इस दौर में जहां एक ओर लोग घरों में खुद को महफूज किए हुए हैं वहीं कुछ ऐसे भी जीवट हैं जो असहाय लोगों की सेवा में दिन-रात अथक मेहनत कर रहे हैं। इन्हीं में एक नाम है 25 वर्षीय राहुल का। सुबह हो या शाम राहुल अकेले ही पूर्वी दिल्ली के दो से तीन बड़े पक्के रैनबसेरों में पहुंचकर साफ-सफाई का काम पूरा करते हैं। इन दिनों 200 से अधिक मजदूरों को खाना परोसने में मदद भी करवाते हैं। बिना किसी सुरक्षा और विशेष प्रशिक्षण के वह पूरे मनोयोग से अपने काम में डटे हुए हैं।

नियम के मुताबिक हर रैनबसेरे के पास एक सफाईकर्मी होना चाहिए। कोरोना संक्रमण के डर और तनख्वाह नहीं मिलने के कारण रैनबसेरों में सफाईकर्मियों की कमी बनी हुई है। दिल्ली सरकार ने 23 मार्च को एक पत्र जारी कर रैनबसेरों में सफाईकर्मियों की नियुक्ति को लेकर आदेश भी जारी किया है, हालांकि अभी तक सफाईकर्मी आए नहीं हैं। राहुल का अस्थायी ठिकाना पूर्वी दिल्ली में गाजीपुर थोक पेपर मार्केट में स्थित सबसे बड़ा रैनबसेरा है। वह *डाउन टू अर्थ* से कहते हैं, "मैं 24 घंटे यहीं रहता हूं। मुझे पता है कि कोरोना संक्रमण फैला हुआ है लेकिन क्या करूं? पेट का सवाल है। मैं अपने काम को पूरे मन से कर रहा हूं।" मूलरूप से बिहार के सीतामढ़ी जिला मुख्यालय से 20-25 किलोमीटर दूर अक्टा बाजार में उनका पुश्तैनी घर है। राहुल बताते हैं कि वह 11 वर्ष के थे, जब उनके माता-पिता का देहांत हो गया। 2011 में एक गांव वाले की मदद से दिल्ली आ गए। कुछ वर्ष चाय की दुकानों पर काम किया फिर सफाई का काम करने लगे। 2013 में उन्हें अक्षरधाम रैनबसेरे का काम मिला। 7,000 रुपए प्रतिमाह वेतन के साथ वह इसी काम में जुटे हुए हैं। कोरोना संक्रमण के दौरान दिल्ली से पलायन करने वाले मजदूरों को इन्हीं रैनबसेरों में रुकवाया गया है। इन रैनबसेरों में आरसीसी, पोर्टा केबिन, अस्थायी भवन, टेंट आदि शामिल हैं। कोरोना संक्रमण में एक मीटर की दूरी का खयाल करते हुए इनमें 23,478 लोग रुक सकते हैं। करीब 7852 लोग अभी रैनबसेरों में रुके हैं।

पूर्वी दिल्ली में गाजीपुर थोक पेपर मार्केट समेत करीब 13 रैनबसेरों की देखभाल का जिम्मा 63 वर्षीय रमेश कुमार शर्मा पर है। राजस्थान में जयपुर के रहने वाले रमेश कुमार ने बताया कि वह सुपरवाइजर हैं और उनके अधीन करीब 30 लोग इन रैनबसेरों पर काम कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि हममे से ज्यादातर लोग जिदंगी और मौत का खेल खेल रहे हैं। क्योंकि हम बाहर से आने वाले इतने लोगों के बीच काम कर रहे हैं। कब किस व्यक्ति से हममे कोरोना संक्रमण हो जाए क्या मालूम? वह बताते हैं, "हमें किसी तरह का बीमा नहीं मिलेगा। हम इसकी मांग भी कर रहे हैं। यदि कोई ऐसी विपदा होती है तो हमारा परिवार क्या करेगा। हम अपने घर भी नहीं जा पा रहे। इन रैनबसेरों की देखभाल करने वालों में 90 फीसदी लोग दूसरे राज्यों से हैं। इसके बावजूद किसी पर कर्ज है तो किसी को नौकरी खोने का डर है। सभी जोखिम में भी काम कर रहे हैं।" वह आगे कहते हैं कि कोई चिकित्सक या जांच व्यवस्था इन मजदूरों के लिए उपलब्ध नहीं है। हमें भी भय है लेकिन दायित्व भी है। हम इसे निभा रहे हैं, अगर हमारे लिए भी सरकारों ने कुछ सोचा तो बेहतर होगा। हमें तनख्वाह एक गैर सरकारी संस्था की तरफ से मिलती है। दिल्ली शहरी आश्रय सुधार बोर्ड ने यह काम गैर सरकारी संस्थाओं के बीच ही बांट रखा है। इन संस्थाओं ने हमें नियुक्त किया है।

रैनबसेरे में काम करने वाले ज्यादातर लोगों के पास कोरोना संक्रमण से बचाव का बुनियादी उपकरण नहीं है। इनके पास सर्जिकल मास्क है जो एक या दो दिन में खराब हो जाता है। इसके अलावा खाना परोसने से लेकर तमाम मुश्किलों का सामना इन्हें खुद रैनबसेरों में करना पड़ रहा है। कई रैनबसेरों में कर्मियों को ठेका वाले एनजीओ की तरफ से तनख्वाह भी नहीं दी जाती। ये गुमनाम हीरों हैं जो कोरोना संक्रमण की लड़ाई चुपचाप और भविष्य का अंधकार लेकर लड़ रहे हैं।

आशाओं में निराशा

सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता की जिम्मेदारी संभाल रहीं आशा वर्करों की जिंदगी अनिश्चितताओं से भरी है

एक आशा वर्कर की नियुक्ति प्रशिक्षित सामुदायिक स्वास्थ्य सेविका के रूप में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत होती है। उन पर 43 कामों की जिम्मेदारी होती है जैसे, ड्रग रेजिस्टेंट टीबी मरीजों को दवाएं देना, ओआरएस (ओरल डिहाइड्रेशन सॉल्यूशन) पैकेट का वितरण आदि। इन आशा वर्करों की मौजूदगी उन स्थानों पर भी होती है जहां सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का अस्तित्व नहीं होता। इतना कुछ करने के बावजूद उन्हें बहुत कम भुगतान किया जाता है। यह भुगतान दिहाड़ी मजदूर से भी कम होता है। वह हर काम के लिए एक निर्धारित मेहनताना प्राप्त करती हैं, जैसे संस्थानिक प्रसव पर 300 रुपए, परिवार नियोजन के लिए 150 रुपए और टीकाकरण के दौरे के लिए 100 रुपए। यह आय भी बड़ी अनिश्चित होती है। कई राज्यों में आशा वर्करों का बकाया दो साल से लटका है। वह अपनी मांगों, बकाए के भुगतान, श्रम कानून के तहत निर्धारित वेतन और भविष्य निधि व वृद्धावस्था पेंशन जैसी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लिए समय-समय पर प्रदर्शन भी करती रहती हैं। ऑल इंडिया फेडरेशन ऑफ आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स के महासचिव एआर सिंधु कहते हैं, "आशा वर्करों की ये मांगे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि अधिकांश आशा वर्कर विधवा हैं या समाज के कमजोर तबके से ताल्लुक रखती हैं।" वह कहते हैं कि भले ही सरकार ने कोरोनावायरस से लड़ाई में योगदान देने के लिए 1,000 रुपए देने का आश्वासन दिया है, लेकिन वे अपने नियमित काम छूटने पर दूसरी आय से वंचित रह जाएंगी। वे बिना किसी प्रशिक्षण और रक्षात्मक उपकरणों के पहली रक्षा पंक्ति की तरह काम कर रही हैं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि उनके बीमार पड़ने पर सरकार उनके स्वास्थ्य पर होने वाला खर्च उठाएगी भी या नहीं।

“कोरोना से विज्ञान बचाएगा, रूढ़िवादी अर्थव्यवस्था नहीं”

ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान आए अकाल में क्लासिकल इकोनॉमिक्स लाखों लोगों की अकाल मौत का कारण बना। आर्थिक रूढ़िवाद आज भी उतना ही घातक साबित हो सकता है

जस्टिन पोदुर

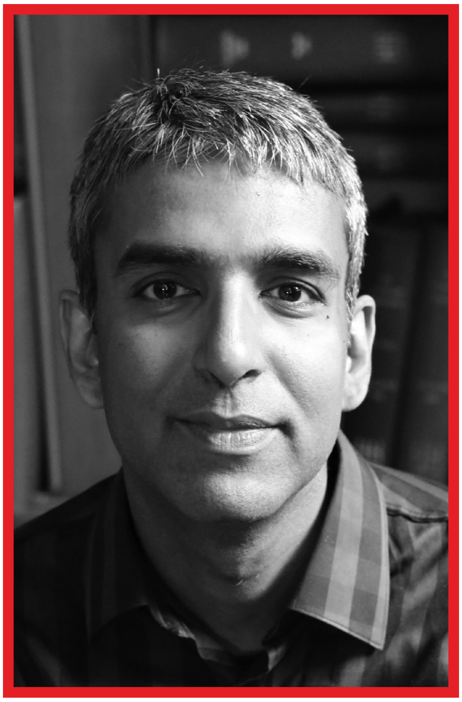

मैं यह लेख उस वक्त लिख रहा हूं जब दुनिया भर में कोरोना संक्रमितों की संख्या करीब 30 लाख से ऊपर पहुंच चुकी है और दो लाख से अधिक मौतें हो चुकी है (सोशल मीट्रिक उपकरण, वर्ल्डोमीटर के अनुसार)। केवल चीन और कोरिया इस पर कुछ हद तक नियंत्रण करते दिख रहे हैं। अमेरिकी सरकार ने 2 ट्रिलियन डॉलर के प्रोत्साहन पैकेज की घोषणा तो की है, लेकिन इसमें अधिकांश लोगों के लिए नौकरी की सुरक्षा, किराए को स्थगित करने या सार्थक आय सहायता की बात कहीं नहीं दिखती। मौजूदा वक्त के संकट को हम किस अन्य संकट के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके समझ सकते हैं? क्या वह एड्स का संकट है, 2008 का आर्थिक संकट है या सार्स महामारी का संकट?

हर संकट की तुलना मौजूदा स्थिति के एक हिस्से की कहानी बयान कर सकती है। 23 मार्च को ट्रम्प ने सार्वजनिक स्वास्थ्य वैज्ञानिकों की सलाह की अनदेखी करते हुए सभी लोगों को कुछ सप्ताह के भीतर काम पर वापस भेजने की बात कही। ब्राजील के राष्ट्रपति जेर बोल्सोनारो और बोरिस जॉनसन ने भी इसी तरह का रुख अपनाया। बोल्सोनारो तो ये नकारने में ही व्यस्त रहे कि ब्राजील में ऐसा कोई संकट है। वहीं, बोरिस जॉनसन बेवजह की बहादुरी प्रदर्शित करते हुए अपने लोगों की मजबूत प्रतिरोधक क्षमता का गुणगान करते रहे। यह अलग बात है कि कुछ ही दिन बाद उनके मंत्री इस बयान से पीछे हटते नजर आए। इस संकट को लेकर एक चीज स्पष्ट दिख रही है कि वैज्ञानिक तथ्यों के मुकाबले आर्थिक अनुमानों को प्राथमिकता दी जा रही है। मौजूदा संकट की कहानी दुनिया के अंतिम महान ब्रिटिश साम्राज्य के एक खास विचार की वजह से लाखों लोगों के भुखमरी के कगार पर पहुंचने की कहानी से मेल खाती है।

18वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार होने के साथ ही यहां के बुद्धिजीवियों ने इस साम्राज्य के लिए एक विशेष विचार विकसित किए, जिसका नाम था क्लासिकल इकोनॉमिक्स। अमेरिका में स्वदेशी लोगों के खिलाफ कई नरसंहार युद्धों और भारत में साम्राज्य की शुरुआत के बाद 1776 में एडम स्मिथ की द *वेल्थ ऑफ नेशंस* प्रकाशित हुई थी। इस क्लासिकल थ्योरी में डेविड रिकार्डो, थॉमस माल्थस और जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपना योगदान दिया। जैसे ही साम्राज्यवादियों ने अपने नियंत्रण को मजबूत किया, उन्होंने बड़े पैमाने पर भुखमरी को रोकने के लिए स्थानीय सरकारी प्रणालियों को ध्वस्त कर दिया। इसके बाद ही पूरे भारत में अकाल शुरू हो गया। शशि थरूर ने अपनी पुस्तक, *इंग्लोरियस एम्पायर : व्हाट द ब्रिटिश डिड टू इंडिया* में इन तथ्यों को संकलित किया है कि कैसे 1770 में बंगाल से शुरू होकर 1943 के दौरान मद्रास, दिल्ली और बॉम्बे में अकाल का कहर बरपा। सिर्फ 20वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान भारत में अकाल से 3.5 करोड़ लोग मारे गए थे।

इसी सिद्धांत के नाम पर अंग्रेजों ने आयरिश लोगों को भी भूखा मारा। यहां 1845-49 के मध्य आलू अकाल (पोटैटो फेमाइन) पड़ा और आयरिश इसी सिद्धांत के शिकार बने। 2006 में एडवर्ड ओ बॉयल ने क्लासिकल इकोनॉमिक्स को आयरिश अकाल से जोड़ा और निम्न नियमों से क्लासिकल इकोनॉमिक्स की पहचान की:

1. स्व-हित का नियम,
2. मुक्त प्रतियोगिता का नियम
3. जनसंख्या का नियम
4. मांग और आपूर्ति का नियम
5. मजदूरी का लौह नियम
6. किराए का नियम
7. मुक्त व्यापार सिद्धांत

ये कानून, जैसा कि एक आलोचक के रूप में कार्ल पोलानी ने स्व-समायोजन बाजार के बारे में लिखा है, “मानव और समाज के प्राकृतिक तत्वों को नष्ट किए बिना ये लम्बे समय तक अस्तित्व में नहीं रह सकते, इसने मनुष्य को शारीरिक रूप से नष्ट किया है और उसके परिवेश को तबाह किया।” 1876-78 के बीच दक्षिणी भारत में आए एक अकाल के दौरान ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड लिटन ने घोषणा की,

ट्रम्प और उनके रास्ते पर चलने वाले महामारी विज्ञान से उसी तरह घृणा करते हैं, जैसे जलवायु विज्ञान का तिरस्कार करते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि विज्ञान उन वास्तविकताओं की बात करता है, जो उनकी विचारधाराओं को चुनौती देते हैं

"भोजन की कीमत को कम करने के लिए सरकार की ओर से किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।" जोहान हैरी एक ब्रिटिश अधिकारी सर रिचर्ड टेम्पल की कहानी कहते हैं। टेम्पल ने एक अकाल के दौरान भूखे लोगों के लिए कुछ खाने का इंतजाम किया था। द *इकोनॉमिस्ट* पत्रिका ने उनके इस कार्य की निन्दा करते हुए लिखा, "उन्हें (भारतीयों को) जीवित रखने का कर्तव्य सरकार का है।" उस साम्राज्य के दौरान क्लासिकल आर्थिक सिद्धांत और अकाल के साथ नस्लवाद का जहर भी जोड़ दिया गया। ओ बॉयल 1875 में क्लासिकल अर्थशास्त्री विलियम स्टेनली जेवन्स द्वारा दिए गए एक व्याख्यान का हवाला देते हैं, जिसमें स्टेनली ने कहा, "एक अकाल की शुरुआत प्राकृतिक घटनाओं के रूप में देखने को मिलती है। समाज की प्रारंभिक अवस्था में युद्ध सामान्य स्थिति है। उदाहरण के लिए उत्तरी अमेरिकी इंडियंस का एकमात्र गंभीर काम और मनोरंजन, युद्ध ही था। जिस तरह से आयरिश हमारे बड़े शहरों में और अपने देश के कुछ हिस्सों में रहते हैं, इस बात की संभावना है कि वे जल्दी मरे।" अंग्रेजों के पास अकाल का साम्राज्य था। आज हम प्रतिबंधों के साम्राज्य में रहते हैं। आज, ईरान, वेनेजुएला और गाजा महामारी और घेराबंदी का तनाव एक साथ झेल रहे हैं। ऐसे में उनके राजनयिक वर्तमान संकट से निकलने के लिए अमेरिका से भीख मांग रहे हैं कि उन पर लगे प्रतिबन्धों को हटाया जाए। लेकिन, इसका कोई फायदा नहीं हुआ है। रिमोट-कंट्रोल (दूर से नियंत्रित) सामूहिक हत्या अमेरिकी नीति का एक ऐसा ठोस हिस्सा है, जिसे वैश्विक महामारी के कारण अमेरिका स्थगित नहीं करेगा।

सदियों से अर्थशास्त्र को किस हद तक परिष्कृत किया गया है? यह किस हद तक प्रमाणों से लैस है? मुख्यधारा के अर्थशास्त्र से अलग विद्वानों का कहना है, "बहुत ज्यादा नहीं।" 2001 में अपरंपरागत अर्थशास्त्री जेम्स गैलब्रेथ ने आज के अर्थशास्त्र में व्यापक रूप से स्वीकृत पांच प्रस्तावों को सूचीबद्ध करते हुए एक लेख लिखा। ये पांच प्रस्ताव है, मुद्रास्फीति एक मौद्रिक घटना है, मुद्रास्फीति के बिना पूर्ण रोजगार असंभव है, तकनीकी परिवर्तन से वेतन वृद्धि असमानता बढ़ती है, न्यूनतम मजदूरी बढ़ने से बेरोजगारी बढ़ती है और निरंतर वृद्धि प्रति वर्ष 2.5 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती। अब ये देखना दिलचस्प है कि कैसे उनमें से प्रत्येक प्रस्ताव को आर्थिक सबूतों द्वारा अविश्वसनीय बनाया गया और सबूतों के बावजूद वे कैसे अभी तक जारी है। उसी वर्ष, अपरंपरागत ऑस्ट्रेलियाई अर्थशास्त्री स्टीव कीन ने मुख्यधारा के रूढ़िवाद की सैद्धांतिक और अनुभवजन्य विफलताओं को लेकर *डिबंकिंग इकोनॉमिक्स: द नेकेड एम्परर ऑफ सोशल साइंसेज* प्रकाशित किया। एक दशक बाद, इकोननेड किताब में यवेस स्मिथ ने उन तरीकों की एक सूची एकत्र की, जिन पर ऐसे आर्थिक मॉडल बनाए गए हैं, जिन्हें डेटा समर्थन तक नहीं है। वास्तविक अर्थव्यवस्थाओं को लेकर दिलचस्प दृष्टिकोण पैदा करने वाले इस तरह के कार्यों की संख्या बहुत अधिक है, लेकिन इन्हें अर्थशास्त्र की मुख्यधारा द्वारा खारिज कर दिया गया है।

वैकल्पिक विचारों को लेकर मुख्यधारा का अर्थशास्त्र इतना अधिक सख्त है कि विश्वविद्यालयों के अपरंपरागत अर्थशास्त्रियों को पॉलिटिकल इकोनॉमी ऐट स्टैनफोर्ड या इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिकल स्टडीज ऐट नोट्रे डैम जैसे विभिन्न कार्यक्रमों में भेज दिया गया। इन कार्यक्रमों को 2003 में अर्थशास्त्र विभाग से अलग कर दिया गया था और फिर 2010 में बंद ही कर दिया गया। यूनिवर्सिटी ऑफ मैनिटोबा में रूढ़िवादी और अपरंपरागत अर्थशास्त्र के बीच संघर्ष इतना नाटकीय हो गया था कि कैनेडियन एसोसिएशन ऑफ यूनिवर्सिटी टीचर्स को 2015 में विभाग की जांच तक करनी पड़ी। विज्ञान अलग तरह से काम करता है। जैसा कि आइंस्टीन ने कहा था, विज्ञान रोजमर्रा की सोच का परिशोधन है। मेरे लिए विज्ञान मानव जिज्ञासा का व्यवस्थित उपयोग है। ऐसे कई विद्वान हैं, जो वैज्ञानिक रूप से सोचते हैं। जो अर्थव्यवस्था के बारे में पारदर्शी धारणाओं का उपयोग करते हैं और साक्ष्य व तर्क के जरिए निष्कर्ष निकालने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं। लेकिन इन विद्वानों को अर्थशास्त्र के पेशे से बाहर रखा गया है। और यही अर्थशास्त्र का काम है कि वह वास्तविक धारणाओं और आर्थिक वास्तविकताओं को नकारते हुए, उन मॉडलों का निर्माण करता है, जो आपदाओं और महामारी के दौरान नीति निर्धारित करते हैं।

ट्रम्प ने घोषणा की कि वह कुछ हफ्तों के भीतर फिर से कारोबार शुरू करवाना चाहते हैं। इस घोषणा पर यह चर्चा हुई कि अर्थशास्त्रियों की बात सुनी जाए या डॉक्टरों की। यह दो विज्ञानों के बीच कोई विवाद नहीं है। यहां विज्ञान का काम केवल डॉक्टर कर रहे हैं। पूर्व के वायरस और संकट हमें केवल संकेत दे सकते हैं। इस संकट को लेकर हमारे पास जो सबसे सार्थक आंकड़े हैं, वे उन देशों से आते हैं, जो इस संकट से बुरी तरह ग्रसित है, जैसे, चीन, कोरिया, इटली, ईरान आदि। कोई भी सांख्यिकी प्रयोग हमें इसी डेटा से शुरू करना होगा और किसी भी समाधान को तलाशने के लिए हमें इन्हीं उदाहरणों का अध्ययन करना होगा। ट्रम्प और वैसे वैश्विक दक्षिणपंथी, जो उनका अनुसरण करते हैं (बोल्सोनारो, जॉनसन, आदि) महामारी विज्ञान से उसी तरह घृणा करते हैं, जैसे वे जलवायु विज्ञान का तिरस्कार करते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि विज्ञान उन वास्तविकताओं की बात करता है, जो सीधे-सीधे उनकी विचारधाराओं को चुनौती देते हैं और उनकी विचारधाराओं के प्रचार-प्रसार में व्यावधान पैदा करते हैं। विज्ञान इस बात को लेकर स्पष्ट है कि जीवन बचाने का काम, सुपर-रिच देशों द्वारा समाज और पर्यावरण के विनाश के लिए किए जा रहे कार्यों में बाधा उत्पन करेगा।

जलवायु विज्ञान के बारे में एक दशक पहले विज्ञान गल्प कथा (साइंस फिक्शन) लेखक किम स्टेनली रॉबिन्सन ने जो कहा था, वह इस वक्त सच होता दिख रहा है। उन्होंने कहा था, "इस वक्त जो हो रहा है, वह विज्ञान और पूंजीवाद के बीच एक बहुत बड़ा वैश्विक ऐतिहासिक युद्ध है। विज्ञान हर दिन और जोरदार तरीके से कह रहा है कि यह एक वास्तविक और वर्तमान खतरा है। पूंजीवाद कह रहा है कि यह खतरा नहीं है, क्योंकि अगर यह सच है तो इसका अर्थ होगा अर्थव्यवस्थाओं पर अधिक सरकारी नियंत्रण, अधिक सामाजिक न्याय (जलवायु स्थिरीकरण तकनीक के रूप में) आदि।" अगर हम विज्ञान को सुन सकें, तो विज्ञान इस वक्त हमारी मदद कर सकता है। दूसरी ओर रूढ़िवादी आर्थिक मॉडलों का अनुसरण जारी रहा तो लोगों को निश्चित रूप से उसी तरह मार दिया जाएगा जैसाकि एक सदी पहले मारा जाता था।

(लेखक यॉर्क यूनिवर्सिटी के फैकल्टी ऑफ एनवायरमेंट स्टडीज में असोसिएट प्रोफेसर हैं। लेख प्रेसेंजा से साभार)

डिजीज एक्स है कोविड-19

संक्रामक रोगों की हमारी समझ में सुधार हुआ है, फिर भी महामारी के उभार से संबंधित सभी पहलुओं को पूरी तरह से नहीं समझ सके हैं

विभा वार्ष्णेय

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने 2018 में 10 रोगों की एक ऐसी सूची जारी की थी, जो महामारी पैदा कर सकते हैं। ये सभी वायरल बीमारियां थी। जीका, इबोला और सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम (सार्स – कोरोनावायरस जनित) जैसे वायरस के अलावा, इस सूची में अज्ञात वायरस जनित डिजीज एक्स (बीमारी एक्स) का भी जिक्र था। अब ये माना जा रहा है कि कोविड-19 ही अज्ञात वायरस जनित डिजीज एक्स है। नीदरलैंड की इरास्मस यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर के वायरोसाइंस विभाग की हेड मैरियन कूपमंस जर्नल सेल में लिखती हैं, "यह प्रकोप (कोविड-19) तेजी से चुनौती बनता जा रहा है जो डिजीज एक्स श्रेणी में फिट बैठता है।" पीटर दासजक, डब्ल्यूएचओ की उस टीम का हिस्सा थे, जिसने 2018 की सूची बनाई थी। दासजक ने न्यूयॉर्क टाइम्स में लिखा है कि उनकी टीम ने अनुमान लगाया था कि डिजीज एक्स जानवरों से उत्पन्न होने वाली एक वायरल डिजीज होगी और ऐसी जगह पर उभरेगी, जहां आर्थिक विकास ने लोगों और वन्यजीवों को एक साथ जोड़ा है। इस टीम ने भविष्यवाणी की थी कि प्रारंभिक अवस्था में इस बीमारी को लेकर भ्रम की स्थिति होगी। इसे अन्य बीमारी के रूप में समझा जा सकता है। लेकिन ये यात्रा और व्यापार के कारण जल्दी से पूरी दुनिया में फैल जाएगी। डिजीज एक्स का मृत्यु दर मौसमी फ्लू की तुलना में अधिक होगा और फ्लू की तरह ही आसानी से फैलेगा। यह महामारी बनने से पहले ही वित्तीय बाजारों को झकझोर देगा। वह लिखते हैं, "कोविड -19 ही डिजीज एक्स है।" कोविड-19 के कारण हुई तबाही इस बात की भी तस्दीक करती है कि दुनिया को बेहतर ढंग से महामारी को समझने और प्रबंधित करने की जरूरत है। पेंसिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी के पशु चिकित्सा और जैव चिकित्सा विभाग के एनीमल डायगनोस्टिक लैब के सहायक निदेशक

2011 से 2018 के बीच 172 देशों में 1,483 महामारी की घटनाएं सामने आईं। 60 फीसदी महामारी जूनोटिक थी यानी पशुओं से मनुष्यों में फैली थीं

फोटो : रॉयटर्स

लगातार होते हमले

पिछले 50 सालों में रोगाणुओं की वैश्विक उत्पत्ति

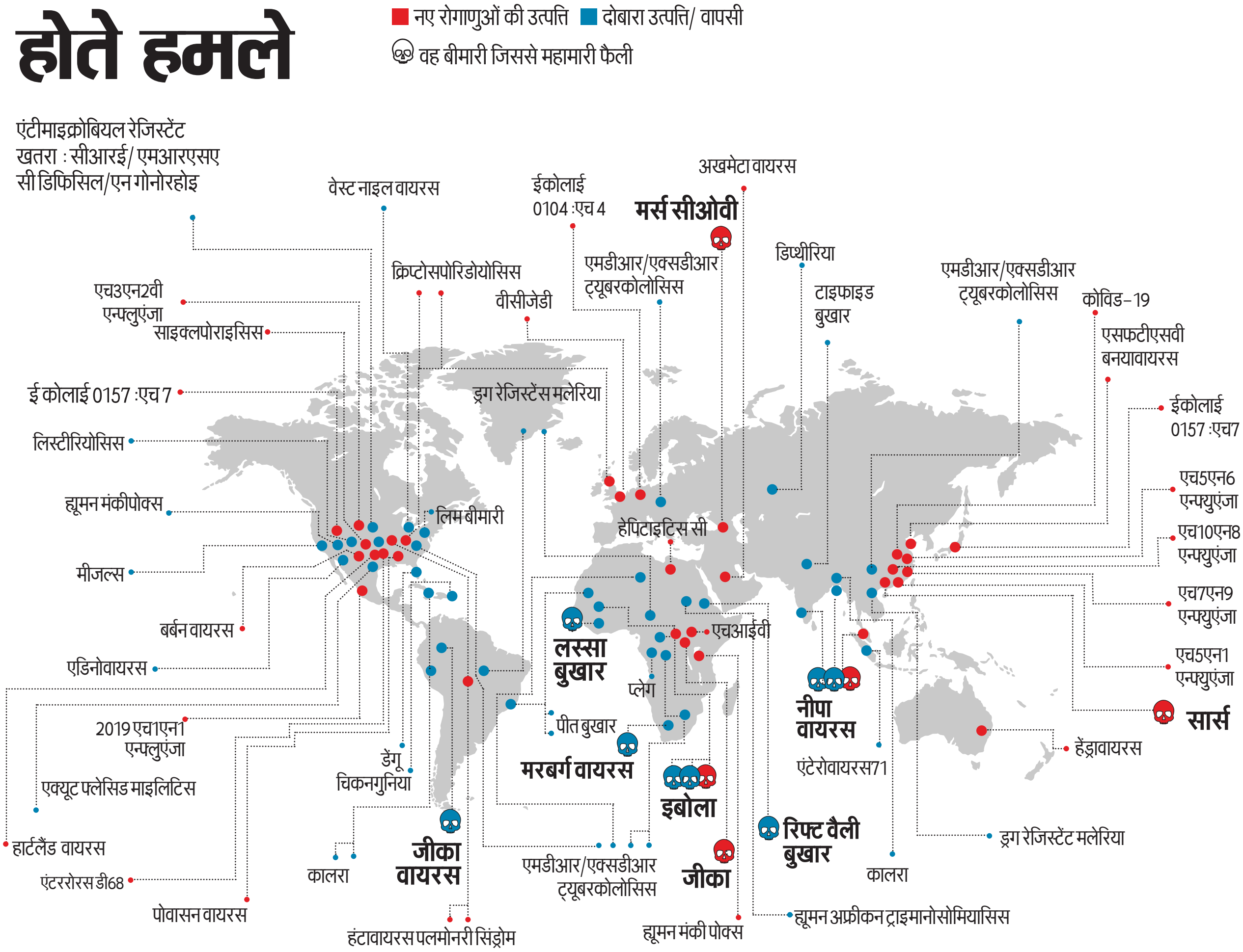

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन के वार्षिक समीक्षा 2018 के अनुसार, ग्लोबल प्रेपेर्डनेस मॉनिटरिंग बोर्ड की ए वर्ल्ड एज रिस्क रिपोर्ट 2019

और क्लिनिकल प्रोफेसर सुरेश वी कुचिपुड़ी कहते हैं, "संक्रामक रोगों की हमारी समझ में सुधार हुआ है। फिर भी हम महामारी के उभार से संबंधित सभी पहलुओं को पूरी तरह से नहीं समझ सके हैं। आरएनए वायरस कोविड-19 सहित सभी प्रमुख महामारियों का कारण बना है।" उत्परिवर्तित और विकसित होने के अपने अंतर्निहित गुण के कारण, आरएनए वायरस भविष्य की महामारियों के कारण बन सकते हैं। 2011 से 2018 के बीच, 172 देशों में 1,483 महामारी की घटनाएं सामने आईं। 60 फीसदी महामारी जूनोटिक (जानवर से इंसान में फैलने वाली बीमारी) थी, जिनमें से 72 प्रतिशत वन्यजीवों में उत्पन्न हुए थे। कोविड-19 के अलावा, डब्ल्यूएचओ ने 2020 के पहले 79 दिनों में 9 बीमारियों के फैलने की बात कही थी। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय क्षरण मामले को बदतर बना रहे हैं, क्योंकि ये वायरस को तेजी से उत्परिवर्तित होने में मदद करते हैं। स्कूल ऑफ एनवायरमेंट एंड बॉयोलॉजिकल साइंस, द स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू जर्सी की सहायक प्रोफेसर सियोबेन डफ्फी ने 2018 में *पीएलओएस बॉयोलॉजी* में लिखा कि आरएनए वायरस में उत्परिवर्तन दर अपने मूल स्त्रोत के मुकाबले लाखों गुना अधिक होती है। ये उच्च दर और अनुकूलन की क्षमता विषाणुओं के दुष्प्रभाव और हानिकारक प्रभाव को तीव्र करने में सहायक माने जाते हैं। वायरल रोग का नियंत्रण मुश्किल होता है और उनके बारे में सीमित ज्ञान इस चुनौती को और अधिक बढ़ा देता है। दशकों के अनुभव के बावजूद, वैज्ञानिक वह प्रभावी तरीका खोजने में पूरी तरह सफल नहीं है जिससे वायरल प्रकोप को रोका जा सके। गौरतलब है कि 1917-1918 में जब घातक स्पैनिश फ्लू का प्रकोप था, तब भी आज की तरह ही सामाजिक दूरी और स्कूल बंद करने जैसे आकस्मिक तरीकों का इस्तेमाल किया गया था। ये तरीके तब भी काम नहीं करते थे और आज भी काम करते नहीं दिख रहे हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ हांगकांग के शोधकर्ताओं ने पाया कि व्यक्तिगत सुरक्षात्मक उपाय, जैसे हाथ की स्वच्छता या फेस मास्क और पर्यावरणीय स्वच्छता जैसे उपाय भी एन्फ्लुएंजा के प्रसार को कम करने में मदद नहीं करते हैं। बढ़ते खतरे के बावजूद, हमारे पास वैश्विक निगरानी की व्यवस्था नहीं है जो संभावित महामारी के उद्भव पर नजर रख सके। 2018 में एक प्रोजेक्ट (ग्लोबल विरोम प्रोजेक्ट) लांच किया गया था। इसके तहत, अगले 10 वर्षों में उन सभी स्थानों को मिलाकर एक ग्लोबल एटलस विकसित करने की बात है, जहां प्राकृतिक रूप से जूनोटिक वायरस पाए जाने की संभावना है। आज वैज्ञानिकों के पास मनुष्यों को संक्रमित कर सकने वाले सिर्फ 260 वायरस की जानकारी है। यह संभावित जूनोटिक वायरस संख्या का महज 0.1 प्रतिशत ही है। यानी, दुनिया आज भी लगभग 99.9 प्रतिशत संभावित जूनोटिक वायरस से अनभिज्ञ है।

"वैश्वीकरण का नतीजा"

अर्थशास्त्री एवं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में ग्लोबलाइजेशन व डेवलपमेंट के प्रोफेसर **इयान गोल्डिन** ने कोरोना की वर्तमान महामारी की भविष्यवाणी अपनी किताब "द बटरफ्लाई डिफेक्ट : हाउ ग्लोबलाइजेशन क्रिएट्स सिस्टमिक रिस्क एंड वाट टु डू अबाउट इट" में पहले ही कर दी थी। उन्होंने **विभा वार्ष्णेय** से वैश्वीकरण और महामारियों पर बात की

क्या यह महामारी बताती है कि हमें वैश्वीकरण पर विचार करना चाहिए?

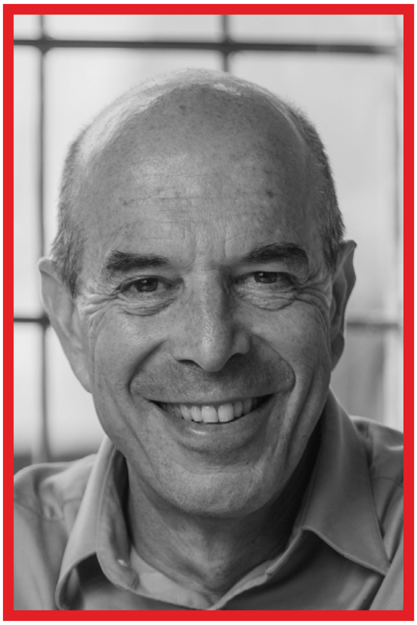

मैं लंबे समय से महसूस कर रहा हूं कि वैश्वीकरण पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। दरअसल, हम सोचते हैं कि वैश्वीकरण बहुत अच्छा है क्योंकि यह लोगों को गरीबी से बाहर निकालता है, अवसर पैदा करता है, टीके और दवाइयां, नौकरियां और पैसे देता है। इसकी वजह से ही भारत ने कई अन्य विकासशील देशों की तरह तेजी से प्रगति की है। इतना ही नहीं वैश्वीकरण के चलते विचारों, प्रौद्योगिकियों, कौशल, वस्तुओं एवं सेवाओं और अन्य देशों के साथ वित्तीय आदान-प्रदान होता है। लेकिन यह बहुत खतरनाक भी है और इसका डरावना पक्ष भी है। मैं वैश्वीकरण को अच्छा और बुरा दोनों मानता हूं। लेकिन इसका फायदा लेने के लिए जोखिमों के उचित प्रबंधन लिए भी तैयार रहना चाहिए। लेकिन हम देख रहे हैं कि लोग खतरों का प्रबंधन नहीं कर रहे हैं। इससे वैश्वीकरण खतरनाक बन रहा है। महामारियां इसी का नतीजा हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन का दबदबा, 140 करोड़ पर्यटक और हर साल दुनियाभर के व्यापारिक यात्री अच्छी चीजों के साथ बुरी चीजें भी फैला रहे हैं। इसे कोविड-19 जैसी महामारियों से समझा जा सकता है। मुंबई और वुहान जैसे शहरों में तेजी से विकास किया। यहां हवाई अड्डे हैं। अगर यहां कुछ होता है तो इसका असर केवल कुछ दिनों में पूरी दुनिया में दिखाई देगा। महामारी में भी हम यही देख रहे हैं। ऐसा प्रसार केवल महामारी में नहीं देखा गया बल्कि 2008 के वित्तीय संकट में यह हुआ था। दुनियाभर में फैले साइबर वायरस के रूप में भी यह देखा जा सकता है। तेजी से होते विकास के अनचाहे परिणाम जलवायु परिवर्तन और भूमंडलीकरण के रूप में दिख रहे हैं। इसका जवाब डी-ग्लोबलाइजेशन नहीं है। इसका जवाब ऊंची दीवारों का निर्माण भी नहीं है। भारत, चीन और अमेरिका जैसे शक्तिशाली देशों में कोई दीवार इतनी ऊंची नहीं है जो भविष्य में बड़े खतरों से बचा सके। ये खतरे जलवायु परिवर्तन, महामारियों और वित्तीय संकट के हैं। ये ऊंची दीवारें केवल विचारों, प्रौद्योगिकियों, टीकों और वित्त को बाहर रख सकती हैं।

वैश्वीकरण से जो चीज गायब है, वह है राजनीतिक वैश्वीकरण और मानव वैश्वीकरण। हमें यह जानने की जरूरत है कि दुनिया उतनी ही मजबूत है, जितनी इसकी सबसे कमजोर कड़ियां। दुनिया में ऐसे भी देश हैं जो संयुक्त राष्ट्र को पीठ दिखा रहे हैं। यह 21वीं सदी में ठीक नहीं है। वैश्विक एजेंसियां अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर रही हैं, लेकिन उनके शेयरधारक, सरकारें उन्हें सुधार और सशक्त नहीं कर रही हैं। यही चुनौती है।

आपको भविष्य में ग्लोबलाइजेशन या डी ग्लोबलाइजेशन में से किसकी उम्मीद नजर आती है?

यह इस पर निर्भर करता है कि आप वैश्वीकरण को कैसे परिभाषित करते हैं और किस बारे में बात कर रहे हैं। यदि आप एशिया के संदर्भ में बात कर रहे हैं, तो मुझे लगता है कि हम भारत, चीन और इंडोनेशिया जैसी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में तेज वृद्धि देखेंगे। महामारी खत्म होने के बाद ये अर्थव्यवस्थाएं उबर जाएंगी। हम अन्य स्थानों में भी वृद्धि देखेंगे, लेकिन यह वृद्धि धीमी होगी। हम डी-ग्लोबलाइजेशन की ओर नहीं जा रहे हैं, बस एक अलग प्रकृति के वैश्वीकरण में प्रवेश कर रहे हैं। हम विनिर्माण व्यापार में कमी, लेकिन सेवाओं के व्यापार में बढ़ोतरी देखेंगे। एशियाई देश वैश्वीकरण से लाभांवित होने की चाहत रखते हैं। इसमें बदलाव नहीं होने वाला। अगर बदलाव होता है तो यह हानिकारक होगा। इसमें शक नहीं है कि हमें वैश्वीकरण के जोखिमों के प्रबंधन के लिए नीतियों की भी आवश्यकता है।

हम भविष्य में यह कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि संक्रामक और जूनोटिक बीमारियां एशियाई देशों में महामारी का रूप न लें।

महामारियों को नियंत्रित करने के लिए देशों को निगरानी तंत्र और क्षमता विकसित करने की जरूरत है। जब सरकारें संसाधनों का आवंटन करती हैं तो सेना को स्वास्थ्य व महामारियों को रोकने से अधिक प्राथमिकता मिलती है। हमें इस प्रवृत्ति को बदलने और दुनिया के खतरों को समझने की जरूरत है। हमें निगरानी और संपूर्ण स्वास्थ्य प्रणाली में निवेश बढ़ाने की जरूरत है। हमें साफ सफाई में निवेश और मलिन बस्तियों व अनधिकृत बस्तियों को भी दुरुस्त करना होगा। साथ ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में रिसर्च की भी जरूरत है। इसके लिए व्यवहार में बदलाव बहुत जरूरी है। उदाहरण के लिए लोगों को अपने चेहरे को ज्यादा नहीं छूना चाहिए। उन्हें बार-बार हाथ धोना चाहिए। इस तरह के उपाय संक्रामक रोगों के खतरे को कम कर सकते हैं। वर्तमान महामारी ने लोगों को इन उपायों के प्रति जागरूक किया है। मुझे उम्मीद है कि हम इस महामारी को सीखने के अवसर के रूप में लेंगे, ताकि भविष्य में हम अन्य महामारी से बच सकें। साथ ही साथ जलवायु परिवर्तन जैसे जोखिमों का बेहतर प्रबंधन कर सकें।

DOWN TO EARTH•BOOKS•FILMS•E-DATABASES•T-SHIRTS•BAGS

the new refreshed revitalized

csestore

CENTRE FOR SCIENCE AND ENVIRONMENT
41, Tughlakabad Institutional Area, New Delhi 110 062, INDIA
Tel: +91-11-2995 6110/5124/6394 Fax: +91-11 2995 5879
Website: www.cseindia.org; E-mail: cse@cseindia.org

DOWN TO EARTH•BOOKS•FILMS•E-DATABASES•T-SHIRTS•BAGS

धरती पर अपना भार कम करने का समय

कोरोनावायरस की महामारी ने बता दिया है कि हमें धरती के साथ बिगड़े संबंधों को तत्काल सुधारने की जरूरत है

सुनीता नारायण

लॉकडाउन के इस मुश्किल दौर में हम प्रकृति के प्रतिशोध को साफ-साफ देख सकते हैं। आजकल दिल्ली के आसमान से स्मॉग की चादर हट चुकी है और हवा पूर्णतया साफ हो गई है। नीले आसमान में चिड़ियों की उड़ानें देखते ही बन रही हैं। मोटरकारों के कर्कश शोर के स्थान पर अब पक्षियों की चहचहाहट सुनाई पड़ रही है। हम कह सकते हैं कि इस जानलेवा म्यूटेन्ट (उत्परिवर्ती) वायरस के भयावह प्रसार को रोकने के उद्देश्य से लगाए गए विश्वव्यापी लॉकडाउन के बहाने ही सही, लेकिन धरती फिर से अपने पुराने वैभव को प्राप्त करने की कोशिश कर रही है।

नाले की शक्ल अख्तियार कर चुकी हमारे देश की कई नदियां, जिन्हें शून्य ऑक्सीजन स्तर के कारण मृत घोषित किया जा चुका था, फिर से जीवित हो उठी हैं और उनके साफ जल में जीवन एक बार फिर से फल-फूल रहा है। गुजरात के बंदरगाह शहर, जूनागढ़ से आई तस्वीरों में आसपास के जंगलों से कुछ शेर धूप सेंकने के लिए बाहर निकलते हुए देखे गए हैं। केरल के एक छोटे शहर में चहलकदमी करते कस्तूरी बिलाव हों या भारत के नमकीन तटीय इलाकों की ओर रुख करते हुए रंग-बिरंगे फ्लैमिंगो या नदियों में छलांगें लगाती डॉल्फिनें, ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।

हालांकि हम यह भली भांति जानते हैं कि प्रकृति में हुए इस खुशगवार बदलाव की भारी कीमत दुनिया भर के लाखों लोगों को चुकानी पड़ रही है। इस वायरस ने न केवल जानें ली हैं, बल्कि रोजी-रोटी के साधनों को भी तहस-नहस करके रख दिया है।

यह सच है कि हमारी हवा और पानी पूरी तरह से प्रदूषित हो चुके हैं और उन्हें साफ किया जाना जरूरी है, लेकिन मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूं कि सफाई का यह तरीका उचित नहीं है। कोविड-19 के बाद भी जीवन होगा और तब के लिए हमें दो चीजें गांठ बांध लेनी चाहिए।

पहला यह कि चाहे क्षण भर के लिए ही सही, लेकिन हमें यह पता चल गया है कि साफ हवा, साफ पानी और खुशगवार प्रकृति किस चिड़िया का नाम है। हमें यह सीख गांठ बांध लेनी होगी। हमें स्वयं को विश्वास दिलाना होगा कि यही सामान्य स्थिति है, हमारे फेफड़े विषाक्त पदार्थों के तनाव के बिना ही काम करने के लिए बने हैं।

दूसरी और सबसे महत्वपूर्ण बात जो हमें नहीं भूलनी है वह यह कि यह साफ सुथरी हवा और नीला आसमान बिना लॉकडाउन के संभव नहीं थे। इसलिए, जब दिल्ली में सर्दियों के मौसम में फिर से स्मॉग का प्रकोप हो, तब हमें यह याद रखना होगा कि ऑड-ईवन का खेल बेकार है और सड़कों पर से सारी गाड़ियों को हटाए बिना हवा को साफ कर पाना असंभव है। साफ हवा के लिए जरूरी है कि ट्रकों की आवाजाही बंद हो और वह तभी संभव है जब रोजाना

के कारोबार को पूरी तरह से बंद कर दिया जाए। पिछले महीने ट्रकों की आवाजाही 4,000 प्रतिदिन से घटकर 400 प्रतिदिन रह गई है।

हानिकारक गैसों का उत्सर्जन बंद हो सके, इसके लिए एक-दो नहीं, बल्कि सारे उद्योगों को बंद किए जाने की आवश्यकता होगी। इसका मतलब है हर तरह के निर्माण कार्यों पर रोक। हर वो चीज जो हमें रोजी-रोटी देती है, उसे बंद करना होगा। यही एकमात्र रास्ता है जिससे हम धुंधले, काले आसमान को नीला और हवा को साफ कर सकते हैं।

मैं ये नहीं कह रही कि आनेवाली सर्दी में हमें ऐसा करना ही होगा । यह लॉकडाउन मानव इतिहास का सबसे काला अध्याय है और मैं आशा करती हूं कि हमें इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं होगी। मैं ऐसा इसलिए कह रही हूं क्योंकि अगर हम साफ सुथरी हवा चाहते हैं तो हमें जमीन आसमान एक करना होगा। रोजगार एवं स्वच्छ हवा हमारे जीवन का मूल है और इस दिशा में हमें बहुत कुछ करने की आवश्यकता है।

आज तक हम छोटे-मोटे फैसले लेते आए हैं, लेकिन अब समय आ चुका है कि हम बड़े कदम उठाएं। हमें अपनी कार्यशैली और योजना, दोनों पर बहुत तेजी से काम करना होगा। हम निश्चित रूप से इस हाल में दोबारा नहीं फंसना चाहेंगे, इसलिए कोविड-19 से सीख लेने का यही सही समय है।

तो फिर हवा कैसे स्वच्छ होगी? आखिर ऐसा क्या है जो हम कर सकते हैं, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि लॉकडाउन हटा लिए जाने के बाद भी हमारा आसमान साफ रहे?

सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि सड़कों पर से इंसानों को नहीं, बल्कि केवल गाड़ियों को हटाने की आवश्यकता है। इसका उपाय है कि सारी गतिविधियों को फास्ट-ट्रैक करना, ताकि गाड़ियों के बजाय इंसानों के सुविधाजनक एवं सुरक्षित आवागमन को सुनिश्चित किया जा सके। सार्वजनिक परिवहन को व्यक्तिगत स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य के पहलुओं को ध्यान में रखना होगा।

हमें खुद के लिए लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए, ताकि अगले कुछ वर्षों में (हां, इतनी जल्दी) हम अपने सिस्टम को इस प्रकार अपग्रेड कर सकें, जिससे दैनिक आवागमन का 70-80 प्रतिशत हिस्सा उच्च गति और कम उत्सर्जन (रेलगाड़ी से लेकर साइकिल तक) वाले परिवहन के साधनों के माध्यम से पूरा किया जा सके।

दूसरे नंबर पर हैं उद्योग। हमारा लक्ष्य उद्योगों को बंद करना नहीं है। हमारा लक्ष्य है, इन्हें इस प्रकार से विकसित करना, ताकि उनसे कम से कम उत्सर्जन हो । शुरुआत प्राकृतिक गैस से किए जाने के बाद हमारा लक्ष्य हो कि हमारे उद्योगों में इस्तेमाल की जा रही बिजली ऊर्जा के ऐसे स्रोतों से आए, जिनसे प्रदूषण न के बराबर हो। आज इस राह में सबसे बड़ी बाधा प्राकृतिक गैस की उपलब्धता नहीं, बल्कि इसकी कीमत है। प्राकृतिक गैस को सबसे बड़ी टक्कर कोयला दे रहा है, जो सबसे सस्ता किन्तु सर्वाधिक प्रदूषण फैलाने वाला ऊर्जा का स्रोत है।

लेकिन, अगर सरकार प्राकृतिक गैस को वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के अंतर्गत ले आती है तो कोयले की यह बादशाहत छिन सकती है। यहां ध्यान रखने योग्य है कि मैं केवल प्राकृतिक गैस की बात कर रही हूं, सारे पेट्रोलियम उत्पादों की नहीं। वर्तमान में, कोयला या अन्य ऐसे प्रदूषक इंधनों को जीएसटी में शामिल किया गया है और सरकार उन पर कम प्रदूषण फैलाने वाले इंधनों की तुलना में काफी कम टैक्स लगाती है तो ऐसा किया जाना संभव है। लेकिन हमें इसे एक बड़े समाधान के रूप में देखने की आवश्यकता है- एक ऐसा समाधान जो तेजी से और वृहद स्तर पर किया जा सके।

इन पहलुओं पर चर्चा आगे भी जारी रहेगी, लेकिन बात साफ है कि हमें बड़े फैसले तेजी से लेने होंगे। कोविड-19 ने हमारे सामने दुनिया की एक ऐसी भयावह तस्वीर पेश की है जो हमने सपने में भी नहीं सोची थी। अब समय या गया है जब हम धरती के साथ अपने बिगड़े संबंधों को सुधार लें। आने वाले दिनों में यह हमारे सामने की सबसे बड़ी चुनौती होने वाली है।

क्या हम कोविड-19 से सीख लेकर अपने काम करने का तरीका बदलेंगे? या अपनी अर्थव्यवस्थाओं को पटरी पर लाने की जल्दी में हम और अधिक धुएं एवं प्रदूषण के साथ अपनी अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण करना चाहेंगे? प्रकृति अपना फैसला सुना चुकी है और अब हमारा भविष्य पूरी तरह से हमारे हाथों में है। हमें प्रकृति के प्रति नरमी दिखाने की आवश्यकता है। अब समय आ गया है कि जब हम धरती पर अपना भार कुछ कम करें।

महामारी बदलेगी शहरों की 'हवा'

हमारे शहर आने वाले समय में भी जीविकोपार्जन के लिए लोगों को आकर्षित करते रहेंगे, इसलिए हमें इसकी योजना बनाने की जरूरत होगी

अनुमिता रायचौधरी

अधिक जनसंख्या घनत्व वाले शहरों में मानवों की बीच आपसी संपर्क अधिक होगा जिससे अधिक संक्रमण और मृत्यु की आशंका रहेगी

संक्रमण के डर ने कई भीड़ भरे शहरों को सुस्त बना दिया है। आशंका है कि अधिक जनसंख्या घनत्व वाले शहरों में मानवों की बीच आपसी संपर्क अधिक होगा जिससे अधिक संक्रमण और मृत्यु की आशंका रहेगी। कम भीड़-भाड़ वाले दूरदराज के छोटे कस्बे और ग्रामीण परिवेश की छवि ऐसी बन रही है कि ये बचने की सबसे बेहतर जगह हैं। इस महामारी के पांव फैलाने से पहले ही लोगों ने दिल्ली जैसे प्रदूषित शहर को दूषित हवा की वजह से छोड़ना शुरू कर दिया था। लेकिन, जानकार इस बात को लेकर भी चिंतित हैं कि इस तरह की प्रवृत्ति से कम जनसंख्या घनत्व वाले इलाकों की तरफ लोगों की रुझान बढ़ेगा जिससे वहां होने वाले विकास की वजह से अधिक प्रदूषण, खराब स्वास्थ्य और कार्बन और सामाजिक समता की कमी आने वाले समय में सामने आएगी।

ये कुछ कारण हैं जिनसे हमारा ध्यान किसी शहर की क्षमता को बढ़ाकर उसे सुरक्षित, आर्थिक-सामाजिक तरक्की के साथ पर्यावरण और स्वास्थ्य सुरक्षा से हट सकता है। लॉकडाउन के दौरान इसलिए पृथ्वी दिवस का चिंतन शहर की परिकल्पना से दोबारा जुड़ रहा है।

हाल ही में विक्टोरिया ट्रांसपोर्ट पॉलिसी इंस्टीट्यूट, कनाडा के टॉड लिटमैन ने महामारी से संबंधित अपनी ताजस रिपोर्ट में चेताया कि कई लोग गलत धारणा बना सकते हैं कि संक्रामक रोग अधिक जनसंख्या घनत्व में अधिक खतरनाक और ग्रामीण इलाकों में कम खतरनाक होता है। वह कहते हैं कि एक तरफ शहरी लोग इस संक्रमण की चपेट में अधिक आते हैं लेकिन ग्रामीण लोगों के संक्रमण की स्थिति में मरने की आशंका अधिक होती है और इसकी वजह वहां की कमजोर स्वास्थ्य व्यवस्था है।

यह शहर ही है जो हमें न सिर्फ स्वास्थ्य सुविधाएं दुरुस्त करने को प्रेरित करता है, बल्कि कई दूसरे सामाजिक स्तर की सुविधाएं प्रदान करने की सुविधा देता है जिससे अधिक से अधिक लोगों की सुरक्षा हो पाती है। दरअसल संक्रमण का खतरा जिस भीड़भाड़ से है] वह एक स्थान पर लोगों की संख्या है, न कि घनत्व यानी एक भूभाग पर रहने वाले लोगों की संख्या। लिटमैन कहते हैं कि कई घनत्व वाले शहरी देश जैसे हॉन्गकॉग, जापान, सिंगापुर और दक्षिण कोरिया ने काफी सफलता के साथ कोविड-19 के संक्रमण और मृत्यु दर को कम किया है।

यह दिखाता है कि घनत्व के अलावा कारगर जन स्वास्थ्य सुविधाएं, समाज की तरफ से मिलने वाले प्रतिक्रियात्मक सहयोग और स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता संक्रमण को खतरे को कम करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। लिटमैन कहते हैं, "अधिकांश लोग आपदा के समय में अपने आसपास की सामान्य सेवाओं और गतिविधियों तक पैदल पहुंच रखने में सक्षम होते हैं और उनका सामाजिक जुड़ाव भी बेहतर होता है।" सघन शहर परिवहन लागत में 10-30 प्रतिशत की बचत कर सकता है, यात्रा के समय को कम कर सकता है, उत्पादकता बढ़ा सकता है, ट्रैफिक कम कर सकता है, यहां पार्किंग के लिए कम भूमि की आवश्यकता होती है और ऊर्जा की बचत और उत्सर्जन में कमी कर सकता है।

भारत में क्या लगा है दांव पर?

अभी तक भारत में अधिक घनत्व और घनत्व को बढ़ाने की परिकल्पना को जनता का विरोध झेलना पड़ रहा है। लोगों को डर है कि इससे उनके शहर में भीड़ बढ़ेगी और अधिक भीड़ वाले शहर में ट्रैफिक भी बढ़ेगा। कई लोगों को यह नहीं पता कि नवीनीकरण शहर में बढ़ती भीड़ और ट्रैफिक को कैसे कम कर सकता है। साथ ही कैसे इसे आम लोगों के रहने लायक बनाया जा सकता है।

इस महामारी के बाद भारत इस बहस से दूर नहीं भाग सकता। यहां अधिक घनत्व, सघन और आपस में जुड़े शहरों की गहरी समझ बननी जरूरी है जो लचीले, सुरक्षित, स्वस्थ और साफ, घिरे और बस्तियों से लगे होते हैं। भारत के अधिकांश शहर सघन जनसंख्या घनत्व वाले हैं। वे एक हद तक घनत्व को काबू में तो रखते हैं लेकिन मुफीद शहरी संरचना और अधिक भीड़भाड़ के असर को कम करने के लिए योजना और रणनीति को नहीं अपनाते। हमारे शहर आने वाले समय में भी जीविकोपार्जन के लिए लोगों को आकर्षित करते रहेंगे, इसलिए हमें इसकी योजना बनाने की जरूरत होगी।

कोविड-19 के संकट ने नजर से दूर शहरी आबादी को सामने कर दिया और इसका खुलासा किया कि कैसे अधिक भीड़ में रहना स्वास्थ्य के लिए खतरा साबित हो सकता है। लेकिन, क्या हम इसके लिए पुख्ता रणनीति बना रहे हैं? करीब 1.4 करोड़ लोगों की जनसंख्या शहरी झुग्गियों में न रहने लायक हालत में रहती है। 2011 की जनगणना के मुताबिक, भारत हर वर्ष 40 लाख लोगों की आबादी को हर साल झुग्गियों में जोड़ता है। शहरी घरों की कमी के ऊपर बने तकनीकी समूहों ने अनुमान लगाया है कि 80 प्रतिशत तक घर की राष्ट्रीय मांग भीड़ और घरों में क्षमता से अधिक रह रहे लोगों की तरफ से आती है। बिना जीवन-सुरक्षा और आजीविका सुरक्षा से समझौता किए हम इनके लिए कैसे घर डिजाइन करते हैं?

यह सर्वविदित है कि हमारे शहरों में घनत्व नियंत्रण और जमीन की बढ़ी कीमतें से बड़ी संख्या में लोग शहर से दूर रहने को विवश होते हैं। निम्न और मध्यम आय वर्ग और व्यापारी शहर के बाहर सस्ते इलाकों की तरफ जाते हैं जहां आवाजाही और शहरी व्यवस्थाओं की बेहद कमी होती है। इससे भीड़भाड़ और प्रदूषण से तो बच जाते हैं लेकिन उन्हें सामाजिक असमानता की बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। मुंबई और नेशनल कैपिटल रीजन (एनसीआर) में सस्ते घर के प्रोजेक्ट शहर के केंद्र से 65-75 किलोमीटर दूर बने हुए हैं।

वर्ष 2016 में विश्व बैंक ने अपने अध्ययन में अनुमान लगाया था कि बेहतर प्रबंधन के साथ शहरी विकास के मॉडल की तुलना में एक बड़ा, फैला हुआ शहरी विकास का मॉडल भारत को 330 बिलियन अमेरिकी डॉलर से लेकर 1.8 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर तक खर्च करवा सकता है। यह सामने आया कि सघन शहर फैले हुए शहर की तुलना में आर्थिक रूप से भी अधिक बेहतर कार्य करते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का जिक्र भी इस अध्ययन में आता है जिसने पैदल चलकर या साइकिल चलाकर (एक्सीडेंट के खतरों और ट्रैफिक सुरक्षा का ध्यान रखते हुए) स्वास्थ्य के फायदों का अनुमान लगाया है। उदाहरण के लिए, इस वक्त और वर्ष 2050 के बीच फैले हुए शहरीकरण पर खर्च की तुलना में स्मार्ट ग्रोथ (अधिक से अधिक पैदल और साइकल ट्रैक) से भारत की कुल बचत हर वर्ष 120 बिलियन अमेरिकी डॉलर होगी। यहां तक कि परिवार भी इस सघन विकास से लाभांवित होगा। उदाहरण के लिए, एक फैले हुए शहर में एक परिवार यातायात पर 50,000 से 1,20,000 सालाना खर्च करता है, इसकी तुलना अगर कई स्तरीय मॉडल पर बने सघन शहर से करेंगे तो यह खर्च 10,000 से 20,000 तक सालाना खर्च आएगा।

अब तक भारत में अधिक जनसंख्या घनत्व और इसे बढ़ाने की परिकल्पना को जनता का विरोध झेलना पड़ रहा है। लोगों को डर है कि इससे उनके शहर में भीड़ और ट्रैफिक बेतहाशा बढ़ जाएगा

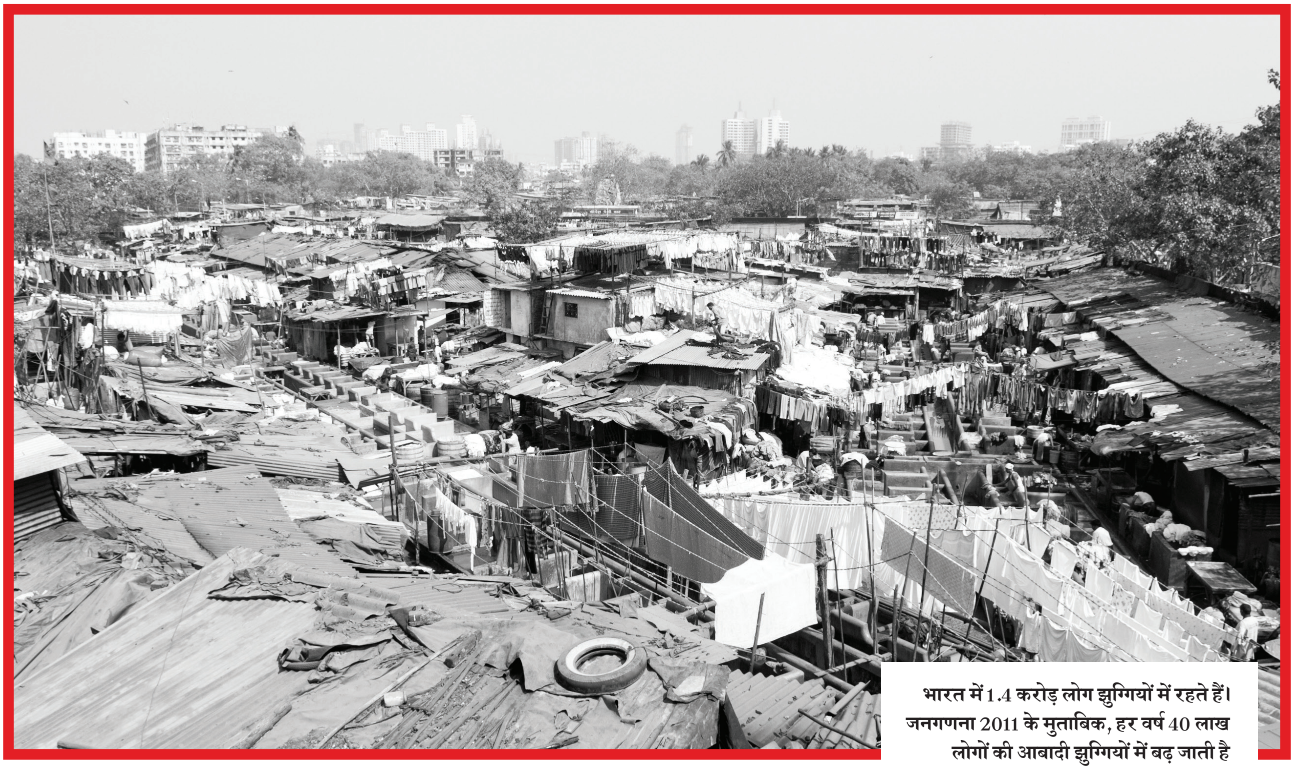

भारत में 1.4 करोड़ लोग झुग्गियों में रहते हैं। जनगणना 2011 के मुताबिक, हर वर्ष 40 लाख लोगों की आबादी झुग्गियों में बढ़ जाती है

भारत की स्थिति

ऐसा नहीं है कि भारत शहरी विकास के इन सिद्धांतों को नहीं समझता। पिछले कुछ दशकों में नई नीतियों में ये सिद्धांत झलकते हैं। राष्ट्रीय आवास मानकों ने नए विकास के लिए सुलभ सघन शहरी रूप को परिभाषित किया है।

पारगमन उन्मुख विकास नीति (ट्रांजिट ओरिएंटेड डेवलपमेंट पॉलिसी) कहती है कि उच्च घनत्व वाली जमीन का मिश्रित उपयोग कर उसमें आवाजाही की योजना, पैदल चलने योग्य व्यवस्था बनाई जाए। ऐसी जमीनों में अधिक से अधिक हरित क्षेत्र और सामुदायिक उपयोग के क्षेत्र शामिल हों और आवाजाही की सुविधा 500 से 800 मीटर की परिधि के भीतर हो। यह नीति कहती है कि ऐसे पैदल चलने और रहने योग्य समाज में घर की आपूर्ति में हर आय वर्ग के लोग मसलन आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग, मध्य आय वर्ग भी शामिल हों।

यह काफी सराहनीय है कि भारतीय रेलवे स्टेशन डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड एक अनोखे फॉर्म आधारित कोड का विकास कर रहा है जिसका उपयोग रेलवे की जमीन पर डिजाइन और लेआउट योजना की स्वीकृति प्रदान करने में किया जाएगा। इस कोड से स्टेशन के इलाके में सघन, पैदल चलने योग्य, बाजारोन्मुखी और सुचारू यातायात से लैस टिकाऊ विकास का मॉडल बन सकेगा। यह शहरी फार्म बेहतर योजना के साथ बने छोटे ब्लॉक, सड़कों की अधिक संख्या, जमीन का मिश्रित उपयोग और वहां रहने वाले लोगों में मिश्रित आय वर्ग पर आधारित होगा। इससे कई चुनौतियां जैसे फैले हुए शहर, आस पड़ोस की खराब स्थिति, पैदल चलने वालों की सुरक्षा की उपेक्षा, प्रदूषण और ऊर्जा अपव्यय और नए शहरी विकास में शहरी गरीबों पर असामयिक प्रभाव का मुकाबला कर सकेंगे।

आने वाले समय की जरूरत

यह सिर्फ शहरी नियोजन की भूमिका के बारे में नहीं है। दरअसल, शहर बड़े होते हैं और अनायास और स्वायत्त रूप से आकार लेते जाते हैं, जो अक्सर पूर्व नियोजित होते हैं। समुदाय स्वयं निर्माण और उनकी आवश्यकताओं के माध्यम से इसे आकार देते हैं। इसलिए, किफायती आवास के डिजाइन में सुधार कर और खुद के द्वारा बनाए जाने वाले घरों में सहायता प्रदान कर सेवाओं के विकेंद्रीकरण और स्वस्थ जीवन जीने के लिए आवास की योजना की तरफ कदम बढ़ाना चाहिए।

शहर के स्तर पर, एक अधिक कुशल, न्यायसंगत और सभी के लिए शहरी जमीन का किफायती उपयोग करने के लिए एक नए विकास और शहरी नवीनीकरण के मॉडल की आवश्यकता है। गरीबों को भी इस समाधान का हिस्सा बनाना होगा। नियमों को दोबारा देखकर उसमें बदलाव की जरूरत है जो सघनता में बाधक है और बेवजह कई तरह की बाधा पैदा करते हैं। पार्किंग की निम्नतम जरूरत भी इसमें शामिल है। इसमें वो नियम भी शामिल हैं जो हरित स्थान और सामुदायिक स्थान को लेकर अनिश्चित हों और अधिक रफ्तार वाली सड़कों की तरफ संसाधनों को ले जाते हों। इसकी वजह से जमीन का अकुशल और खराब उपयोग होता है जिससे लोगों की भलाई और सुरक्षा से समझौता होता है।

अपने आस पड़ोस को इस तरह से बनाया जाए जिसमें पैदल चलने, साइकिल चलाने और इलेक्ट्रॉनिक के इस्तेमाल से चलने वाली सामुदायिक यातायात की सुविधा हो और वह भरोसेमंद, सुरक्षित और साफ-सुथरी हो। महामारी की वजह से जीवनशैली में काफी बड़े पैमाने पर बदलाव आए हैं, जिसमें दूरसंचार के साधनों के उपयोग, डिजिटल कार्यस्थल के उपयोग ने यात्रा करने की जरूरत कम की है। योजनाओं में इस समाधान को भी शामिल किया जाए। महामारी के बाद हमारे शहरों को सस्ती और कायदे की जीवनशैली प्रदान करनी होगी। इसमें विकेंद्रीकृत जल प्रदाय, पर्यावरण की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए कचरा और साफ-सफाई की सुविधा और सबकी अच्छी आर्थिक स्थिति सुनिश्चित करना शामिल है।

बदलनी होगी भोजन की आदतें

हमें विचार करना चाहिए कि हम जो भोजन करते हैं उसका उत्पादन कैसे होता है। इसका प्रभाव उपभोक्ता के अलावा उत्पादक और पर्यावरण पर क्या पड़ता है

अमित खुराना

विकास चौधरी / सीएसई

मुर्गियों को पालने के लिए उन्हें एक बेहद तंग जगह में विषम परिस्थितियों के साथ रखा जाता है

नोवेल कोरोनावायरस (कोविड-19) महामारी अभूतपूर्व स्तर पर जारी सिर्फ एक स्वास्थ्य संकट भर नहीं है, बल्कि यह तमाम लोगों के लिए खाद्य संकट भी है। यदि आगे भी देशभर में खाद्य के उत्पादन और आपूर्ति में बाधा जारी रहती है तो आने वाले समय में भोजन का संकट गहरा सकता है। साथ ही इससे जुड़ी काफी नई मुसीबतें हमारे सामने आकर खड़ी हो सकती हैं।

इस महामारी से सिर्फ खाद्य ही नहीं बल्कि जानवर, चाहे वह खेत के पशु हों या फिर जंगल के वन्यजीव, सभी बहुत ही आसानी से जुड़े हैं। ये मानव की तरह अपने शरीर में कई संक्रमण एजेंट को रहने की जगह दे सकते हैं और संक्रमण एजेंट की मेजबानी करते हुए उसे सीधा मनुष्य तक पहुंचा सकते हैं या फिर किसी संवाहक के जरिए उनमें भेज सकते हैं। मिसाल के तौर पर चमगादड़ों का उदाहरण लीजिए, जिसे कोविड-19 विषाणु के साथ ही 2014-2016 में इबोला बीमारी के प्रसार या 2002 में गंभीर श्वसन रोग सार्स महामारी के लिए जिम्मेदार माना जाता है। वहीं, 2012 में मिडिल ईस्ट रेस्पिरेट्री सिंड्रोम यानी मर्स के लिए ऊंट को जिम्मेदार माना गया था।

करीब दो दशक पीछे लौटिए तो 1997 के अत्यधिक रोगजनक एवियन इनफ्लुएंजा (एच5एन1) के लिए मुर्गियां और स्वाइन फ्लू

(नोवेल इनफ्लुएंजा एच1एन1) के लिए सुअर मुख्य पशु स्रोत थे।

हम जो खाते हैं, वह हमारे स्वास्थ्य को व्यक्तिगत स्तर पर प्रभावित करता है, लेकिन हमारे भोजन का उत्पादन कैसे होता है, इसके वैश्विक प्रभाव क्या हैं? यह अब काफी हद तक स्पष्ट हैं। यदि खाद्य जानवरों की सघन खेती के मामले को ही लीजिए जो पशु प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा प्रदान करता है, उसे दुनिया अब उपभोग करना चाहती है।

खाद्य पशु के तौर पर मुर्गी और सुअरों को पालने के लिए उन्हें एक बेहद तंग जगह में विषम परिस्थितियों के साथ रखा जाता है, जहां उनकी उत्पादकता काफी ज्यादा मायने रखती है। लेकिन वह रोगों से लड़ने के लिए कितने तैयार हैं, यह कुछ भी मायने नहीं रखता।

यह स्थितियां लाइलाज अथवा काफी मुश्किल से ठीक किए जा सकने वाले संक्रामक एजेंट्स के पैदा होने की आदर्श जमीन तैयार करती हैं, जो बेहद कम समय में समूचे विश्व में अपने पांव फैला सकती हैं। विशेषज्ञ अतीत में इस बात को प्रकाश में ला चुके हैं कि सघन मुर्गी प्रजनन और पालन की व्यवस्था निम्न से उच्च एवियन इनफ्लुएंजा वायरस जैसे एच5 से एच7 के उप प्रकार को बढ़ाने वाले हो सकते हैं, जो पूरी दुनिया में मानव सेहत के लिए बेहद चिंता का विषय है।

अध्ययन बताते हैं कि चीन में एवियन इनफ्लुएंजा एच5एन1 और एच7एन9 का उद्भव किस तरह से बड़े भू- भाग पर फैल रहे सघन पोल्ट्री सेक्टर से जुड़ा हुआ था। दरअसल एवियन इनफ्लुएंजा वायरस के लिए यह सघन और गहन पोल्ट्री फार्म एक वाइल्ड रिजर्वायर की तरह था। हालांकि, इन फैक्ट्री फार्मों की समस्या वायरल महामारी या महामारी तक सीमित नहीं है, जो कुछ वर्षों के लिए बहुत अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं और फिर हमारे भोजन के उत्पादन करने के तरीके में बिना मौलिक बदलाव किए ही एक बुरे सपने के रूप में इतिहास में दर्ज हो जाते हैं।

दरअसल सघन और गहन कृषि उत्पादन का विस्तार एक जीर्ण प्रकृति वाले जीवाणु संबंधी रोग महामारी तक भी जाता है, जिसे एंटीमाइक्रोबियल रसिस्टेन्स कहते हैं। यह एक ऐसी अवधारणा है जिसमें अत्यंत साधारण संक्रमण को भी ठीक करना एक बड़ी चुनौती होती है। यदि हम इस तरह से होने वाली मानवीय मौतों की उपेक्षा करेंगे तो अभी आंत, श्वसन और मूत्रनली के संक्रमण से हर साल दुनिया में 7,00,000 लोग मरते हैं। अनुमानित है कि 2050 तक करीब एक करोड़ लोग इस तरह के संक्रमण से मरेंगे।

यह इसलिए होता है क्योंकि एंटीबायोटिक का उपयोग बैक्टीरिया को प्रतिरोधी बनाता है और अति प्रयोग इसे काफी तेज करता है। हालांकि, अंधाधुंध एंटीबायोटिक का उपयोग गहन कृषि पद्धतियों का अभिन्न हिस्सा है, जिसके दो कारण हैं। एक कारण एंटीबायोटिक दवाओं का नियमित रूप से स्वच्छता और जैव-सुरक्षा के लिए सस्ते विकल्प के रूप में उपयोग किया जाना है ताकि पूरे झुंड को बीमारियों से बचाया जा सके और इस प्रकार उत्पादकता के नुकसान को भी टाला जा सके। दूसरा कारण यह है कि मुर्गियों को तेजी से बढ़ने के लिए एंटीबायोटिक से भरपूर फीड उपलब्ध कराया जाता है, जो हमारे देश में आसानी से उपलब्ध होता है। इन दोनों ही मामलों में एंटीबायोटिक मानवों के लिए बेहद महत्वपूर्ण माने जाते हैं। यह उनके उपचार को खतरे में डालना है।

कोई आश्चर्य नहीं है कि वैश्विक पशु क्षेत्र में पशुओं का इलाज करने के बजाए गैर जिम्मेदाराना तरीके से एंटीबायोटिक उत्पादों का इस्तेमाल किया जाता हो। यह फार्म के जरिए साल्मोनेला, कैंपीलोबेक्टर और ई कोलाई के कारण अक्सर होने वाले खाद्य जनित बैक्टीरिया रोगों को बढ़ाने वाला होता है। लेकिन इन सबके बावजूद गहन कृषि लगातार बढ़ रही है, शायद स्वाइन फ्लू महामारी के बाद और भी तेजी से, जिसमें अनुमानित तौर पर 5,75,000 मौतें महामारी के पहले साल में हुई थीं।

कोविड-19 के जारी संकट फिर से हमें चुनाव करने के लिए मजबूर करता है। इस बार, हमें भोजन के साथ अपने रिश्ते को ध्यान से सोचना चाहिए, चाहे वह जानवर से हो या गैर-पशु स्रोतों से। इस संबंध पर भी विचार करना चाहिए कि हम जो भोजन करते हैं उसका उत्पादन कैसे होता है और इसका प्रभाव उपभोक्ता के अलावा उत्पादक और पर्यावरण पर क्या पड़ता है।

सवाल यह है कि क्या हम अधिक कीमत देने को तैयार हैं अथवा सवाल पूछना जारी रखेंगे जो हमें खाद्य उत्पादन के स्थायी तरीकों की ओर बढ़ने में मदद करें? क्या एक लचीली व्यवस्था से मिलने वाला स्थानीय, विविध, पोषण से बेहतर भोजन, कुपोषण और पारिस्थितिक गिरावट की हमारी समस्याओं का वास्तविक जवाब नहीं है?

इसके इतर, क्या हम सरकारों से यह मांग नहीं करते हैं कि वह कंपनियों को पैकेट फूड में अत्यधिक नमक, चीनी और वसा के इस्तेमाल से रोके। इन जंक फूड में ऐसे रसायन भी होते हैं, जो हमारे रसोई घरों में इस्तेमाल नहीं किए जाते। ये रसायन मोटापा, गैर संचारी रोगों जैसे डायबिटीज, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों की महामारी का ईंधन हैं। यह भी एक पुरानी प्रकृति व बड़े संचयी बोझ है और जो आवश्यक ध्यान खींचने में विफल रहते हैं।

जंक फूड में ऐसे रसायन होते हैं, जो रसोई घरों में इस्तेमाल नहीं किए जाते। ये रसायन मोटापा, गैर संचारी रोगों जैसे डायबिटीज, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों की महामारी का ईंधन हैं

ONE STOP VIRTUAL INFORMATION GATEWAY FOR INFORMED DECISION-MAKING AND EVERYTHING THAT YOU NEED TO KNOW ABOUT ENVIRONMENT

ACCESS Reports, Government Documents, Action Plans, Studies, Court Cases, Parliamentary Updates, Infographics, Opinions, Research, Data & Statistics find it all here.

BROWSE a variety of regional coverage from 676 districts and remotest corners of India

READ the daily news bulletin covering environmental news on India, South Asia and rest of the world from over 120 news sources

SUBSCRIBE to RSS feeds on more than 9500 environment topics

LINK up to the portal **CONTRIBUTE** and **SHARE**... as content collaborators, even as citizen reporters

www.indiaenvironmentportal.org.in

KNOWLEDGE FOR CHANGE AND ACTION
Managed by Centre for Science and Environment
Promoted by the National Knowledge Commission

follow us and be our friend on
twitter www.twitter.com/indiaenvportal
facebook www.facebook.com/pages/indiaenvironmentportal/228015872817

R.N.I. NO. DELHIN/2018/76697 POSTAL REGN. NO. DL(S)-17/3536/2019-21
ISSN 2582-0168. Licensed to Post at Lodhi Road HO, New Delhi-110003.
Published on 27th of previous month. POSTED ON: 1-2 of the same month. Total pages: 94

TOOLKIT FOR SUSTAINABLE WATER MANAGEMENT

(5 new books, in an attractive Box Set)

AUTHORS: Dr. Suresh Kumar Rohilla et al

1. Urban Water Sustainability
2. Water Sensitive Urban Design & Planning
3. Green Infrastructure
4. Water Efficiency & Conservation
5. Septage Management

WHO WILL BENEFIT FROM THIS 5-BOOK TOOLKIT?

Key practitioners from the Centre and States, ULBs, Public Health Engineering Department (PHED), Jal Nigams and Water Supply & Sewerage Boards, town planners, architects, academicians/ research institutions, international donor agencies, practicing consultants, Engineers, Resident Welfare Associations, NGOs and Libraries.

Please place your order online immediately by visiting us at *https://bit.ly/2Kf7M5d* or mail your order to us along with a Cheque for the required amount, drawn in favour of 'Centre for Science and Environment' addressed to Centre for Science and Environment, 41, Tughlakabad Institutional Area, New Delhi - 110062

Please write to **Ramachandran** if you have any queries at - rchandran@cseindia.org

We are updating our Mailing list of DTE readers. Please send an email confirming your preferred emailing address to: cse@cseindia.org. Thanks a lot.